गीतकार शैलेन्द्र
तू प्यार का सागर है
सम्पादकः इन्द्रजीत सिंह

# गीतकार शैलेन्द्र
# तू प्यार का सागर है

सम्पादक: इन्द्रजीत सिंह

आचार्य प्रवर डॉ॰ विश्वनाथ त्रिपाठी जी, ऋतुराज जी,
प्रोफेसर आर॰सी॰ भटनागर जी, लीलाधर जगूड़ी जी,
सुभाष पंत जी, जयप्रकाश चौकसे जी, जितेन ठाकुर जी,
प्रो॰ के॰एन॰ भट्ट जी और
स्वर्गीय देवाशीष मौलिक को सादर-सप्रेम समर्पित

# संपादकीय

बीसवीं सदी के महान कवि-गीतकार शैलेन्द्र ने न केवल आम-आदमी की ज़बान में प्रेम, प्रकृति और मनुष्यता के गीत लिखकर गीत-संगीत प्रेमियों के दिलों में जगह बनाई बल्कि कवियों, लेखकों और आलोचकों का ध्यान भी अपनी ओर खींचने में धीरे-धीरे सफल हुए। उनकी कलम ने मनुष्यता की रक्षा के गीत गाए। उन्होंने अपने गीतों में प्रकृति की आरती उतारी (ये कौन हँसता है फूलों में छिपकर)। प्रताड़ित नारी को शक्ति और मुक्ति का रास्ता दिखाकर उसकी किस्मत संवारी (काँटों से खींचके ये आँचल, तोड़ के बंधन बाँधी पायल)। 'फिर भी दिल है हिन्दुस्तानी' के माध्यम से देश प्रेम और भारतीयता का गुणगान किया। उन्होंने लिखा- 'धुन पर लिखा गीत बढ़िया नहीं हो सकता, मैं ऐसा नहीं मानता। मेरा ख्याल है कि यदि गीतकार को संगीत की थोड़ी-बहुत समझ है तो वह धुन पर अच्छा गीत लिखेगा। नए-नए छंद उसे मिलेंगे और दूसरी ओर यदि संगीतकार को काव्य की थोड़ी बहुत समझ है तो वह लिखे हुए गीत पर बढ़िया धुन बनाएगा, शब्दों और भावनाओं को फूल की तरह खिलाता हुआ।'

(धर्मयुग, 16 मई 1965 पृ॰ 38)

शैलेन्द्र प्रगतिशील चेतना के अप्रतिम ऊर्जावान कवि-गीतकार हैं। उन्होंने मनुष्यता से लबरेज मानीखेज, उदात्त जीवन मूल्यों से भरपूर गीत रचकर साहित्यिक प्रतिबद्धता का परिचय दिया है। 'जख्मों से भरा सीना है मेरा, हँसती है मगर यह मस्त नजर' गीत के माध्यम से प्रतिकूल परिस्थितियों में भी जिजीविषा, आत्मविश्वास और स्वाभिमान का मंत्र देकर लोगों को जीतने का हौसला व हुनर देते हैं। शैलेन्द्र की कविताएँ कोरी कल्पना की उड़ान न होकर जीवनानुभव से रची-बसी अपने समय और समाज का जीवंत दस्तावेज हैं।

इश्क़, इन्क़लाब और इंसानियत के कवि शैलेन्द्र के जीवन और रचनाओं पर आधारित पुस्तक 'धरती कहे पुकार के' का प्रकाशन अप्रैल 2019 में हुआ था। इस पुस्तक का सभी साहित्यकारों, साहित्य प्रेमियों और शैलेन्द्र के मुरीदों ने दिल से स्वागत किया। परिणामस्वरूप चार महीने बाद ही इस पुस्तक का दूसरा संस्करण भी

प्रकाशित हुआ। कार्ल मार्क्स, लेनिन, कबीर, पुश्किन, निराला, प्रसाद और बच्चन आदि से प्रभावित जनकवि शैलेन्द्र के जीवन एवं रचनाओं पर आधारित पुस्तक- **'गीतकार शैलेन्द्र : तू प्यार का सागर है'** को साहित्य और सिनेमा के रसिकों की सेवा में प्रस्तुत करते हुए अपार आनंद की अनुभूति हो रही है। इस पुस्तक में 34 कवियों, लेखकों, कलाकारों और आलोचकों आदि के लेख शामिल किए गए हैं। अमर गायक मुकेश जी और 'तीसरी कसम' फिल्म के सहायक निर्देशक बी०आर० ईशारा के लेख धर्मयुग पत्रिका से साभार लिए गए हैं। हाल ही में दिवंगत कथाकार श्री स्वयं प्रकाश जी का आलेख 'वसुधा' पत्रिका से साभार लिया गया है। रमेश चौबे जी का लेख 'समहुत' पत्रिका से साभार शामिल किया गया है।

देश के वरिष्ठ साहित्यकार डॉ० विश्वनाथ त्रिपाठी शैलेन्द्र को हिन्दी फिल्मों का सबसे बड़ा गीतकार मानते हैं और उनके गीतों को साहित्य का दर्जा देते हैं। प्रख्यात कवि ऋतुराज जी के अनुसार, शैलेन्द्र को प्रगतिशील रुमानी विचारधारा ने उनके फिल्मी गीत लेखन को बेजोड़ ऊँचाई प्रदान की। कवि, आलोचक और संपादक लीलाधर मंडलोई के अनुसार, "शैलेन्द्र ने तुलसी की तरह अपने गीतों में लोकमंगल की बात कही लेकिन आलोचकों को उनका लोकमंगल नज़र नहीं आया।" प्रोफेसर और आलोचक रवि भूषण जी का मानना है कि शैलेन्द्र वास्तविक अर्थों में जनकवि हैं। शैलेन्द्र के मित्र और गीतकार विट्ठल भाई पटेल उनके गीतों में व्याप्त राष्ट्रीयता और भारतीयता भाव से बहुत प्रभावित हैं। कथाकार (स्वर्गीय) स्वयं प्रकाश जी ने 'तीसरी कसम' की खूबियों और खामियों को अपने विशिष्ट अंदाज में परखा है। जाने-माने इतिहासकार लाल बहादुर वर्मा शैलेन्द्र को भारत का बॉब डिलन मानते हैं। सिने अध्येता एवं आलोचक मनमोहन चड्ढा के अनुसार, 'नया सिनेमा' की पहली फिल्म है 'तीसरी कसम'। भक्ति गीतों के अप्रतिम गीतकार पंडित किरण मिश्र के शब्दों में- "शैलेन्द्र की तुलना किसी कवि से नहीं की जा सकती क्योंकि शैलेन्द्र अपनी मिसाल आप हैं।" कहानी और संवाद लेखक कमलेश पांडेय जी को इस बात का अफसोस है और नाराजगी भी कि शैलेन्द्र को अभी तक किसी भी पद्म पुरस्कार से नहीं नवाजा गया है। शैलेन्द्र का गीत 'काँटों से खींचकर ये आँचल' स्त्रियों का एंथम होना चाहिए। जनकवि बल्ली सिंह चीमा का

मानना है कि फिल्मों के ग्लैमर की चकाचौंध भी शैलेन्द्र की प्रतिबद्धता और जनपक्षधरता को विचलित नहीं कर सकी। बकौल साहित्यकार ईशमधु तलवार, हिन्दी भाषा को समृद्ध बनाने में शैलेन्द्र का नाम अग्रणी है। कवि-गीतकार प्रसून जोशी के अनुसार, यदि उनका अगला जन्म हो तो वह शैलेन्द्र का कोई गीत बनना चाहते हैं। गायक-अभिनेता और गीतकार स्वानंद किरकिरे शैलेन्द्र को मनुष्यता का अमर गीत लिखने वाला महान कवि मानते हैं।

हिन्दी कवि संपादक, संगीत और सिनेमा अध्येता यतीन्द्र मिश्र के शब्दों में- "कुछ फिल्मी गीतों को यदि उनके परिदृश्य और पटकथाओं से अलग हटाकर पढ़ा जाए तो यह बात आसानी से समझ में आती है कि वह गीत आला दर्जे की साहित्यिक हैसियत रखते हैं।" शैलेन्द्र जी के भतीजे, जो पेशे से डॉक्टर हैं, ने 'ताऊजी की कहानी, पिताजी की ज़बानी' लेख में अपने ताऊ जी की संघर्ष यात्रा को शिद्दत से याद किया है।

साहित्यकार, हिन्दी के प्रोफेसर, सिनेमा के रसिक एवं गहन अध्येता प्रो॰ पुनीत बिसारिया का मानना है कि शैलेन्द्र के गीतों की रेंज बहुआयामी हैं। उनके गीतों में भारतीयता की सोंधी महक, प्रेम की कोमल भावनाएँ संबंधों की उष्णता, भक्ति की उच्चता और जीवन दर्शन के अनेक पक्ष मौजूद हैं। राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार से सम्मानित जाने माने फिल्म विश्लेषक सुनील मिश्र ने शैलेन्द्र जी के साहित्यिक योगदान को रेखांकित करते हुए लिखा है- "शैलेन्द्र की पहचान उनका स्मरण उनके अंदाज को सचमुच कबीर, रहीम और रैदास के स्मरण के साथ याद किया जाना चाहिए।" शैलेन्द्र के गीतों के दीवाने और उनके साथी रमेश चौबे जी ने शैलेन्द्र जी को 'इप्टा के गीतकार' के रूप में उनकी यादों को मार्मिक ढंग से साझा किया है। लेखक प्रोफेसर एवं शैलेन्द्र के गीतों पर शोध करने वाले एवं 'गीतों का जादूगर : शैलेन्द्र' पुस्तक के रचनाकार प्रो॰ ब्रज भूषण तिवारी का कहना है कि शैलेन्द्र एक ऐसे रचनाकार हैं जिन्हें प्राध्यापकीय व्याख्याओं, सूत्र, टीका आदि की जरूरत ही नहीं है। आकाशवाणी की सुपरिचित आवाज और प्रसिद्ध लेखक किशन शर्मा ने शैलेन्द्र की यादों को अपने संस्मरण- "अनगिनत बार मिलकर भी शायद कभी नहीं

मिल सका शैलेन्द्र से" में शैलेन्द्र से आत्मीय मुलाकातों और बातों को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। सिनेमा के गहन अध्येता, कवि और गायक मुकेश पर शोध कर चुके डॉ॰ राजीव श्रीवास्तव शैलेन्द्र को फिल्म गीत जगत का कबीर मानते हैं। लेखक और कवि किशोर कुमार कौशल शैलेन्द्र को शब्दों का जादूगर मानते हैं। जाने-माने पत्रकार और सिनेमा पर नियमित लिखने वाले मेरे मित्र दीप भट्ट के अनुसार "शैलेन्द्र का दर्जा मानव मन की अभिव्यक्तियों को सरल-सहज लहजे में कहने के कारण सबसे ऊपर है।"

कवि और लेखक सदानंद सुमन जी कहते हैं- 'आज के कर्ण कटु फिल्मी गीतों के बीच रेडियो पर शैलेन्द्र के इक्के दुक्के गीत आज भी सुनाई पड़ते हैं तब यह समझ में आता है कि शैलेन्द्र बेमिसाल थे। 'तरक्कीपसंद तहरीक के हमसफर' चर्चित पुस्तक के रचनाकार जाहिद खान शैलेन्द्र को क्रांतिकारी, संवेदनशील, प्रगतिशील जनकवि कहते हैं। राजभाषा प्रबंधक एवं लेखक नलिन विकास ने अपने शोधपरक लेख में 'शैलेन्द्र के गीतों में प्रगतिशील मूल्य' का विश्लेषण किया है।

'सिनेमाई कबीर: शैलेन्द्र' के लेखक एवं कवि प्रदीप जिलवाने के अनुसार शैलेन्द्र अपने गीतों में लोक परंपरा, लोक चेतना और लोक जीवन की उत्कृष्ट झाँकियाँ अपने करिश्माई शब्दों में दिखाते हैं। जाने माने पत्रकार लेखक जयनारायण प्रसाद ने 'तीसरी कसम' फिल्म के संदर्भ में उसके छायाकार सुब्रत मित्र की मार्मिक बातों का उल्लेख किया है। पत्रकार और लेखक वेद-विलास उनियाल ने शैलेन्द्र को जीवन मूल्यों एवं जनपक्षधरता का बड़ा कवि माना है। पत्रकारिता में अपनी विशिष्ट पहचान बनाने वाले रत्नेश कुमार ने अपने लेख में शैलेन्द्र और भूपेन हजारिका की लोकप्रियता का एक अलग अंदाज में विश्लेषण किया है। तेलगु भाषी कवि, लेखक और संपादक मुरलीकृष्ण कस्तूरी ने शैलेन्द्र को छवि गढ़ने वाला अनोखा गीतकार माना है।

इस पुस्तक के सभी रचनाकारों का मैं हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ, कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिनके लेखों और साक्षात्कारों के कारण शैलेन्द्र जी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर आधारित यह पुस्तक 'तू प्यार का सागर है' संपूर्ण हो

सकी। इस पुस्तक में संकलित सभी लेखों से सम्पादक की सहमति जरूरी नहीं है। पाठकों की प्रतिक्रियाओं और सुझावों का इंतजार रहेगा।

आवरण पृष्ठ का डिजाइन तैयार करने के लिए श्री लोकेश वर्मा एवं श्री सुरोजीत भट्टाचार्य, पुस्तक की टाइपिंग एवं सैटिंग के लिए श्रीमती सुमन लता शर्मा और पुस्तक को प्रसन्नतापूर्वक प्रकाशित करने के लिए श्री राहुल जैन और श्री रोहित जैन जी का हार्दिक आभार।

इस पुस्तक को पूरा करने में समय-समय पर मार्गदर्शन करने के लिए प्रोफेसर प्रह्लाद अग्रवाल जी और बड़े भाई एवं मित्र यादवेन्द्र जी, अमला शैलेन्द्र मजुमदार जी, दिनेश शैलेन्द्र जी, डॉ॰ अमरेन्द्र मिश्रा जी, कथाकार तजेन्द्र शर्मा, कवि यतीन्द्र मिश्र और आलोचक ओम निश्चल जी का शुक्रिया। जीवन संगिनी रीता जी का अशेष हार्दिक आभार।

फरवरी, 2020 इन्द्रजीत सिंह

# अनुक्रम

## शैलेन्द्र का हस्तलिखित गीत जिसे 'संगम' फिल्म में प्रयोग नहीं किया जा सका

'संगम' गायक - लता, मुकेश

कभी न कभी, कोई न कोई
कहीं न कहीं से आएगा।

तूने इतने सपने देखे
एक तो सच होगा कोई
एक तो मोती बनके रहेगा
आँख इतने आँसू रोई। कभी....

कुछ दिन पहले हम भी अकेले
ऐसे ही दुखड़े सहते थे
साँझ सवेरे लेकिन सपने
दिल से यही हम कहते थे। कभी...

कल जो सितारा टूट गिरा था
फिर से कहीं मुस्काएगा
भोर का मीठा राग सुनाकर
सोये भाग जगाएगा। कभी...
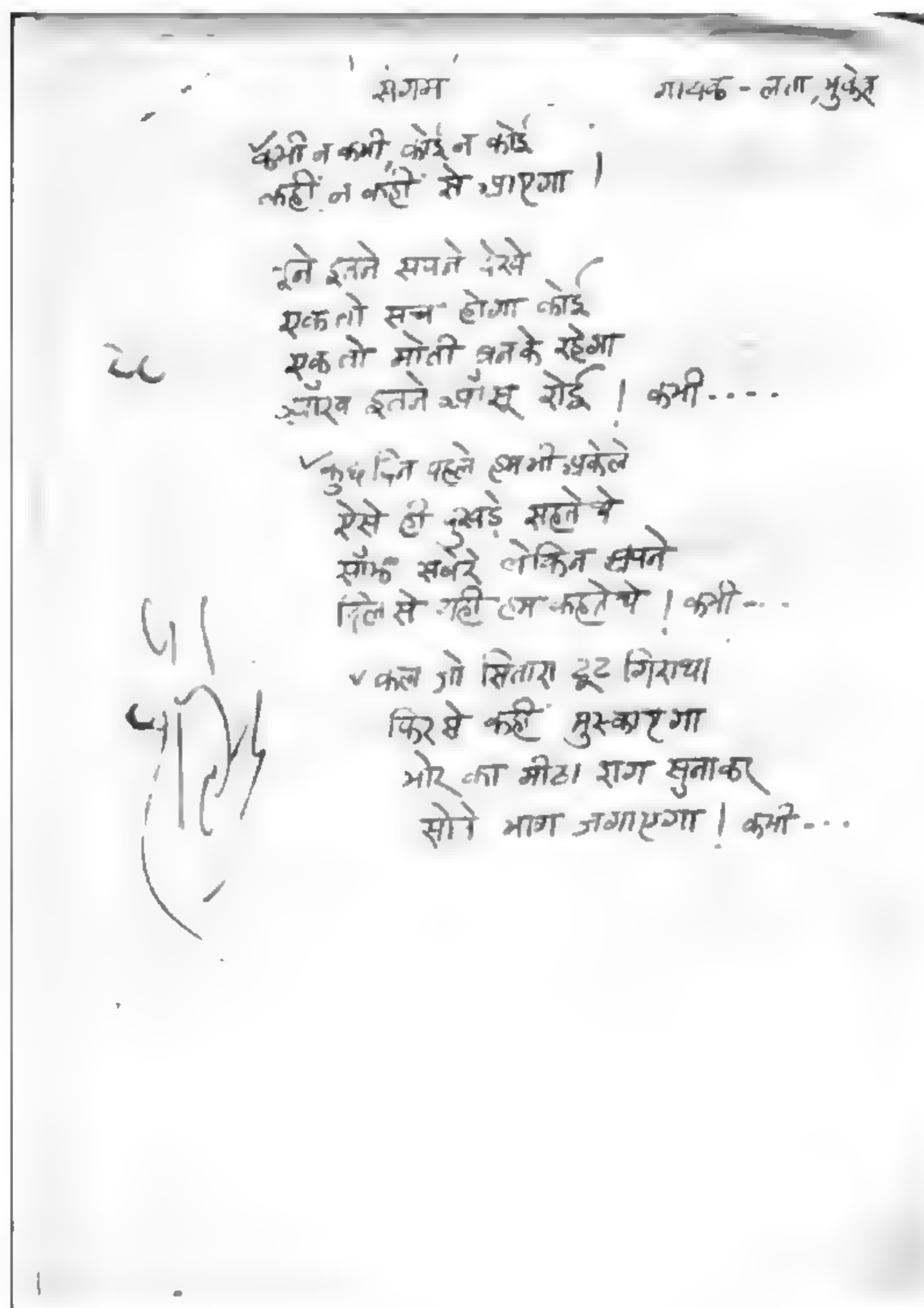
सौजन्य: गीतकार विट्ठलभाई पटेल

# साहित्यिक स्तर से भी बहुत बड़े हैं शैलेन्द्र के फिल्मी गीत

*– विश्वनाथ त्रिपाठी*

शैलेन्द्र को मैं हिन्दी फिल्मों का सबसे बड़ा गीतकार मानता हूँ। हिन्दी फिल्मों में गीत रचयिता के रूप में बहुत बड़े-बड़े नाम हैं जैसे- मजरुह, साहिर, कैफ़ी आज़मी और मख़दूम के भी कुछ गीत हैं लेकिन शैलेन्द्र की स्थिति इस मामले में कुछ अलग है। शैलेन्द्र को आप हिन्दी का भी कह सकते हैं, उर्दू का भी कह सकते हैं। शैलेन्द्र ने फिल्मों में गीत लिखते समय एक ऐसी भाषा का, एक ऐसी जबान का प्रयोग किया है जो किताबी नहीं है। आम आदमी मोहब्बत के समय, लड़ने-झगड़ने के समय या नाच गाने के समय जिस जबान का प्रयोग करता है, करीब-करीब उसी जबान में शैलेन्द्र ने हिन्दी फिल्मों के गीत लिखे। उनका बड़ा मशहूर गीत है, 'आवारा हूँ, आवारा हूँ, या गर्दिश में हूँ आसमान का तारा हूँ' या 'मेरा जूता है जापानी, ...... फिर भी दिल है हिन्दुस्तानी'। यह जो भाषा है, साहित्यिक भाषा नहीं है। न आप उसे केवल हिन्दी कह सकते हैं न ही उर्दू। हिन्दुस्तान का मामूली से मामूली आदमी अपनी जिंदगी में जिस तरह से अभिव्यक्त करता है, शैलेन्द्र ने उसी भाषा को अपने गीतों का आधार बनाया।

यह सुखद और सौभाग्य की बात है कि राज कपूर जैसे बड़े अभिनेता ने शैलेन्द्र की प्रतिभा को पहचाना। राज कपूर की योग्यता को शैलेन्द्र ने भी जाना और समझा। दोनों में मिलकर जनता को अपना सर्वश्रेष्ठ दिया। 'आवारा', 'श्री 420', 'जागते रहो', 'मेरा नाम जोकर', 'तीसरी कसम' आदि अनेक ऐसी बेहतरीन फिल्में हैं जिनमें दोनों का काम बोलता है। राज कपूर ने अभिनय में चार्ली चैपलिन की छाप नजर आती है और चार्ली चैपलिन दुनिया के महानतम अभिनेताओं में से एक हैं। जिनकी प्रतिभा के प्रशंसक गांधी जी और अल्बर्ट आइंस्टीन भी थे। चार्ली हँसाते-हँसाते रुला देते थे। शैलेन्द्र सरलता-सहजता के असाधारण कवि हैं। सौंदर्य के जितने रूप हैं, आयाम हैं, शैलेन्द्र ने अपने गीतों में चित्रित किए हैं। मेरा मानना है जो सुन्दर होता है वह सहज भी होता है और जो सहज होता है वह सुंदर भी होता है। जिसमें सहजता नहीं होती उसमें सुंदरता भी नहीं होती है। सरलता और सहजता

ने शैलेन्द्र के गीतों को लोकप्रियता दी है। विशाल जनमानस तक उनके गीत की पहुँच इसी कारण संभव हुई है।

'दो बीघा जमीन' फिल्म का एक गीत है-

'धरती कहे पुकार के, बीज बिछा ले प्यार के, मौसम बीता जाये'

शैलेन्द्र को संगीत की गहरी समझ थी इसलिए वह शब्दों में लय, ताल का संतुलन भी बैठाते थे। सामान्य शब्दावली में गहरे भावों को अभिव्यक्त करने का शैलेन्द्र के पास हुनर था। इस गीत में वह किसानों के साथ संपूर्ण जगत को निराशा के कोहरे से बाहर निकालकर उम्मीद की रोशनी में लाने का प्रयास करते हैं। कबीर ने ढाई आखर प्रेम की बात कही। अमरता की साधना का जो आदि स्रोत है वह मनुष्य की कामवासना है। 'नाद' तथा बिंद दो परंपराएँ हैं। नाद परंपरा में गुरु के शब्दों को शिष्य आगे बढ़ाते हैं। बिंद परंपरा संतान के माध्यम से बढ़ती है। दोनों के विकास का मूल बिंदु 'बीज' है।

इसी फिल्म का एक और गीत मुझे बहुत प्रिय है-

**हरियाला सावन ढोल बजाता आया**
**धिन तक तक मन के मोर नचाता आया**
**मिट्टी में जान जगाता आया**
**धरती पहनेगी हरी चुनरिया, बन के दुल्हनिया**

..............................

**बैठ न तू मन मारे।**
**आ गगन तले, देख पवन चले**
**आजा मिलजुल के गायें जीवन का गीत नया**
**ऐसे बीज बिछारे, सुख चैन उगे, दुख दर्द मिटे**
**नैनों में नाचे रे सपनों का धान हरा।'**

व्यक्तिगत रूप से मैं यह चाहूँगा कि जब देह से मेरे प्राण निकल रहे हों तो शैलेन्द्र का यही गीत बज रहा हो। इस गाने को सुनते हुए मेरा एहसास खत्म हो रहा होगा कि मैं मर रहा हूँ, मैं दुनिया से विदा ले रहा हूँ। यह जीवन का गीत है, आशा-उम्मीद का गीत है। जीवन के सौंदर्य के दर्शन पर आधारित है यह गीत।

गेहूँ, धान की फसल उगाना जिसे हम एग्रीकल्चर कह रहे हैं, यह हमारी संस्कृति का ही एक रूप है। कला या सृजन का जो उदात्त रूप हमें प्रकृति की ओर ले जाता है। खेतों में लहलहाती फसलें, किसानों की मेहनत-पसीने का अमृत हैं। **हराधान** सपना भी है और यथार्थ भी। शैलेन्द्र ने इस गीत में बहुत बड़ी बात कह दी है। धुन, लय, तान, शब्द, गायन, संगीत सब मिलकर इस गीत में कलात्मक सौंदर्य भर देते हैं। यह गीत जीवन के स्वप्न एवं यथार्थ को परिभाषित करता है। शैलेन्द्र के अर्थपूर्ण शब्दों ने, लता और मन्ना डे के मधुर स्वरों में तथा सलिल चौधरी के मनमोहक संगीत ने इस गीत को कालजयी बना दिया है। शैलेन्द्र का यह गीत किसी भी साहित्यिक कविता से बहुत आगे है। मेरा यह मानना है कि साहित्यिक स्तर से भी बहुत बड़े हैं शैलेन्द्र के अधिकांश फिल्मी गीत।

फिल्म 'श्री 420' का उनका लिखा गीत- 'मेरा जूता है जापानी..... फिर भी दिल है हिन्दुस्तानी' में सौन्दर्य, सरलता, व्यंग्य, राष्ट्रप्रेम और भारतीयता एक साथ सारे तत्त्व मौजूद हैं। देश पर, देश के लोगों पर इंग्लैंड का प्रभाव पड़ा, समाजवाद, साम्यवाद का प्रभाव पड़ा। 'दिल है हिन्दुस्तानी' पंक्ति हमारी भारतीय संस्कृति और भारतीयता का गुणगान करती है। शैलेन्द्र के गीत आतंकित नहीं करते हैं, दिल-दिमाग पर बोझ नहीं डालते। सीधे दिल में उतर जाते हैं। क्योंकि उनका मानना था कि सीधी सी बात न मिर्च-मसाला।

शैलेन्द्र ने रेणु जी की कहानी 'मारे गए गुलफ़ाम उर्फ तीसरी कसम' पर 'तीसरी कसम' फिल्म निर्माण करके साहित्यक-कलात्मक अभिरुचि का परिचय दिया। 'कुछ कहानियाँ कुछ विचार' पुस्तक में मैंने 'रेणु की कहानी- तीसरी कसम' पर एक लम्बा आलोचनात्मक लेख लिखा है। अनेक साहित्यिक कहानियों और उपन्यासों पर हिन्दी फिल्में बनी हैं। प्रेमचंद के उपन्यास 'गोदान' पर फिल्म बनी। न तो फिल्म कामयाब हुई न ही उपन्यास की भाषा फिल्म में नजर आई। सत्यजीत राय ने 'शतरंज के खिलाड़ी' फिल्म का निर्देशन किया। सत्यजीत राय ने मूल कहानी के साथ आंशिक रूप से न्याय किया है लेकिन रेणु जी की कहानी 'तीसरी कसम' की आत्मा फिल्म में मौजूद है। शैलेन्द्र ने कहानी के साथ अन्याय नहीं किया है। बॉक्स ऑफिस और राज कपूर के आग्रह को उन्होंने स्वीकार नहीं किया। फिल्म के मर्म का

फिल्मांकन ही शैलेन्द्र ने अपना धर्म समझा। फिल्म की असफलता ने उनके स्वप्न को छीन लिया, उन्हें अपने प्राणों का बलिदान करना पड़ा।

'तीसरी कसम' रेणु की श्रेष्ठ कहानी है। यह कहानी रूप की दृष्टि से कविता की बिंबात्मकता, प्रतीकात्मकता, लोकवार्त्ता आदि से समन्वित है। जिन अनुभवों ने कसमें खाने के लिए विवश किया है वे तीन हैं। लेकिन पहली दो कसमों की स्थितियाँ तीसरी स्थिति से इतना भिन्न है कि उन्हें पूर्वदीप्ति के रूप में जल्दी-जल्दी कहकर छुट्टी ले लेने के अलावा और कोई चारा नहीं था। पहली दो कसमें हिरामन ने जिन स्थितियों में खाई थीं वे उसके गाड़ीवान-जीवन में सहज थीं। 'तीसरी कसम' खिलाने वाली घटना अभूतपूर्व ही नहीं, दुर्लभ भी थी।

हिरामन जब हीराबाई के 'रंडी', 'पतुरिया' कहे जाने से कुछ क्रुद्ध और पीड़ित होता है तो उसमें कहीं न कहीं वह मनुष्य जरूर झलक मार उठता है जो वर्ग विभक्त समाज में शोषित नारी रूप देखकर क्षुब्ध होता है। रेणु की कहानी की 'तीसरी कसम' फिल्म में इस प्रसंग को बहुत ही अच्छी तरीके से दिखाया गया है। राज कपूर ने हिरामन के किरदार को साकार कर दिया है। वहीदा रहमान का मार्मिक अभिनय, उनका सौन्दर्य, उनका नृत्य मन को मोह लेता है। कहानी भी बहुत मार्मिक है, फिल्म में भी इस मार्मिकता को बहुत कलात्मक ढंग से पेश किया गया है। गाड़ीवान को अपने बैलों से कितनी आत्मीयता होती है इसे न जानने वाला व्यक्ति मार्मिकता को नहीं समझ पाएगा। 'तीसरी कसम' के बैल प्रेमचंद के 'दो बैलों की कथा' के बैल नहीं हैं, वे चेखव की कहानी- 'दुख' के तांगेवाले के घोड़े से मिलते-जुलते हैं। बैल हिरामन की वत्सलता, उत्साह और वीरता के सहचर और प्रतीक हैं।

शैलेन्द्र मजदूर थे, मजदूर नेता थे, एक्टिविस्ट और वामपंथी थे। अन्याय और असमानता के खिलाफ जीवन भर जूझते रहे। मनुष्यता से भरपूर संघर्षशील-संवेदनशील कवि का इस दुनिया से जल्दी चले जाना बहुत अखरता है।

हैं। वह हमें बांधे रखती है। शैलेन्द्र के गीतों ने एक सामूहिक अवचेतन रचा है। कहना चाहिए कि वह एक पुनरुज्जीवक स्मृति लोक है, एक आनन्ददायी नौस्टेल्जिया है जिसके कारण हम अपने बीहड़ वर्तमान में अतीत से ऊर्जा लेने की कोशिश करते हैं।

क्या संगीत के आवेगजनित ज्ञान के बिना यह कामयाबी हासिल की जा सकती थी? क्या प्रगतिशील कविता परंपरा के यथार्थ और कल्पना के घनिष्ठ संतुलन के बिना शैलेन्द्र के गीत यह अमरत्व पा सकते थे? फिल्मी गीत लेखन में एक ओर फिल्म, अभिनेता और स्थिति की जरूरतें पूरी करनी होती हैं, तो दूसरी ओर श्रोताओं (सामूहिक और व्यक्तिगत) का भी समुचित ध्यान रखना होता है। शैलेन्द्र ने दोनों बातों का निर्वाह किया और वे सफल हुए। एक अच्छा फिल्मी गीत नायक/नायिका की छवि को अमर कर देता है। उसकी चुम्बकीय शक्ति उन्हें अदृश्य नहीं होने देती। शायद इसी कारण हम राज कपूर, वहीदा रहमान, वैजंती माला आदि को उनकी अमिट छवियों में स्मृतियों के दृश्य संसार में संजोए हुए हैं। यह एक रहस्यमय दिवास्वपन जैसा है, कि यह जानते हुए भी कि लिखा किसी ने है, गा कोई रहा है और अभिनय करते हुए मात्र अधर-संचालन इन अभिनेताओं ने किया है, हम दृश्य-श्रव्य के परिलोक में खो जाते हैं। क्या यह एक जादुई-भूतैला संसार नहीं है जिसकी छड़ी शैलेन्द्र के हाथ में हैं।

यह एक विडम्बना ही है कि जब हम शैलेन्द्र जैसे एक महान गीतकार के जादुई संसार में विचरण करते हैं जो उसके निर्माण से पहले एक बड़े कवि से रुबरू होते हैं। यह एक जनकवि के जनप्रिय गीतकार होने की जैविक प्रक्रिया है। सारी तैयारी पूरी हो चुकी है। भाषा के छंद-अछंद, आवेग, यथार्थ और रूमान, जन पक्षधरता, लय, संगीत, प्राज्वलता, पारदर्शिता, राजनीतिक चेतना, दार्शनिकता, सहानुभूति आदि जनवादी मूल्यों को अभिव्यक्त करने वाली पांचवे-छठे दशक में लिखी कविताएं ही पीछे से आते प्रकाश की तरह उनके अविस्मरणीय गीतों का आधार बनी हैं। इसलिए यह कहना ठीक नहीं लगता है कि कवि और गीतकार दो अलग-अलग व्यक्ति हैं। दरअसल यह दोनों ही हिंदी की मुख्य धारा की प्रगतिशील कविता की परंपरा की भव्य निर्मितियां हैं। दोनों में ही ''एक साथ मुहब्बत और इन्कलाब की तपिश है।''

शैलेन्द्र के गीतों की भाषा कभी बासी नहीं होगी क्योंकि उसका मूल स्रोत लोक-संगीत में है और उसमें लोकोक्तियों में बदल जाने का हुनर है, ''जैसे- ''सजन रे झूठ मत बोलो'', कुछ लोग जो ज्यादा जानते हैं, इंसान को कम पहचानते हैं'' ''सवेरे वाली गाड़ी से चले जाएंगे'', ''दोस्त दोस्त न रहा, प्यार-प्यार न रहा'', धरती कहे पुकार के...मौसम बीता जाये'', ''तू प्यार का सागर है'', ''नन्हे-मुन्ने बच्चे तेरी मुट्ठी में क्या है'', ऐसे अनगिनत मुखड़े हैं जो हिंदी की लोकोक्तियां बन चुके हैं। शैलेन्द्र ने हिंदी भाषा में तत्सम और तद्भव की संप्रेषणीयता का अद्भुत संतुलन बनाये रखा है जिससे कविता की साहित्यिकता कम नहीं हुई है।

प्रसाद, पंत, बच्चन व बहुतेरे स्वतंत्रोत्तर बड़े कवियों से उन्होंने अपनी भाषा का गहरा परिष्कार किया और साथ ही कामगारों के बीच एक कामगार जनकवि की भाषा विकसित की जिसे वे स्वयं ''मशीनों के गीत'' की भाषा कहते हैं। इसलिए शैलेन्द्र की कविता में दोहराव और फिजूलखर्ची नहीं है। उनके फिल्मी गीत आम आदमी से सहज संवाद करते हैं। भाषा बड़ी सावधानी से वे शब्द चुनती है जो पात्रों की भावना, संवेदना और स्थिति के अनुकूल होते हैं। आश्चर्य तो यह है कि शैलेन्द्र के बाद फिल्म संगीत में अनेक प्रयोग हुए, कुछ स्वतः स्फूर्त, कुछ आयातित, लेकिन गीत-भाषा आधुनिक रूप से विकसित नहीं हुई। बल्कि देखने में आता है कि वह पतनशील, अधिक लिज़लिज़ी, सहज अश्लील, शब्द-संकीर्ण और अर्धशिक्षित, बजारू होती चली गयी। अब गीतकार अपने को दोहराते हैं, वे फिल्मी घटियापन, लोक संगीत का विरूपीकरण और फार्मूलाबद्धता के आगे नतशिर हैं। उन्होंने शायद ही शैलेन्द्र की तरह हिंदी कविता और भाषा की गहराई से अध्ययन किया हो। शायद उन्हें इसकी जरूरत ही नहीं है। हर बार ''रब'' कहने, ''कजरारे कजरारे'' कहने से ही उनका काम चल जाता है। फिल्मी गीत का आस्वाद इतना विकृत हो चला है कि प्रबुद्ध श्रोताओं को शैलेन्द्र प्रबलता से याद आते हैं। शैलेन्द्र की कविता में शुरू से ही अदम्य जिजीविषा और आशा दिखाई देती है। वे दृढ़ विश्वास और आशा के अप्रतिम प्रगतिशील कवि हैं। आशा इतनी अदम्य और उत्कट है कि जीवन के यथार्थ को दार्शनिक आइडियॉलोजी में बदल देती है। नागार्जुन, त्रिलोचन, कैफी के समकालीन शैलेन्द्र का उनके जीवनकाल में मात्र एक

कविता संकलन 1955 में छपता है तो वे अत्यंत विनम्रता में लिखते हैं कि ये कविताएं केवल रिकॉर्ड के लिए हैं। जबकि ''न्यौता और चुनौती'' की 32 कविताएं हिंदी की प्रगतिशील कविता परंपरा की धरोधर हैं। वे विश्व में साम्यवाद का विजयगान हैं और भारत जैसे उस सवेरे का इंतज़ार करते देशों के लिए ''जागते रहो'' का भैरव राग हैं। मृत्यु से बारह वर्ष पहले लिखी कविता ''बस की प्रतीक्षा में'' शैलेन्द्र एक बड़ा रूपक रचते हैं: सारा भारतीय जनसमूह प्रतीक्षा में खड़ा है, रोजगार का दफ्तर दूर है, अच्छे दिन दूर हैं, दुःख बढ़ते गए हैं, सभी त्रस्त हैं जिनके वास्ते कहने को तो पुलिस, फौज, अफसर, मंत्री हैं लेकिन उन पर ही चलती हैं गोलियां .......... और सब एक अंतहीन प्रतीक्षा में हैं। कई बार कविता का सच बहुत आगे का सच होता है। एक अन्य कविता ''मुझको भी इंग्लैंड ले चलो'' में बेहद मारक व्यंग्य है: ''मुझको भी इंग्लैंड ले चलो, पंडित जी महराज, देखूं रानी के सिर कैसे धरा जाएगा ताज!'' और अंत में कहते है : ''रुमानी कविता लिखता था सो अब लिखी न जाए/चारों ओर अकाल, जिऊं मैं कागद-पत्तर खाय।'' शैलेन्द्र श्रमिकों के कवि थे जैसा कि हर सच्चा क्रांतिकारी कवि होता है। ''इतिहास'' कविता में श्रम की महागाथा लिखते वक्त वे बार-बार कहते हैं कि अगर श्रमिक नहीं होते तो यह संसार भी नहीं होता। पूंजीवादी सबको निगल जाता। हर महान कवि अपने समय का सबसे प्रामाणिक पाठक होता है। साम्यवाद के आशावाद, उन्मेषकाल की साक्षियां और संघर्ष करते जनमानस की तस्वीरें अगर देखनी हो तो शैलेन्द्र की इन कविताओं का पुनर्पाठ किया जाए। कैसे फिल्म-व्यापार एक प्रतिभावान मौलिक कवि को नष्ट कर देता है, इसे शैलेन्द्र की विफलता से समझा जाए। हम मुक्तिबोध को हमारे समय की भव्यतम विफलता की तरह याद करते हैं, फिर भी वे हमारे समय के सबसे जिंदा कवि हैं। शैलेन्द्र भी बिल्कुल वैसे ही हैं— साहित्यिक निष्ठा के प्रति अविचलित प्रतिबद्ध, लेकिन फिल्मी समझौतापरस्त व्यावसायिकता को नकारने वाले ....... शायद यही उनकी तीसरी कसम थी। दो कसमें थीं : पहली आइडियालॉजी और दूसरी मानवतावाद।

# आवारा था, गर्दिश में था, आसमान का तारा था

*–मुकेश*

आवारा था, गर्दिश में था, आसमान का तारा था- मुकेश! मुकेश! आखिरी अल्फाज यही थे तुम्हारे। मैं तुम्हारी बगल में बेबस लाचार की तरह बैठा था। शैलेन्द्र मेरे जिगरी दोस्त, मैं देखता ही रह गया और तुम होश खो चुके थे। कानों में तुम्हारी पुकार गूंज रही थी, अब भी जागते-सोते तुम्हारी आवाज महसूस करता हूँ तो हड़बड़ा उठता हूँ, चौंक जाता हूँ। हजार कोशिश करूं लेकिन सच को झुठलाया नहीं जा सकता। क्या सचमुच ही तुम चले गए, अभी तो तुम्हारे जवानी के दिन थे। इतनी जल्दी ही क्या थी? हमसे रूठने का कारण तो बता जाते।

अजीब दुनिया है यह। एक जीता-जागता, हँसता-खेलता आदमी हमारे बीच से हमेशा-हमेशा के लिए गायब हो जाता है, फिर भी यह चलती रहती है, फर्क नहीं आता, यह वैसी की वैसी ही चलती रहती है। शैलेन्द्र चले गए, फिर भी फिल्म-उद्योग चलेगा, फिल्में बनती रहेंगी। लेकिन एक बात निश्चित है कि आज से दस साल बाद या सौ साल बाद भी जब कभी फिल्म गीतकारों की बात उठेगी, तब शैलेन्द्र का नाम इज्जत के साथ लिया जाएगा। उनके गीत तो दुनिया भर में मशहूर हो गए थे। क्या इन गीतों को कोई भुला सकता है- 'आवारा हूँ', जिस देश में गंगा बहती है', 'मुझे तुमसे कुछ भी न चाहिए'... आदि। मैं उन्हें उस दिन से जानता हूँ जब वे फिल्मों में आए थे। उनका व्यक्तित्व कुछ निराला ही था। वे बैठते भी अपने ही तरीके से थे, सिगरेट पीने की अदा भी उनकी अपनी ही थी, हँसने मुस्कराने में भी शैलेन्द्र, शैलेन्द्र ही थे। कभी भूलकर भी उस भोले, निश्छल, अद्‌भुत कलाकार ने किसी की बुराई नहीं की।

वे जब 'तीसरी कसम' बना रहे थे तब हम दोनों बहुत ही नजदीक आ गए। हम एक साथ उठते-बैठते और इस फिल्म से संबंधित हर मसले पर विचार करते, कोई समस्या आ जाती तो उसे एक साथ मिलकर दूर करने की कोशिश में लग जाते। फिल्म बनाने का काम उनके लिए बहुत ही कठिन था। आदमी की अच्छाइयाँ व ईमानदारी पर अगाध आस्था होने के कारण फिल्म व्यवसाय की ऊंची-नीची

---

धर्मयुग, 8 जनवरी, 1967 से साभार

घाटियों की वे उपेक्षा कर बैठे। इस कलाकार से व्यापार की गुत्थियाँ सुलझने के बजाय उलझती गईं। दरअसल उन्होंने अपने सिर पर एक ऐसा बखेड़ा मोल ले लिया था जो उनके स्वभाव के विपरीत था। लेकिन फिर भी व्यापार संबंधी समस्याएँ एक-एक करके सुलझती गईं। इसके लिए श्री राज कपूर का दिली सहयोग विशेष रूप से उल्लेखनीय रहा। सभी कुछ सामान्य हो चला था कि 13 दिसंबर को शंकर जी ने टेलीफोन पर कहा- "हमारे शैलेन्द्र की तबीयत ठीक नहीं है।" बंबई की जनता उस वक्त क्रिकेट मैच की ओर उमड़ रही थी। हम शैलेन्द्र जी के घर खार की ओर दौड़े। उस समय शैलेन्द्र को देखते ही मैं थोड़ा चौंका। हाथ-पाँव फूले हुए। बहकी-बहकी सी बातें। कुछ अजीब सी हालत बना रखी थी। हम काफी देर उनके पास बैठे।

रात आठ बजे मैं अपने घर पहुँचा तो मालूम पड़ा कि शैलेन्द्र अस्पताल में भर्ती हो गए हैं और उन्होंने मुझे याद किया है। मैं अस्पताल चला गया। वहाँ देखता हूँ कि चार-पाँच आदमी उन्हें पकड़े हुए हैं और वे भागने की कोशिश कर रहे हैं। मुझे देखा तो उनके चेहरे पर थोड़ी खुशी, थोड़ी तसल्ली महसूस हुई। बेचैनी भी घटी। मैंने बड़े प्यार से उनके कंधे पर हाथ रखा और पलंग पर लिटा दिया। वे बहुत ही ज्यादा थके हुए लग रहे थे।

कुछ देर बाद डॉक्टर साहब आए फिर घर जाते समय रास्ते में उन्होंने मुझे बताया कि इस बीमारी से उनका बचना मुश्किल है। मैं घर पहुँचा। सोने की काफी कोशिश की, मगर नींद नहीं आई। बहुत देर हो गई। नींद आती भी कैसे! दिल की बेचैनी इस ख्याल के घने होते जाने से बढ़ती गई कि कि मेरा बरसों पुराना अजीज़ दोस्त शायद कल नहीं रहेगा। रात भर मैंने बार-बार उठकर अस्पताल टेलीफोन किया, तबीयत पूछी। जैसे तैसे सुबह हुई। सुबह एक नई उम्मीद लेकर आई। फोन पर मालूम पड़ा की अब उनकी तबीयत पहले से अच्छी है। मैंने अपने आपको बहुत बुरा भला कहा, मन ही मन कोसा कि रात को मैं अपने दोस्त के लिए किस-किस किस्म के ख्याल अपने मन में पाल रहा था। मुझे वैसा नहीं सोचना चाहिए था।

क्रिकेट मैच में जाने से पहले बारह बजे अस्पताल फोन किया तो पता चला कि वे सो रहे हैं। जौहर साहब के साथ खाना खाकर जा रहा था कि रास्ते में खबर मिली कि शैलेन्द्र की तबीयत ज्यादा बिगड़ गई है। मैं अस्पताल पहुँचा। उस वक्त

वे ऑक्सीजन गैस पर थे। ग्लूकोज़ और खून दिया जा रहा था। डॉक्टर ने उनकी हालत बताई तो मैं फूटकर रो पड़ा। उनके परिवार का ख्याल आया। मन में थोड़ी हिम्मत बाँधी और अपने आपको संभालकर बाहर आया। बच्चे असहाय भाव से ताक रहे थे। खाने के बहाने मैंने उन्हें बाहर भेज दिया। भाभी (श्रीमती शैलेन्द्र) वहीं थीं। उन्होंने पूछा कि मैं रो क्यों रहा हूँ? उनकी तबीयत तो ठीक है ना? उस वक्त मैं उन्हें क्या बताता कि अंदर क्या हो रहा है और क्या होने वाला है। मैं कभी रूम के अंदर जाता कभी बाहर आता। मन में सिर्फ एक उम्मीद कर रहा था कि एक चमत्कार हो जाए और शैलेन्द्र बच जाए। मगर नहीं, विधाता की कुछ और ही इच्छा थी। सब कुछ करते हुए भी दोपहर तीन बजे उनकी सांस टूट गई। वे दुनिया के रिश्ते-नाते तोड़कर चले गए।

कई लोग कहते हैं कि कविराज पीने से मरे, कुछ लोगों का ख्याल है कि उनको कर्ज की फिक्र ने मार डाला और इसी किस्म की बातें लोग बनाते हैं। शैलेन्द्र जी को पीने का शौक जरूर था लेकिन वे इतने लापवाह नहीं थे कि जानते हुए कि पीना उनके लिए बुरा है, पीते। कर्जदारियां जरूर थी मगर माँगनेवालों के दिल में भी शैलेन्द्र के लिए प्यार था, मुहब्बत थी। वे यही कहते कि लेन-देन दुनिया में चलता आया है और चलता रहेगा। फिर किस गम ने उन्हें मारा?

हिन्दू शास्त्रों के हिसाब से कहा जाता है कि अगर कोई लेन-देन बाकी रह जाए तो अगले जन्म में फिर मुलाकात होती है। तो मैं अपने को बहुत भाग्यशाली समझता हूँ क्योंकि उनके बाकी सब कर्ज तो चुक जाएँगे लेकिन उन्होंने मुझे एक मोंट ब्लैंक पेन देने का वादा किया था। उसके लिए उनसे जरूर मिलना होगा और उस रोज मैं उनसे पूछुंगा कि मेरे यार, आखिर कौन सा गम था जो तुम्हे हमसे छीनकर ले गया? जब भी शैलेन्द्र की सूरत उनकी हँसी, बातें याद आती हैं यही बात दिल में उठती है- 'आवारा था, गर्दिश में था, आसमान का तारा था'

# सौ बार भी मरेंगे हम, जन्मे जहाँ इक बार

*– लीलाधर मंडलोई*

मेरी एक कविता है- 'अगर मेरी कविता में न आये मेरी जन्मभूमि। मैं कवि नहीं।' मैं जन्मभूमि से बेइंतहा मोहब्बत करते हुए रसूल हमजातोव को याद करता हूँ तो याद आते हैं शैलेन्द्र- 'सौ बार भी मरेंगे हम, जन्मे जहाँ इक बार।' उनकी अधिकांश कविताओं में अपने देश की धरती से, उसके मजदूरों, से, किसानों से, औरतों, बच्चों और प्रकृति से अभूतपूर्व प्रेम की धारा शिद्धत के साथ मौजूद है। उनकी कविताओं में मनुष्यता से छीजती धरती के पक्ष में अनेक पंक्तियाँ हैं-

**'ओ पंछी प्यारे, साँझ सकारे।' (फिल्म- बंदिनी)**

**'हम उस देश के वासी हैं जिस देश में गंगा बहती है' (जिस देश में गंगा बहती है।**

**'हम तो जाते अपने गाम, सबको राम, राम, राम' (दीवाना)**

**'हरियाला सावन ढोल बजाता आया' (दो बीघा जमीन)**

**'अन्नपूर्णा लक्ष्मी को आज़ाद करेंगे,**
**स्वर्ग इस धरती पर आबाद करेंगे'**

**'ये कौन हंसता है फूलों में छिपकर,**
**बहार बेचैन है किसकी धुन पर'**
**कहीं रुनझुन, कहीं गुनगुन,**
**जैसे नाचे ज़मी।' (मधुमती)**

**'तू ज़िंदा है तो जिन्दगी की जीत में यकीन कर,**
**अगर कही है स्वर्ग तो उतार ला ज़मीन पर।'**

हम हिन्दी साहित्य में जब चिंतन करते हैं तो तुलसी के लोकमंगल को बार-बार उद्धृत करते हैं। शैलेन्द्र ने भी तुलसी की तरह अपने गीतों में लोकमंगल की बात कही है लेकिन आलोचकों को उनका लोकमंगल नज़र नहीं आता, ऐसा क्यों? क्या महाकाव्य लिखने से ही कोई कवि बड़ा हो जाता है? आज अनेक महाकाव्यों में लिखा विस्मृति के कगार पर है। शैलेन्द्र को भले ही हिन्दी साहित्य में

यथोचित सम्मान नहीं मिला लेकिन शैलेन्द्र के गीत जनस्मृति में हैं, जनता की जुबान पर हैं, जन-जन के दिलों में हैं।

**वे पेट सभी का भरते, पर खुद भूखों मरते हैं**... हिन्दी कविता का मूलाधार प्रगतिशील जनवादी चेतना है। शैलेन्द्र बौद्धिक नहीं ज़मीनी मार्क्सवादी थे। मजदूर-किसान आंदोलन और उनके संघर्ष की जय-विजय उनका प्रथम और अंतिम स्वप्न था। कुछ उदारहण देखिए-

**'साथी थे, मजदूर पुत्र थे, झंडा लेकर बढ़ते थे तुम।'**

× × × × × × × ×

**'वे अन्न अनाज उगाते, वे ऊँचे महल उठाते**
**कोयले लोहे सोने से धरती पर स्वर्ग बसाते**
**वे पेट सभी का भरते, पर खुद भूखों मरते हैं।'**

× × × × × × × ×

**'तुमने माँगें ठुकराई हैं, तुमने तोड़ा है हर वादा**
**छीना हमसे सस्ता अनाज, तुम छटनी पर हो आमादा**
**तो अपनी भी तैयारी है, तो हमने भी ललकारा है।**
**हर जोर जुल्म की टक्कर में हड़ताल हमारा नारा है।'**

× × × × × × × ×

**'उनका कहना है यह कैसी आजादी है**
**वही ढाक के तीन पात हैं, बरबादी है।'**

शैलेन्द्र के पास ऐसी अनेक पंक्तियाँ हैं जो जनवादी चेतना की मुकम्मल गवाही हैं। जनवादी कवियों की पांत में वे अधिक साफ-मारक कवि थे। वे उस ज़माने में सत्ता के बदलते चरित्र, सेठों के गठजोड़ और इनफ्लेशन के बाजार तंत्र को भीतर तक जान रहे थे। वे पूँजीवाद, कार्पोरेट के षड्यंत्र, गरीबों की त्रासदी के सच को जान गए थे। आज की कविता में यह चेतना उतनी प्रखर नहीं। आज की कविता शैलेन्द्र के काव्य के सामने भोथरी लगती है। यह गौरतलब है कि शैलेन्द्र की कविता कथ्य के साथ यथार्थ में उपस्थित है, अमूर्त इशारों में नहीं। इसीलिए वह टिकी है और आंदोलनों में भी शिद्दत के साथ मौजूद है।

**किसी के वास्ते हो तेरे दिल में प्यार**.... प्राचीन काव्य हो या समकालीन कविता। कविता के तीन शाश्वत तत्व हैं- प्रेम, करुणा और मानवीयता। शैलेन्द्र के

गीतों में प्रेम, करुणा और मनुष्यता के तीनों रंग मौजूद हैं। कुछ उदाहरण काबिले गौर हैं-

**'तू प्यार का सागर है,**
**तेरी इक बूंद के प्यासे हम।' (फिल्म- सीमा)**

**'आज फिर जीने की तमन्ना है,**
**आज फिर मरने का इरादा है।' (फिल्म- गाइड)**

**'सजनवा बैरी हो गये हमार,**
**करमवा बैरी हो गए हमार।' (फिल्म- तीसरी कसम)**

**'अब के बरस भेज भैया को बाबुल,**
**सावन में लीजो बुलाय रे।' (फिल्म- बंदिनी)**

**'सुन भैया रहिमु पाकिस्तान के,**
**भुलवा पुकारे हिंदुस्तान से।'**

**'किसी की मुस्कुराहटों पे हो निसार,**
**किसी का दर्द मिल सके तो ले उधार,**
**किसी के वास्ते हो तेरे दिल में प्यार,**
**जीना इसी का नाम है।' (फिल्म- अनाड़ी)**

समकालीन कविता में कहीं एक तत्त्व है तो दूसरा अनुपस्थित लेकिन शैलेन्द्र की कविता में सूफ़ियाना रंग लिए दर्शन है, प्रेम की निर्मल ज़मीन है, करुणा का असीम सागर है और प्रेम का उज्ज्वल रूप जो संस्कृति-सभ्यता का दामन थामे अवतरित होता है।

संक्षेप में कहें तो कविता से जो मुराद हिंदी आलोचना की हो सकती है, वह सब शैलेन्द्र की कविता में है। शैलेन्द्र की कविता समकालीन कविता के परिसर में सच्ची जन कविता है- जीवित जागृत।

# 'मैं चिर प्रेमी शैलेन्द्र और मेरी प्रेयसि हिंदी जनता

*–रविभूषण*

कवि-गीतकार शंकर शैलेन्द्र (30 अगस्त 1923-14 दिसंबर 1966) की ख्याति और प्रतिष्ठा उनके फिल्मी गीतों के कारण जितनी है, उतनी उनकी कविताओं को लेकर नहीं रही है। प्रगतिशील, जनवादी, मार्क्सवादी एवं क्रांतिकारी शक्तियों ने 'हर जोर-जुल्म की टक्कर में हड़ताल हमारा नारा है', 'तू जिंदा है तो जिन्दगी की जीत पर यकीन कर, क्रांति के लिए उठे कदम/क्रांति के लिए जले मशाल, 'भगत सिंह! इस बार न लेना काया भारतवासी की' कविताओं को बार-बार गाया और गुनगुनाया है, पर उनकी कविताओं में जिन्दगी की जो तमाम धड़कने, मन की जो समस्त बेचैनियाँ और अपने समय और समाज की जो सभी चिंताएँ हैं, पूँजीवाद और साम्राज्यवाद की जो दुरभिसंधियाँ हैं उन पर कम ध्यान दिया गया है, जबकि न्यौता और चुनौती' (पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 1955) में उनकी कुल 32 कविताएँ संकलित हैं– 1945 की 4, 1946 की 3, 1947 की 5, 1948 की 5, 1949 की 7, 1950 की 2, 1951 की 1, 1952 की 1, 1953 की 3, और 1954 की 1, 1945 से 1954 तक कि कविताओं को एकत्रित करने का उद्देश्य यह था कि रिकार्ड रह सके। शैलेन्द्र ने अपने लिए इस संग्रह को इसलिए महत्त्वपूर्ण माना था कि ''ये वर्ष और इनकी रचनाएँ साहित्य और कला के प्रति मेरा दृष्टिकोण निश्चित करने में सहायक हुए हैं'' इस कविता-संग्रह का पुनर्मुदण (जनवरी 2017) कामगार प्रकाशन दिल्ली ने किया। शैलेन्द्र ने 'न्यौता और चुनौती' 'मराठी के कामगार साहित्यिक अन्ना भाऊ साठे' को समर्पित की है। अन्ना भाऊ साठे (1 अगस्त 1920-18 जुलाई 1969) का वास्तविक नाम तुकाराम भाऊ राव साठे था। वे मंग समुदाय के दलित लेखक, सामाजिक सुधारक और लोक कवि थे, जिन्हें मराठी में साहित्य सम्राट और लोक शायर कहा जाता है। उनकी पंक्ति है- "पृथ्वी साँप के फन पर नहीं बल्कि श्रमिकों के परिश्रम पर टिकी है।" मराठी में अन्ना भाऊ साठे के 35 उपन्यास हैं, जिनमें 'फकीरा (1959) भी है, 15 कहानी-संग्रह और 10 बैलेड्स हैं। वे आरंभ में कम्युनिस्ट विचारधारा से

प्रभावित थे, इप्टा से जुड़े थे। भारत सरकार ने 2002 में उन पर डाक टिकट भी जारी किया।

शैलेन्द्र का दूसरा कविता-संग्रह राजकमल प्रकाशन से 2013 में आया– 'सभी अप्रकाशित कविताओं का पहला और इकट्ठा एक मात्र संकलन', पर इस संकलन की कुल 71 कविता और गीत में से लगभग 20 कविताएँ 'न्यौता और चुनौती' में प्रकाशित हो चुकी थीं। फिल्मी गीतों से अलग शैलेन्द्र की 80-82 कविताएँ और गीत हैं जिनके समग्र पाठ और 170 फिल्मों के 800 से अधिक गीतों के सम्यक् पाठ की आवश्यकता सदैव बनी रहेगी। 'बरसात (1949) फिल्म में जिसके गाने हसरत जयपुरी और शैलेन्द्र ने लिखे थे, शैलेन्द्र के केवल दो गीत हैं– 'बरसात में हमसे मिले तुम सजन, 'तुम से मिले हम बरसात में' और 'पतली कमर है तिरछी नजर है'। इसके पहले 1946 में जब राजकपूर ने अपने पिता पृथ्वीराज कपूर के साथ 'इप्टा' के एक प्रोग्राम में एक नौजवान को मंच पर आकर यह गाते सुना– 'हमारी बगिया में आग लगा गयो रे गोरा परदेशी' तो उस गीतकार की बात उनके मन को स्पर्श कर गई। राजकपूर उन दिनों 'आग' फिल्म बना रहे थे और इस फिल्म के 'क्लाइमेक्स' गीत की तलाश में थे। वे शंकर शैलेन्द्र से मिले, अपना परिचय दिया– ''मैं पृथ्वी राज का बेटा हूँ, एक फिल्म बना रहा हूँ 'आग'। 'क्या उसके लिए आप एक गाना लिखेंगे?' शैलेन्द्र का सीधा जवाब था 'नहीं', उनका स्पष्ट जवाब था ''मैं पैसे के लिए नहीं लिखता, कोई ऐसी बात नहीं जो मुझे आपकी फिल्म में गाना लिखने के लिए प्रेरणा दे। मैं क्यों लिखूँ? उन्हें उस समय कम्युनिस्ट पार्टी, वामपंथी विचार प्रेरणा दे रहे थे। नौकरी साधारण थी, माटुंगा रेलवे में ऐपरेंटिस के तौर पर मेकेनिकल इंजीनियरिंग डिपार्टमेंट की नौकरी ''राजकपूर ने उनका गीत सुनकर उनके नाम-काम की जानकारी प्राप्त कर ली थी। पता चला कि उसका नाम शंकर शैलेन्द्र है, रेलवे में वेल्डर की नौकरी करता है और परेल में जी.आर.पी. के रेलवे क्वार्टर में रहता है। 'इप्टा का सक्रिय सदस्य है'।

शैलेन्द्र का वास्तविक नाम शंकर दास राव था। पिता केसरी लाल राव एक कांट्रेक्टर थे। रमा भारती ने 'अंदर की आग' की भूमिका 'जिन्दगी मैंने देखी है' में यह लिखा है कि शैलेन्द्र का संबंध आरा (बिहार) जिला के घुसपुर गाँव के दलित परिवार से था.... गाँव के लिए एक कहावत मशहूर थी 'जसपुर नगरी घुसपुर गाँव,

वहाँ के बसिया रावत राव'....हॉकी खेलते हुए कुछ छात्रों की जातिवादी टिप्पणी थी– अब ये लोग भी खेल खेलेंगे, जिससे खिन्न होकर स्वयं अपनी हॉकी स्टिक तोड़ दी और कलम-कागज से मैत्री स्थापित की'' और ''30 अगस्त 1966 को केन्द्रीय मंत्री जगजीवन राम ने शैलेन्द्र के जन्म-दिन पर एक बधाई-संदेश में यह कहा था कि 'संत रविदास के बाद शैलेन्द्र हिंदी के सर्वाधिक लोकप्रिय हरिजन कवि हैं''। 'अंदर की आग' पुस्तक का लोकार्पण नामवर सिंह ने किया था और उन्होंने ''शैलेन्द्र को संत रैदास के बाद सबसे महत्त्वपूर्ण एस सी कवि बताया'' ('विनोद विप्लव, फारवर्ड प्रेस, फरवरी 2016)''।

शैलेन्द्र को दलित कवि के रूप में चिह्नित और प्रतिष्ठित करना गलत है। वे किसानों और मजदूरों के कवि हैं, निर्धनों के कवि हैं, उनकी कविताओं में जो वंचित, दुखी तिरस्कृत, अपमानित हैं, उन्हें वाणी दी गई है। बम्बई में वर्कशाप के मशीनों के शोर से कम नहीं था उनके भीतर का शोर, उनके भीतर की आग सदैव जलती रही। कम जलती या न जलती तो वे अधिक जीते और न 'तीसरी कसम' बनाने के कारण आर्थिक दुरवस्था में जाते, पर शैलेन्द्र, शैलेन्द्र थे जिन्होंने राजकपूर की 'आग' फिल्म के लिए गीत नहीं लिखे और अपने भीतर की आग को कभी बुझने न दिया।

'अंदर की आग' कविता आजादी के तुरंत बाद की है, शैलेन्द्र ने देखा आजादी के बाद कुछ भी नहीं बदला– ''अब भी सारा ठाट वही है/वही फौज है, वही पुलिस है लाट वही है''.....''थका पिसा मजदूर वही दहकान वही है/कहने को भारत पर हिंदुस्तान वही है'' उन्होंने देखा कि सही आजादी देश को नहीं मिली है– ''अंदर की यह आग एक दिन भड़केगी ही/नई गुलामी की बेड़ी भी तड़केगी ही'' वर्षों बाद 'जिस देश में गंगा बहती है' (1960) फिल्म में सीने की आग को सबके सामने रखा– है आग हमारे सीने में, हम आग से खेलते आते हैं/टकराते हैं जो इस ताकत से, वो मिट्टी में मिल जाते हैं/तुमसे तो पतंगा अच्छा है, जो हँसते हुए जल जाता है/वो प्यार में मिट तो जाता है, पर नाम अमर कर जाता है''। शैलेन्द्र के सामने देश के लिए मर मिटने वाले कई वीर थे, भगत सिंह उनके आदर्श थे, प्रेरणास्रोत थे। 'भगत सिंह से' कविता में उन्होंने कहा– ''भगत सिंह! इस बार न लेना काया भारतवासी की/देशभक्ति के लिए आज भी सजा मिलेगी फाँसी की!'' इस कविता में उन्होंने गढ़वाली, महाक्रांति के दूतों और रानी लक्ष्मीबाई को

याद किया। क्रांतिकारी आंदोलन का इतिहास उनके सामने था। शैलेन्द्र की काव्य-दृष्टि और इतिहास-दृष्टि भिन्न नहीं है। अपनी एक कविता 'इतिहास' में वे किसानों, मजदूरों, खेत-खलिहानों, मिलों और कारखानों की बात करते हैं, जहाँ कामगार सबका पेट भरते हैं, ''पर खुद भूखों मरते हैं, जो महलों का निर्माण करते हैं और खुद 'आकाशी छत के नीचे/गर्मी सर्दी बरसातें/काटते दिवस और रातें'' 'इतिहास' कविता 1947 की है, जिसमें उन्होंने उनकी बात कही है, जिनकी न तो शासन की भूख मिटती है और न शोषण की– ''ये भिन्न-भिन्न देशों में/छल के व्यापार सजाते/पूँजी के जाल बिछाते/ये और और बढ़ जाते'' पूँजीवाद और साम्राज्यवाद की उन्हें सही पहचान थी। ऐसी पहचान उस समय हिंदी के प्रगतिशील जनवादी कवियों में ही थी– विशेषतः नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, मुक्तिबोध और शमशेर में।

शंकर शैलेन्द्र की क्रांतिकारी कविताओं को राम विलास शर्मा ने अपनी धरती अपने लोग (मुंडेर पर सूरज) में याद किया है। उनकी बंबई में शैलेन्द्र से भेंट हुई थी ''उस समय वह मजदूरी करते थे, में उनकी खोली में उनसे मिलने गया था, उस समय भी वह कविता लिखने लगे थे.... पार्टी का काम करने लगे थे, गीत लिखते रहे.... लेकिन कम्युनिस्ट पार्टी में जब सुधारवादी रुझान ऊपर आए, पार्टी की नीति में परिवर्तन हुआ, तब शंकर शैलेन्द्र को भारी धक्का लगा'' उसके बाद उनका रास्ता ही बदल गया। शैलेन्द्र रामविलास शर्मा से मिलने आगरा गए, रामविलास शर्मा ने पार्टी को लेकर काफी कुछ समझाया भी था, ''वह पूरी तरह आश्वस्त न हुए, कहा था यह नीति चलने वाली नहीं है। ''शैलेन्द्र की समझ और दृष्टि साफ थी, 1950 में जब कम्युनिस्ट पार्टी के मुखपत्र में डांगे ने अपने एक लेख में अमरीका की आलोचना न करने की बात कही थी, शंकर शैलेन्द्र ने रामविलास जी से कहा था– ''अब अमरीका की भी आलोचना न करेंगे तो किसकी करेंगे?'' रामविलास जी ने तब उन्हें समझाया था– ''इस समय पार्टी नेतृत्व को स्थायी मत समझो, पार्टी की नीति बदलती है तो तुम देखो, कौन-सा रास्ता सही है, उस पर दृढ़ता से चलो, यह बात उन्होंने सुनी, लेकिन बम्बई में रहते थे। उन पर वहाँ के वातावरण का असर हुआ, नतीजा यह कि कम्युनिस्ट पार्टी और प्रगतिशील लेखक संघ छोड़कर ये फिल्मों में काम करने लगे।'' (अपनी धरती अपने लोग,

खण्ड-1 पृष्ठ 136) शैलेन्द्र की कई कविताएँ 'हंस' में प्रकाशित हुई थीं। 1948 में भगत सिंह वाली कविता शैलेन्द्र ने 'हंस' में छपने के लिए भेजी थी, उस समय हंस में त्रिलोचन कार्यरत थे। त्रिलोचन ने इंद्रजीत को एक साक्षात्कार में यह बताया ''यह कविता हमने 'हंस' में छापी, इस कविता में भगत सिंह के प्रति अपार आदर और देश के हुक्मरानों के प्रति उनका आक्रोश साफ दिखाई पड़ता है।'' शैलेन्द्र का नागार्जुन से निकट का संबंध था, त्रिलोचन शास्त्री से शैलेन्द्र की पहली भेंट उज्जैन के एक कवि सम्मेलन में 1946-47 में हुई थी। नागार्जुन भी उस सम्मेलन में थे। त्रिलोचन ने इंद्रजीत सिंह को यह बताया– ''उस कवि सम्मेलन में शैलेन्द्र ने देशभक्ति और राष्ट्र-प्रेम से संबंधित अनेक कविताएँ सुना कर जनता में जोश भर दिया था। ''उनकी कविताएँ सुनकर नागार्जुन ने त्रिलोचन को कहा था– ''त्रिलोचन जी मेरी बात लिख कर रख लो आने वाले समय में देश के प्रसिद्ध कवियों में शैलेन्द्र की गिनती होगी।'' नागार्जुन शैलेन्द्र के बहुत निकट थे, शैलेन्द्र ने अपने दूसरे कविता संग्रह के प्रकाशन, सम्पादन और भूमिका लिखने की जिम्मेदारी नागार्जुन को सौंपी थी, यह संभव न हुआ। शैलेन्द्र की स्मृति में नागार्जुन ने कविता लिखी अप्रैल 1977 में 'शैलेन्द्र के प्रति', इस कविता में उन्होंने शैलेन्द्र का 'छंदों से तर्पण' किया। उन्हें 'गीतों का जादूगर', 'प्रतिभा के ज्योतिपुत्र', 'साथी', 'मजदूर पुत्र', 'प्रिय भाई' और 'जनमन के सजग चितेरे' कहा। नागार्जुन और शैलेन्द्र एक ही काव्य-परंपरा के हैं, दोनों की कविताओं में कई स्थलों पर साम्य है। प्रगतिशील हिंदी कविता को शैलेन्द्र की प्रमुख देन है, 1946 की एक कविता 'नादान प्रेमिका से' कवि ने यह कहा था– ''मुझको जीवन के शत संघर्षों में रत रहकर लड़ना है/तुमको भविष्य की क्या चिंता/केवल अतीत ही पढ़ना है।'' 1947 में नागार्जुन और केदार नाथ अग्रवाल को छोड़कर शायद ही किसी प्रगतिशील हिंदी कवि ने बड़ी निजी पूँजी से छोटी पूँजियों को हड़पने की बात कही हो। शैलेन्द्र ने यह बात कहीं है 'इतिहास' कविता में–''निज बहुत बड़ी पूँजी से/छोटी पूँजियाँ हड़प कर/धीरे-धीरे समाज के/अगुआ ये ही बन जाते/नेता ये ही बन जाते/शासक ये ही बन जाते''। स्वतंत्र भारत के शासक वर्ग की सही पहचान नागार्जुन और शैलेन्द्र के यहाँ है। उनकी कविताओं में है, शैलेन्द्र की चिंता में भारत का भविष्य था। किसानों, मजदूरों, गरीबों का भविष्य था। कई कविताओं में वे बार-बार यह कहते हैं कि आजादी इनके लिए नहीं और जो आजादी प्राप्त हुई है वह वास्तविक आजादी नहीं

है। कविता और गीत उनके दिल से निकलते थे। नागार्जुन ने लिखा भी– ''भली-भाँति देखा था मैंने दिल ही दिल थे, काया क्या थी! 'वे' अंतर्मन से ऋतुओं के सरगम सुनते थे, उनके गीत उनके दिल से निकल कर सीधे हमारे दिलों में प्रवेश करते हैं, वे दुनियावी अर्थों में न तो समझदार थे और न होशियार– ''सब कुछ सीखा हमने न सीखी होशियारी/सच है दुनिया वालों कि हम हैं अनाड़ी''। 'अनाड़ी फिल्म (1959) के इस गीत में 'दिल' का प्रयोग चार-पाँच बार है। इस गीत में दिल की चोट छुपाने, दिल का चमन उजड़ते देखने और दिल पे मरने वालों का जिक्र है। गीत का फिल्म से संबंध है, पर कई गीतों में हम शैलेन्द्र के निजी स्वभाव और जीवन को भी देख सकते हैं। उनके गीत इसी कारण सबके मन को छूते हैं। जिस श्रोता का हृदय है वही उनके गीतों को सुन सकता है, समझ सकता है। शैलेन्द्र को समझने के लिए उनके जैसे दिल का होना बहुत जरूरी है– ''दिल का हाल सुने दिल वाला।'' दिल संबंधी शैलेन्द्र के कई गीत हैं– ''हर दिल जो प्यार करेगा वो गाना जाएगा/दीवाना सैकड़ों में पहचाना जाएगा'' (संगम 1964)। 'दिल का हाल सुने दिल वाला (श्री 420, 1955), 'गोरी तेरे चलने पे मेरा दिल कुर्बान' (फैसला 1965) आदि। शंकर शैलेन्द्र के गीतों में दिल का आगमन अकारण नहीं है। यह दिल ही है जिससे वे आजीवन सामान्य जन से जुड़े रहे।

कवि तुम किनके? कविता किसकी? कविता में शैलेन्द्र ने स्पष्ट कहा दिया है कि वे किनके कवि हैं और उनकी कविता किसकी कविता है? यह कवि उनका कवि है, जिनके सीने में विवशता का दर्द सुइयों-सा गड़ता है, जिनके घरों में 'परवशता का राक्षस' घुसा हुआ है, जिन पर दुनिया भर का बोझ है, जो अपनी राह स्वयं बना कर पर्वत की चोटी पर चढ़ते हैं, जिनकी दोनों जेबें खाली हैं, बाजारों में जिनके सपने बिकते हैं, अंगारों में जिनके अरमानों की कलियाँ सो जाती हैं और जो तूफानों से कंधे और कदम मिला कर समय के साथ बहते हैं। शैलेन्द्र का जीवन और रचना-कर्म एक उदाहरण है। हिंदी कविता और फिल्म जगत दोनों में हिंदी फिल्म के सुप्रसिद्ध गीतकारों में हसरत जयपुरी (1922-1999), मजरूह सुल्तानपुरी (1919-2000), साहिर लुधियानवी (1921-1980), आनंद बख्शी (1930-2002), शकील बदायूँनी (1916-1970), गुलजार (1934) का अमिट स्थान है, पर शैलेन्द्र सर्वोपरि हैं, साहिर लुधियानवी उनके बाद हैं। आशीष

नंदी ने अपनी सम्पादित पुस्तक "The Secret Politics of our Desires: Innocence Culpability and Indian Popular Cinema (Palgrave, Macmillan, 1998) में शैलेन्द्र को 'A rare lyrical genius' कहा है। उन्होंने लिखा है कि ऐसे समय में जब 'क्रांति' और 'समाजवाद' हास्यास्पद टर्म बन गए हों, शैलेन्द्र के गीत भारत वर्ष में अनगिनत राजनैतिक सक्रियतावादियों द्वारा विभिन्न धुनों में अब भी गाये जाते हैं। गीत और उसकी पंक्ति कोरस बन जाती रही। शैलेन्द्र के कई गीत अजर-अमर हैं। समय के साथ उनका महत्त्व और अर्थ और अधिक बढ़ता जाएगा। आज जब किसी का दिल वास्तविक अर्थों में 'हिंदुस्तानी' नहीं है, 'मेरा दिल है हिंदुस्तानी' को याद किया जाना चाहिए क्योंकि जापानी जूता पहनने, इंग्लिशतानी पतलून पहनने, और 'सर पे लाल टोपी रूसी' रखने के बाद भी 1955 में (श्री-420) हिंदुस्तानी होना कम महत्त्वपूर्ण नहीं था। शैलेन्द्र के लिए दिल महत्त्वपूर्ण था न कि वस्त्र और जूते। आशीष नंदी ने उन्हें एक अच्छा इंसान, प्रिय सौम्य आत्मा, संकोची, अल्पभाषी, शांत कहा है, जो अपनी संस्कृति से गहरे रूप से जुड़ा रहा।

शैलेन्द्र की संस्कृति मेलजोल और अपनापे की है, यह सही अर्थों में वह भारतीय संस्कृति है जिसमें सत्य, त्याग और बंधुत्व पर बल है और सारा विश्व ही कुटुम्बवत है। शैलेन्द्र के लिए मैत्री महत्त्वपूर्ण थी– ''तुम जो हमारे मीत न होते/गीत ये मेरे गीत न होते'' (आशिक 1962), ''दोस्त दोस्त ना रहा/प्यार प्यार न रहा'' (संगम 1964), शैलेन्द्र के गीतों को उस समय से जोड़कर देखने से– 1947 से 1964 के भारत को एक साथ कई चीजें स्पष्ट होंगी। राजकपूर की 'जागते रहो (1956) फिल्म इप्टा के शम्भु मित्र ने लिखा और निर्देशित किया था। शैलेन्द्र का गीत 'जागो मोहन प्यारे' एक प्रकार से नये युग के लिए जागरण गीत है। यह गीत केवल कृष्ण के प्रति न होकर देश के पूरे अवाम के प्रति भी है, अज्ञान से जागरण का भी यहां संदेश है। आज की तरह के 'चौकीदार' पचास के दशक में नहीं थे। शैलेन्द्र हिंदी सिनेमा के लोक गायक हैं, उनके गीतों में लोक के सुर, उनके स्वर और उनकी धुन है, वहाँ गीत जगाने के लिए हैं और सुलाने के लिए भी– '' में गाऊँ तुम सो जाओ/सुख सपनों में खो जाओ' (ब्रह्मचारी 1968), 'मधुमती' (1958), के गीत 'सुहाना सफर और मौसम हँसी' और 'चढ़ गयो पापी बिछुआ',

'सीमा (1955) का गीत' तू प्यार का सागर है'– 'आवारा' (1951) के कई गीत 'आवारा हूँ', 'रमैया वस्तावैया', 'मुड़ मुड़ के न देख' और 'मेरा जूता है जापानी' और 'दिल का हाल सुने दिल वाला'(श्री 420), यहूदी (1958) का गीत 'ये मेरा दीवानापन है', 'अनाड़ी' (1959) के गीत 'किसी की मुस्कराहटों पे हों निसार' और 'दिल की नजर से' और 'सब कुछ सीखा हमने' 'काला बाजार' (1960) का गीत 'खोया खोया चाँद', 'दिल अपना और प्रीत पराई' (1960) का 'अजीब दास्तान है ये', 'परख' (1960) का 'ओ सजना बरखा बहार आई', 'दिल एक मंदिर (1963) का 'रुक जा रात, ठहर जाओ चंदा' और 'याद न जाए बीते दिनों की', 'तीसरी कसम' (1966) का पान खाये सइयाँ हमार हो', चलत मुसाफिर मोह लियो रे' और 'सजन रे झूठ मत बोलो', 'संगम' (1964) का 'हर दिल जो प्यार करेगा' और 'दोस्त दोस्त ना रहा', 'मेरी सूरत तेरी आँखें' (1963) का 'नाचे मन मोरा मगन, 'संगीत सम्राट तानसेन' (1962) का 'झूमती चली हवा', 'फैसला' (1965) 'गोरी तेरे चलने पे मेरा दिल कुरबान', ऐन इवनिंग इन पेरिस (1967) में 'रात के हमसफर थक के घर चले' और 'गाइड' (1965) के कई गीत 'आज फिर जीने की तमन्ना है', 'गाता रहे मेरा दिल', 'पिया तोसे नैना लागे रे'।

'क्या से क्या हो गया, बेवफा तेरे प्यार में' को ही नहीं अनेक फिल्मों के गीतों के सही स्वरों और अर्थों को सुनें तो शैलेन्द्र की खूबी और निखरेगी। ये हिन्दी सिनेमा के सबसे बड़े गीतकार है। उन गीतों की सरलता, सहजता, हृदयस्पर्शिता बेमिसाल है। कम शब्दों में उनमें बहुत कुछ कहना उनके गीतों की खूबी है। दार्शनिक विचारों को वे जिस हुनर के साथ संप्रेषित करते हैं, वह एक ऐसा उनका गुण है जो अतुलनीय है। 'सजन रे झूठ मत बोलो, खुदा के पास जाना है। न हाथी है न घोड़ा है वहाँ पैदल की जाना है', में एक साथ जो गहरी सत्यनिष्ठा और संसार की क्षणभंगुरता, नश्वरता एक साथ जुड़ी हैं, साथ धन-ऐश्वर्य की असारता भी। शैलेन्द्र के यहाँ एक प्रकार का सूफ़ीपना भी है। उनके शब्द गहरे रूपों में अर्थवान हैं, वे ऐसे गीतकार हैं जिन्होंने अनेक गीतकारों को अपने गीतों से भी प्रेरित किया, गीत रचना का सच्चा पथ दिखाया। उनकी गीतों में जहाँ संतों-सूफियों की आवाजें हम सुन सकते हैं, वहीं एक साथ भारतीय वामपंथी विचार स्वर भी।

शैलेन्द्र वास्तविक अर्थों में जनकवि हैं, वे बम्बई में रहकर भी बम्बई के न हुए। जिन्दगी को 'अजब फ़साना' कहने में जहां उनका दार्शनिक दृष्टिकोण प्रकट होता है, वहाँ 'तुम्हारे महल चौबारे यहीं रह जाएँगे सारे' में सीख और सही स्वर भी है। शैलेन्द्र जैसे बहुत कम कवि हैं जिनमें सच के प्रति ऐसा आग्रह हो। शैलेन्द्र ने 'ये रात भीगी-भीगी' और 'तेरे मेरे सपने' जैसे रोमेंटिक गीत लिखे और तात्विक आध्यात्मिक गीतों की भी रचना की- 'वहाँ कौन है तेरा मुसाफिर जाएगा कहाँ', 'जिन्दगी ख्वाब है' और 'जाओ रे जोगी' अगर एक ओर उत्कंठा और लालसा से भरे गीते लिखे- 'आ जा रे परदेशी', 'ओ जाने वाले हो सके तो', 'ओ बसंती पवन पागल', तो दूसरी ओर वेदना मनोव्यथा से भरे गीत भी- 'क्या से क्या हो गया बेवफ़ा तेरे प्यार में' और 'सजनवा बैरी हो गये हमार'। उनके गीत विविधवर्णी और प्राय: सभी मानव भावों से युक्त हैं। जिनमें प्रेम प्रमुख है। उनके गीतों में स्वच्छंदता और बेफ़िक्री के साथ एक आह्वान भी है, शैलेन्द्र के लोकप्रिय गीत और फिल्में कम नहीं हैं। उन्हें गीतों के लिए तीन बार फिल्मफेयर पुरस्कार मिले- यहूदी (1958) के 'ये मेरा दीवानापन है', 'अनाड़ी' (1959) के 'सब कुछ सीखा हमने न सीखी होशियारी' और 'ब्रह्मचारी' (1968) के 'मैं गाऊँ तुम सो जाओ' के लिए, जिस देश में गंगा बहती है में उनके थीम सौंग 'होंठो पे सच्चाई रहती है' को अमित खन्ना ने `Remembering Shailendra the Balladeer of Hindi Cinema' में 'समयहीन स्वप्नों और आशाओं' का गीत कहा है। कहा जाता है कि शैलेन्द्र ने 171 हिन्दी फिल्मों और 6 भोजपुरी में 800 गीत लिखे। गीत संख्या को लेकर स्पष्ट तौर से तब तक कुछ नहीं कहा जा सकता, जब तक उनके सभी गीत एक साथ प्रकाशित नहीं हो जाते। पहली भोजपुरी फिल्म 'गंगा मैया तोहे पियरी चढ़ईबो' के गीत उन्होंने लिखे। शैलेन्द्र का पहला फिल्मी गीत 'बरसात' (1949) का है बरसात में हम से मिले तुम सजन बरसात में' और उनका अंतिम फिल्मी गीत 'सपनों का सौदागर' (1968) 'तुम प्यार से देखो, हम प्यार से देखें/जीवन के अंधेरे में बिखर जाए उजाला'।

शैलेन्द्र ने अपने गीतों और कविताओं से हिन्दी गीतों और कविताओं में जो रोशनी बिखेरी उसकी चमक अब भी है और कल भी रहेगी, उन्होंने 'नया घर', 'बूट पॉलिश', 'श्री 420' और 'मुसाफिर' फिल्मों में अभिनय भी किया और 'परख'

फिल्म में संवाद भी लिखे पर उनका यह गौण पक्ष है, उनके यहाँ प्रेम प्रमुख है। उन्होंने अपने को चिर-प्रेमी शैलेन्द्र कहा भी है। वे अकेले हिन्दी कवि हैं जिन्होंने 'मेरी प्रेयसि हिन्दी जनता' कहा है। हिन्दी जनता अर्थात हिन्दी भाषी जनता, जो आज भी विपन्न, अशिक्षित और समस्याग्रस्त है। उन्हें हरिजन कवि कहना गलत है, वे भारतीय कवि हैं।

शैलेन्द्र प्रेम और क्रांति के, इन्कलाब के कवि हैं। जनवादी, मानवतावादी, प्रगतिशील, संवेदनशील, विचारवान, उम्मीद और जागरण का कवि, राजकूपर उन्हें 'पुश्किन' कहते थे और रेणु 'कविराज' उन्हें देश के भविष्य की चिन्ता थी, उनके अंदर की आग सैदव जलती रही, जब तक वे स्वयं अग्नि के हवाले न हो गए, 'ओ जीते जी जलने वाले, अन्दर की आग जला'। शैलेन्द्र ने अपनी कविताओं के जरिए सबके अंदर की आग जलाई। उनके अंदर की आग बाहर की, उस आग को बुझाने के लिए भी जो शोषकों, धनवानों और पूंजीपतियों ने जलाने के लिए जला रही थी, जला रखी है, शैलेन्द्र ने अपनी कई कविताओं में शान्ति-स्थापना की बात कही है। साम्राज्यवादी अमेरिका और डॉलर से सावधान रहने को कहा था। उनकी आर्थिकी की समझ पर आश्चर्य होता है, क्योंकि उस समय स्वतंत्र भारत के आरंभिक वर्षों में बहुत कम कवि और लेखक अमरीकी चालों से अवगत थे। शैलेन्द्र की समझ और राजनीतिक परिपक्वता हैरत में डालती है। अपनी कई कविताओं में उन्होंने कॉमन वेल्थ की बात कही है। 'मुझको भी इंग्लैण्ड ले चलो' कविता में पंडित जी महाराज नेहरू हैं, जिनसे कवि अपने को इंग्लैण्ड ले चलने को कहता है। इस कविता में शैलेन्द्र ने 'कॉमनवैल्थ' को दोधारी तलवार कहा है। जो 'एक बार में हमें जलावें,, करें एक से वार' स्वतंत्र भारत के आरंभिक वर्षों में उन्होंने यह कहा 'घटे पौण्ड की पूँछ पकड़ कर रुपया माँगे भीख' वे उस समय पौंड और डॉलर के व्यापारी को 'गद्दारों के मददगार' वे कहते हैं। यह कविता युद्ध के विरुद्ध है, अमरीकी साम्राज्यवाद के विरुद्ध है। जिस समय काफी पढ़े-लिखे लोग यह समझ बैठे थे कि देश ब्रिटिश साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद से मुक्त हो चुका है, उस समय कॉमन वैल्थ  का सदस्य भारत के बनने, पौण्ड और डॉलर पर आश्रित रहने को वे देख रहे थे, समझ रहे थे और यह लिख रहे थे 'तुम फौज लिए जिन सड़कों पर गुजरोगे हम टक्कर देंगे/ आकाश में शोले बन के उठेंगे, हर सागर खौला देंगे', जो चाल चलेगा

हिटलर की, हिटलर की तरह मिट जाएगा। 'पूंजीवाद और साम्राज्यवाद के साथ शैलेन्द्र ने इसके सहयोगी शासकों और उनकी सत्ता का विरोध किया। वे साहस, आशा, जागरण, बदलाव और क्रांति के कवि हैं, उन्होंने 'पेरिस कम्यून' कविता में मुक्ति मार्ग दिखाने वाले कर्ल मार्क्स को 'सौ सलाम' किया। मार्क्स और ऐंग्लेस के नारे ''दुनिया के मजदूरों, एक हो'' को 'महामन्त्र' कहा। वे बदलाव के समर्थक थे, साथ थे। मार्क्स से वे प्रभावित थे क्योंकि मार्क्स ने विचार की धारा पलटी। जाति-वर्ण, धर्म-कर्म की परिभाषाएँ बदलीं। मार्क्सवाद को उन्होंने 'फौलाद' कहा, 'जो तोपों को उलट रहा है'' और तीन चौथाई धरती की परतो को पलट रहा है। 'पेरिस कम्यून' लेनिन और स्टालिन को उन्होंने सौ सलाम किया, श्रम के धन की चोट की बात कही, जिसके 'एक चोट से चूर-चूर हो गया अंधेरा' उस समय वे मार्क्सवाद से पूरी तरह प्रभावित थे। प्रभावित बाद में भी रहे। रहे उस मार्ग के ही पथिक पर आरंभिक कुछ कविताओं की तरह बाद की कविताओं का स्वर नहीं रहा। शैलेन्द्र ने आरंभ में कुछ रूमानी कविताएँ भी लिखीं। प्रेम-कविताएँ 'उस दिन' 'जिस ओर करो संकेत मात्र', 'क्यों प्यार किया', 'यदि मैं कहूँ', 'नादान प्रेमिका से', 'नई-नई शादी है'। नई-नई शादी है' कविता में 'बटुवे-सी दुल्हन को लेकर सिर्फ चार दिन साथ रह सका' और 'बीबी को मैके में छोड़ा/ और सात सौ तीन मील की दूरी तै कर वापस आया मुम्बा नगरी। हाय चाकरी।' उनकी प्रेम-कविताएँ अन्य कवियों की प्रेम कविताओं से इस अर्थ में भिन्न हैं कि शैलेन्द्र का प्रेम जीवन, समय और समाज से कटा नहीं था। एक कोठरी में पत्नी के साथ रहने की इच्छा सामान्य जन से एकाकर किया। उनकी कई कविताओं में उनका निजी दुख, जन-दुख के साथ एक हो जाता है। 'दृष्टि फेर कर अब देखा है। मुझे जैसे लाखों है मुम्बा नगरी में। निपट निराश्रय काट रहे हैं जीवन धूल भरी डगरी में। घर छोड़ा है, दर छोड़ा है। यहाँ मिलों में सस्ते दामों में अपना सर्वस्व बेचा है'। शैलेन्द्र आजादी को लेकर किसी भ्रम में नहीं थे। अब भी रोजी, रोटी, कपड़ा भारतीय जनता के पास नहीं है। ऐसे में शैलेन्द्र की कविता का महत्त्व है- अक्षुण्ण महत्त्व। उनकी राह प्रगतिशील कवियों की राह थी। नेताओं के 'रंग भरे लचकीले भाषणों' को उन्होंने 'छायावादी कविता' जैसा कहा है।

शैलेन्द्र क्रांतिकारी कवि हैं, 'क्रांति के लिए उठे कदम' कविता में वे आदमी की रोटियों के छीने जाने, आदमी- की बोटियाँ बिक जाने, सेठ की कोठरियों में भरने जाने की बात कह कर यह आह्वान करते हैं- 'लूट का ये राज हो खतम' उन्होंने 'खून के स्वराज' के खत्म होने की बात कही, 'हिन्द' को 'जेल' कहा और 'गोलियों की गंध में घुटी हवा' की भी बात की। उनकी लड़ाई का मकसद साफ है- 'रात के विरुद्ध प्रात के लिए/भूख के विरुद्ध भात के लिए/मेहनती गरीब जात के लिए/हम लड़ेंगे हमने ली कसम/क्रांति के लिए उठे कदम'। इसी कविता में वे शांति की बात कहते हैं- 'शांति के लिए उठे कदम/शांति के लिए जली मशाल' शैलेन्द्र युद्ध- विरोधी कवि हैं। अब जब भारतीय मानस को युद्ध-प्रेमी मानस बनाने में शासक वर्ष लगा है, शैलेन्द्र याद आते हैं- 'हमने ली कसम की भाई हमने लिया ठान/(युद्ध के विरुद्ध देश में मेल-जोल का उजेला होवे रे', उनकी क्रांति असमानता, भेदभाव, गरीबी, शोषण से मुक्ति और शांति की स्थापना के लिए है। अपनी कविता इंकलाब जिंदाबाद में वे इस नारे को 'वक्त की पुकार' कहते हैं। भगत सिंह और उनके साथियों के दो प्रमुख नारे थे 'इंकलाब जिंदाबाद' और 'साम्राज्यवाद का नाश हो।'

शैलेन्द्र इन दोनों नारों के साथ रहे... 'इंकलाब जिंदाबाद' कविता लिखी और अपनी नई कविताओं में साम्राज्यवाद की समाप्ति की बात की। उन्होने आरंभ में ही अमरीकी साम्राज्यवाद की पहचान कर ली और उसके खिलाफ कविताएँ लिखीं, 'इंकलाब जिंदाबाद' कविता में शैलेन्द्र सेठ, साहूकार, जमींदार, मुफ्तखोर औ- चोर-डाकू के खिलाफ हैं। उन्होंने लाल रंग को 'अमर रंग' कहा- 'जब तलक आदमी के रंग में खून की तरंग/अमर लाल रंग बरकरार'इंकलाब जिंदाबाद'। हिन्दी के बहुत कम कवियों ने स्वतंत्र भारत के आरम्भ में ही साम्राज्यवादी चालों को पहचाना था... शैलेन्द्र ने इसे पहचानकर उस समय सबको, देश के शासक वर्ग को भी सावधान किया था- 'साम्राजी चाल से बच के चलो हिन्दोस्ताँ... उनका विश्वास भगतसिंह की तरह नौजवानों और युवकों में था। अपनी कविता नौजवान में शैलन्द्र ने नौजवानों को वक्त का पयाम सुनने और समय का गीत गाने को कहा था, और यह आशा प्रकट की थी- 'तुम जो मिला के कदम उठाओ/बदलेंगे दुनिया के ढंग', उनका बल सदैव एकता पर था- 'एक हैं हम तो चमक रहा है तारा आशाओं का।'

शैलेन्द्र ने जो जिंदगी देखी वह बहुत कम कवियों ने देखी 'जिंदगी मैंने देखी है' कविता में धारावी की बस्ती है। इसी कविता की अंतिम पंक्ति है- 'मैं चिर प्रेमी शैलेन्द्र और मेरी प्रयसि हिंदी जनता'। यह जनता नौकरी की, रोजी-रोटी की तलाश में अपनी जगह छोड़कर अन्यत्र जाती रही, मज़दूरी करती रही। इस हिन्दी जनता से शैलेन्द्र को प्यार था, यह जनता मिलों में मज़दूरी करती थी। उसके श्रम का शोषण होता था। हड़ताल इसलिए शैलेन्द्र के यहाँ आवश्यक थी। 'हड़ताल के गीत', कविता में उन्होंने लिखा- 'जारी है हड़ताल हमारी जारी है, हड़ताल/न टूटे हड़ताल हमारी न टूटे हड़ताल। 'आज़ाद हिन्द फौज के वीर सिपाही और विद्रोही मल्लाही' पर उन्होंने कविता लिखी- 'हम आज़ादी के दीवाने'। उनकी कई कविताओं में व्यंग्य का स्वर है। 'नेताओं का न्यौता' कविता की पहली पंक्ति है- 'लीडर जी परनाम तुम्हें हम मज़दूरों का'। मज़दूरों की ओर से नेताओं को न्यौता है कि वे दिल्ली, शिमला छोड़कर हम मज़दूरों की गंदी गलियों में भी पधारें। सात पृष्ठों की इस लंबी कविता में शैलेन्द्र ने मज़दूर बस्ती के कई लोगों के नाम लिए हैं, जो नेताओं से मिलेंगे। नेता आकर देखें कि श्रमिक और उसका परिवार किन हालातों में रहता है। नेता को कवि ने यह चेतावनी भी दी है- 'बस्ती के अधिकांश लोग हैं बिल्कुल मुँहफट/ ऊँच-नीच का उनको जैसे ज्ञान नहीं है/नेताओं के प्रति अब वह सम्मान नहीं है'। शैलेन्द्र ने कभी आज़ादी को आज़ादी नहीं माना और कोरी आज़ादी के खिलाफ मज़दूरों-किसानों को बार-बार उठने को कहा, उनका आह्वान किया- उठ री, उठ मज़दूर-किसानों की आबादी' यह दुनिया बदलने वालों की एकता जरूरी है- 'वे तो दुनिया बदल डालने को निकले हैं/हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, पारसी सभी मिले हैं।'

शैलेन्द्र का जिन्दगी की जीत पर यकीन था, जिन्हें जिन्दगी की जीत पर यकीन है और जो आशावदी, कर्मठ और साहसी हैं उनके लिए यह कवि आज कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। वे कहीं से भी दुख और अवसाद के कवि नहीं हैं, एक ऐसा स्वर भी उनके यहाँ नहीं है। उनकी आकांक्षा जमीन पर स्वर्ग (खुशियाँ) उतारने की रही थी। वे दुख और अत्याचार से कभी हतोत्साहित नहीं हुए, बदलाव में उनकी आस्था रही- 'ये दिन भी जाएँगे गुजर, गुजर गए हज़ार दिन'। यह आस्था सभी प्रगतिशील कवियों में रही है। वीरेन डंगवाल ने 'उजले दिन जरूर' कविता की

पंक्तियों में ऐसी ही आस्था व्यक्त की है- 'आए हैं जब हम चलकर इतने लाख वर्ष/इसके आगे भी तब चलकर ही जाएंगे/आएंगे उजले दिन जरूर आएंगे' कविता में आस्था का स्वर आज भी विद्यमान है। शैलेन्द्र के यहाँ जमीन गाती है- 'तू सुन जमीन गा रही है, कबसे झूम-झूम कर'। वे सदैव जुल्म और अत्याचार के खिलाफ रहे। 'गिरेंगे जुल्म के महल बनेंगे फिर नवीन घर' नये घर की यह कल्पना वास्तविक स्वराज की कल्पना है। इसके लिए इंकलाब जरूरी है। किसानों की बात शैलेन्द्र ने बार-बार कही पर किसान जीवन के वहाँ कम चित्र हैं। मैनेजर पाण्डेय ने उन्हें हिन्दी में मजदूरों का अकेला कवि कहा है- 'मजदूरों के जीवन के यथार्थ, जागरण, संघर्ष और उनकी आकांक्षाओं की संभावनाओं का कवि।' शैलेन्द्र के गीतों में संगीत बजता-सुनाई देता है, पर उनकी कविताओं में भी एक संगीत, धुन और लय है। मैनेजर पाण्डेय उनकी कविताओं में संगीत उसी तरह रचा-बसा मानते हैं जैसे भक्तिकाल के कवियों कविता या लोक कविता में वह होता है। एक अंतर है भक्तिकाल के कवियों और लोककवियों की काव्यभाषा से भिन्न है शैलेन्द्र की काव्य भाषा। शैलेन्द्र ने खड़ी बोली में कविताएँ लिखीं और कई कविताओं में लोकभाषा, लोकसंगीत, लोकधुन, लोकस्वर और लोक शब्द को सार्थक रूप में रखा। लोक से उनका गहरा नाता था। भोजपुरी में उन्होंने गीत लिखे 'जानी तेरे दिल का हवाल' कविता में उन्हें लिखा- 'हमारी कमइया पे/भैंसा जस मुटाय गईलौ/दुखिया के पेट में अकाल' और 'दिल्ली के पनघट पै' कविता में 'ताक धिन रसिया नाच नचाई गयौ रे/दिल्ली के पनघट पै'। इसी प्रकार 'मधुमती' के गीत- चढ़ गयौ पापी बिछुआ और 'तीसरी कसम' के 'पान खाय सैंया हमारो' में हम शैलेन्द्र को एक दूसरी भाषा भूमि पर उपस्थित देखते हैं। जहाँ लोक से, लोक जीवन से उसके संगीत और मुहावरे से उनका अभिन्न संबंध दिखाई देता है। उनके कई शब्द-प्रयोग और गीतों-कविताओं में शब्दावृत्ति से उत्पन्न लयों में भी उनका कलात्मक सौंदर्य मौजूद है।

अभी देश का जो हाल है उसमें शैलेन्द्र की कई गीत-पंक्ति, काव्य पंक्ति बार-बार याद आती है- 'जो चाल चलेगा हिटलर की, हिटलर की तरह मिट जाएगा।'

# राष्ट्रीयता और भारतीयता के कवि : शैलेन्द्र

*–विट्ठल भाई पटेल*

गीतकार शैलेन्द्र आज हमारे बीच नहीं है पर उनके गीतों को मैं स्मरण कर ('सजन रे झूठ मत बोलो, खुदा के पास जाना है') जगत और जीवन के रहस्यों को खोज रहा हूँ। उनके गीतों में अद्‌भुत क्षमता थी– अध्यात्म और सूफी अंदाज को व्यक्त करने की– जो जन मानस को भीतर तक झकझोरने में सक्षम थे।

मुझे भवानी दादा की कुछ पंक्तियां याद आ रही है जो उन पर सटीक बैठती हैं–

**यों गालिब मुश्किल क्या कहते थे**
**जरा हट कर कहते थे**
**और जो कहना चाहते थे**
**उसे डट कर कहते थे,**
**उन्हें अपनी न किसी से तुलना करवानी थी**
**न करनी थी किसी से स्पर्धा,**
**न जाना था किसी के आगे**
**न चलना था उन्हें किसी के पीछे**
**वे तो अपनी ही राह चल रहे थे**
**और ठीक अर्थों में सहर होने तक**
**हर रंग में रंग रहे थे।**

उनकी पहचान इसी जिंदादिली में थी, मैं उनका फैन था, उनके हर गीत की प्रशंसा/आलोचना पत्र लिख कर किया करता था वे मेरे हर पत्र को पढ़ते और जबाव भी देते थे। तीसरी कसम की शूटिंग बीना (सागर म०प्र०) के पास हुई, इसके पहले वे मेरे पत्रों और कविताओं की तारीफ स्व० राजकपूर साहब से कर चुके थे, उन्होंने राज साहब से मेरा परिचय कराया तथा राज साहब ने मुझे अगले दिन डायरी लेकर आने तथा कविताएँ सुनाने को कहा, इस प्रकार शैलेन्द्र जी ने मेरी कविताओं की

तारीफ की तथा राज साहब ने मेरी कविताओं को सुनकर मुझे फिल्म में गीत लिखने का अवसर दिया।

शैलेन्द्र जी के गीतों में मैंने जो असाधारणपन पाया, हिंदी भाषा की सामर्थ्य को भी जाना तथा इस जटिलता को सहजता में बदलने का ज़ज्बा भी पाया, वे बहती नदिया से सरल, धूप की तरह सहज और हिमालय की तरह अटल थे।

शैलेन्द्र जी की याद में मैंने जो श्रद्धांजलि गीत लिखा-

**सजन क्यों झूठ न बोले,**
**'कसम' क्यों 'तीसरी' खाई,**
**'मुबारक दिन' रुलाने को,**
**उमर की पाट दी खाई।**

**बड़े सीधे से बोलों में,**
**बुनी साहित्य की लड़ियाँ**
**महल गूंजे, चमन महका,**
**उसे दुहरा रहीं गलियाँ।**

**जिगर में 'आग' थी लेकिन,**
**रही 'बरसात' नयनों में,**
**'अनाड़ी' तुम बहुत निकले,**
**उमर खो दी लुटेरों में।**

**कसम का हाय क्या कीजे,**
**पदक का हाय क्या कीजे,**
**उमर भी ले गये जो ब्याज में,**
**वे शाह क्या कीजे।**
**तुम्हें हम याद करते हैं,**
**तुम्हारे गीत गाते हैं,**
**अंधेरा ही अंधेरा है**
**मगर सूरज उगाते हैं।**

शैलेन्द्र जी के गीतों में तुलसी, सूर, मीरा की मार्मिकता और ज्ञान था। सन् 1923 में जन्म से लेकर 1966 तक की राह सरलता और सहजता की थी, नैसर्गिकता और पारदर्शिता की थी। सरलता जो अभिव्यक्ति तलदर्शी जलप्रभाव की तरह स्वच्छता लिए हुए हैं।

शैलेन्द्र के गीतों में राष्ट्रीयता और भारतीयता के रंग शिद्दत के साथ मौजूद हैं। उनके गीतों का जादू आज भी मौजूद है। उनके लिखे पत्रों को मैं अपने जीवन की सौगात समझता हूँ।

# तीसरी कसम: एक अलग या पुनर्पाठ

*– स्वयं प्रकाश*

रेणु की कहानी 'तीसरी कसम' जब मैंने पहली बार पढ़ी, उस पर फिल्म नहीं बनी थी। और जब दूसरी बार पढ़ी- और यह कुछ रोज़ पहले की ही बात है- फिल्म बनाने वाले शैलेन्द्र, राज कपूर, मुकेश और बासु भट्टाचार्य दुनिया छोड़कर जा चुके थे, फिल्मी दुनिया छोड़कर तो वहीदा रहमान भी। दूसरी बार 'इस कहानी को पढ़ते हुए मुझे राज कपूर, वहीदा रहमान, शैलेन्द्र और बासु ही नज़र आते रहे। लेकिन मजे की बात यह थी कि वे रेणु के शब्दों का मजा किरकिरा नहीं कर रहे थे, उन्हें नये धैर्य और रंगत दे रहे थे, उन्हें लुभावने दृश्यों से सप्लीमेंट कर रहे थे। उनमें कुछ-कुछ और जोड़ रहे थे। उनमें कुछ-कुछ और खोल रहे थे। ऐसा तभी हो सकता है जब अलग-अलग माध्यमों में बनी दोनों कृतियाँ अपने-अपने तरीके से उत्कृष्ट हों और लगभग समान रूप से उत्कृष्ट हों। और दोनों के रचनाकार एक-दूसरे को एकदम घुलमिलकर समझे हुए हों।

लेकिन तुलना भी चलती रही।

आमतौर पर जब किसी साहित्यिक कृति पर कोई फिल्म बनती है तो वह दर्शकों को यदि वे पाठक भी हुए ज्यादा पसंद नहीं आती। और लेखक भी अक्सर उससे असंतुष्ट ही रहता है। दो भिन्न माध्यम एक दूसरे की रचना का अनुवाद नहीं कर सकते। वे रूपांतर ही कर सकते हैं। लेकिन रूपांतर एक यांत्रिक सी क्रिया है जो सृजन का सुख नहीं दे सकती। रचनात्मक कलाकार अनुवाद नहीं, रूपांतर नहीं, पुनर्सृजन ही करता है। यह बहसतलब है कि इस प्रक्रिया में वह मूल कृति से किस हद तक छूट ले सकता है? अच्छी कृति पाठक के मन में स्वयं छवि निर्माण करने में सक्षम होती है। हर पाठक अपनी-अपनी तरह अच्छी कृति को पढ़कर अपने मन में एक फिल्म बनाता है। वह अपनी रुचि, कल्पना और स्मृति के आधार पर दृश्यावली और चरित्रों के रूप में रंग का निर्धारण करता है। लेकिन फिल्म निर्देशक भी सबसे पहले पाठक होता है। यही प्रक्रिया उसके भीतर भी घटित होती है और इसी को वह रुपहले परदे पर मूर्त करने की चेष्टा करता है। जाहिर है यहाँ बनने वाले बिंबों में टकराहट होगी। पाठक-दर्शक के लिए फिल्म निर्देशक की बिंब रचना से तादात्म्य करना मुश्किल होगा।

फिर पाठक-दर्शक और फिल्म निर्देशक की व्याख्या भिन्न भी हो सकती है। यहाँ तक कि एक ही पाठक की व्याख्या भी समय के साथ बदलती रह सकती है। फिल्म चूंकि एक बड़ा ही नहीं, भिन्न माध्यम भी है इसलिए अच्छा निर्देशक साहित्यिक कृति को केवल उसकी प्रभावोत्पादकता या विंबात्मकता या दृश्य निर्माण क्षमता के आधार पर नहीं चुनता, बल्कि वह एक बीज की तरह रचना को छांटता है जिसमें से वह एक नयी सृष्टि उगा सके। 'पिग्मेलियन', 'डॉक्टर ज़िवागो' और 'वार एण्ड पीस' इस मामले में मिसाल की तरह रखी जा सकती हैं। कभी-कभी व्याख्या कृति के लिए अतिकठिन या दीर्घविस्तार जैसी भी हो जाती है और लोग कहते हैं कि फिल्मकार ने कृति के साथ न्याय नहीं किया। 'शतरंज के खिलाड़ी' में अंत में जब शतरंज खेलते समय 'होशियार! मलिका विक्टोरिया तशरीफ लाती हैं!' कहा जाता है, तो यह कथा का भाष्य अवश्य है, पर इस तथ्य की अनदेखी भी की, कि देशी शतरंज में 'क्वीन' नहीं होती, 'वज़ीर' होता है।

एक छोटे पैमाने पर 'तीसरी कसम' के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ। क्या हुआ है, इस पर कुछ चर्चा नहीं हुई है। होती तो हिन्दी की यह यादगार कहानी भी हमारे लिए कुछ और खुलती और स्मृति में जाने की बजाय चेतना में भी घुसती।

मुझे ताज्जुब हुआ जब मैंने देखा कि एक अत्यंत लोकप्रिय और स्वयं निर्माता होते हुए भी शैलेन्द्र ने 'तीसरी कसम' में उन्हीं गीतों को रखा जो रेणु ने अपनी कहानी में लिखे थे। उन गीतों को जरूर रखा। 'सजन रे झूठ मत बोलो', 'लाली लाली डोलिया में', और 'सजनवा बैरी हो गये हमार'। हाँ, महुवा घटवारिन की कथावाला गीत ज़रूर बदल गया, क्योंकि वह कचरही बोली में था। और बेशक, अनेक नये गीत जोड़ दिये गए हैं।

शैलेन्द्र राज कपूर के बहुत पुराने सहयोगी थे। शंकर-जयकिशन, मुकेश और शैलेन्द्र एक लंबे समय के साथ काम कर रहे थे। शैलेन्द्र बिहार के थे, जहाँ के रेणु और उनकी पहली (और दुर्भाग्य से अंतिम) फिल्म थी। सारी टीम गुंथी हुई थी। सुना है फिल्म के निर्माण के दौरान राज कपूर इतना 'इस्स' बोलने लगे थे कि श्रीमती राज कपूर परेशन हो गई थीं। बासु इससे पहले एक फिल्म बना चुके थे जो चली नहीं थी। फिल्म निर्माण के दौराण रेणु भी साथ ही रहे थे और माना जा सकता है कि निर्देशक के मंतव्य से उनकी सहमति ही रही होगी। फिल्म के प्रदर्शित होने के बाद

भी रेणु ने कभी नहीं कहा कि फिल्मकार ने मेरी कहानी की मनमानी व्याख्या की है या मेरे साथ अन्याय किया है। यदि यह ध्यान रखा जाए तो हम एक ऐसे निष्कर्ष पर पहुँचने जा रहे हैं जिसकी प्रतीति स्वयं रेणु को भी ठीक से नहीं थी। यह संभव है वह सिर्फ़ मेरी ख़ामख़याली हो।

कहानी सीधी है। गाँव का सीधा-सादा गाड़ीवान हिरामन पहली बार नौटंकी कंपनी की नर्तकी हीराबाई को मेले में पहुँचाने का काम पाता है। रूपवती महिला का पहला साथ उसे चकितमतिधत्ता कर देता है, लेकिन उसकी मासूमियत, उसकी भावप्रवणता, उसका गाना, उसका सीधापन दोनों के बीच एक अनुराग को जन्म देता है। सुरक्षा की दृष्टि से हिरामन हीराबाई के पास अपने कुछ पैसे रखवा देता है। बगैर हिरामन को बताए एक दिन हीराबाई वह कंपनी छोड़कर चली जाती है। पता लगते ही हिरामन रेवले स्टेशन पहुँचता है। हीराबाई से मिलने। हीराबाई उसके पैसे लौटाकर निश्चिंतता महसूस करती है और उसे बख्शीस देकर चली जातीहै।

हिरामन खिन्न हो जाता है और मेले की कमाई छोड़कर अपने गाँव की तरफ लौट पड़ता है।

दो कसमें गाड़ीवान हिरामन पहले खा चुका है। एक गैरकानूनी माल नहीं लादना है, और दो-बाँस नहीं लादना है। तीसरी कसम वह कहानी के अंत में खाता है- कंपनी की औरत की लदनी अब नहीं करनी है। कथनाक की दृष्टि से पहली दो कसमों का कोई खास महत्त्व नहीं है। तीसरी कसम ही महत्त्वपूर्ण है। तीन कसमों की आयोजना एक कथायुक्ति है।

कथानक सीधा है, लेकिन कथ्य नहीं। इसलिए कहानी भी नहीं।

क्या यह एक देहाती गाड़ीवान को आए दिन दरपेश झमेलों की कहानी है? क्या यह एक नौटंकी कंपनी में नाचने-गाने वाली बाईजी की सहृदयता अथवा व्यावसायिकता की कहानी है? क्या यह एक प्रेमकथा है? या यह देहाती सामाजिकता की बाजार संस्कृति के साथ मुठभेड़ की कहानी है? या आंचलिक परिदृश्य में व्यापक रूप से परिव्याप्त दमित यौन पिपासा का वृत्तांत है? या अकेली कामकाजी नारी द्वारा अस्तित्व रक्षा के लिए आत्मदमन की करुण दास्तान? या एक उजड़ते हुए कलारूप की शास्त्रीय भव्यता की अंतिम झांकी?

बासु भट्टाचार्य ने तो इसे एक प्रेम कहानी की तरह ही पढ़ा-देखा और समझा है। और ऐसा समझने के पर्याप्त कारण कहानी में खुद मौजूद हैं। हिरामन की शादी बचपन में हो गई थी, लेकिन गौने से पहले ही उसकी पत्नी का देहान्त हो गया, इसलिए एक तरह से वह कुंवारा ही है। घर पर भाई-भाभी हैं जो उसकी शादी किसी कुँवारी, यानी उम्र में काफी छोटी लड़की से ही कराना चाहते हैं, इसलिए हिरामन का मन शादी से ही विरत हो गया है।

आरंभिक आकर्षण...गाड़ी से खुशबू आना, पीठ में गुदगुदी लगना, मीठी 'फोनूगिलासी' आवाज़ और चूड़ियों की खनक के बाद हिरामन के बैलों को मारते ही हीराबाई का कहना, 'अहा! मारो मत'... फिर हीराबाई का हिरामन को भैया कहकर नाम पूछना, फिर नाम की समानता के आधार पर उसे 'मीता' कहना, साथ खाना खाने का आग्रह करना और अंत में हिरामन को 'गुरुजी' कहना मुख्य संकेत है अनुराग के अंकुरण के। दूसरी तरफ हिरामन का आचरण भी इसे पुष्ट करता है। वह तुरंत मानो हीराबाई की सुरक्षा और मर्यादा का सारा दायित्व स्वत: ग्रहण कर लेता है। हिरामन का गाड़ी का परदा गिरा देना, बटोहियों को न बताना कि गाड़ी में कौन है और कहाँ जा रही है, हीराबाई को हंसाने की कोशिश करना, तेगाछिया पर एकमात्र साइकिलवाले को फूटा देना, गाड़ी की लीक छोड़कर निर्जन रास्ते पर उतार देना, हीराबाई के लिए खाने-पीने का इंतजाम करना, उसकी नींद-आराम का ध्यान रखना, बच्चों का गाना सुनकर अपनी दुल्हन को ब्याहकर लाने की कल्पना में खो जाना, बख्शीस लेते समय उदास हो जाना और अंत में नौटंकी में हीराबाई पर बोली-ठिठोली करने वालों के साथ उलझ पड़ना- और क्या सबूत चाहिए परस्पर आकर्षण के?

एक सहज संयोग से प्रसूत हिरामन और हीराबाई के संबंधों की सारी कोमलता, मार्मिकता, मानवीयता और मुझे कहने दीजिए कि पवित्रता को कहानीकार रेणु ने इतने कौशल और निपुणता से चित्रित किया है कि देखते ही बनता है। कोई शायरी भी क्या इस नज़ाकत को साक्षात करेगी। ऐसे ऊष्म और स्पर्शी संबंध क्षण पूरी हिन्दी कहानी में भी कम ही हैं। यह पूरा चित्रण इतना रसमय है कि बार-बार पढ़ने को जी करता है। मानना पड़ेगा कि रेणु ने इसे बहुत डूबकर बहुत मन से लिखा है।

लेकिन फिर भी- क्या इसे प्रेमकथा ही समझा जाना चाहिए?

बासु की टीम ने खूब डूबकर इसे प्रेमकथा की प्रतीति दी है और इस दर्मियान सभी कलाकारों ने न केवल कौशल बल्कि कला का भी श्रेष्ठ निचोड़कर रख दिया है। पहली बात तो कलाकारों के चयन को लेकर ही की जा सकती है। आँख मूंदकर माना जा सकता है कि राज कपूर के अलावा कोई और हिरामन ही हो नहीं सकता था। हालांकि इसके लिए हमें बासु से ज्यादा शंभु मित्र का आभारी होना चाहिए जिन्होंने 'जागते रहो' में राज कपूर के भोले भारतीय की वह छवि प्रदान की जिसे वह जीवनपर्यन्त निभाते और भुनाते रहे। वहीदा रहमान कुशल नर्तकी तो हैं ही, लेकिन एक अत्यंत सशक्त अभिनेत्री भी हैं। फिल्म के कुछ प्रसंगों में उन्होंने लाजवाब अभिनय किया है। लेकिन नर्तकी और अभिनेत्री तो कोई भी हो सकती थी, सौदागर के हाथ बिकी महुवा घटवारिन सिर्फ और सिर्फ वहीदा रहमान ही सकती थीं। यही वह 'प्यासा' में भी थीं। 'कागज़ के फूल' में भी, 'चौदहवीं का चांद' में भी और 'गाइड' में भी। उनके चेहरे में, शरीर में, पूरी बनावट में कुछ ऐसा था कि मुझे लगता है यदि वहीदा हीराबाई बनने से मना कर देतीं, तो बासु यह फिल्म निर्देशित ही नहीं करते।

और बासु का तो कहना ही क्या! उन्होंने रेणु की कहानी को हज़ार बार पढ़ा होगा और हज़ार बार सोचा होगा कि क्या सेल्यूलाइड साहित्य का सहोदर हो सकता है? रेणु का लेखन सेल्यूलाइड को सचमुच की चुनौती दे रहा था और बासु ने एक सच्चे कलाकार की तरह सचमुच इस चुनौती को स्वीकार किया।

बार-बार कहानी बताती है कि गाड़ी मैं बैठी हीराबाई की हंसी से, खुशबू से, चूड़ियों की खनक से, चुहल से, बतकही से हिरामन की पीठ में गुदगुदी लगती है। अब सेल्यूलाइड इसे कैसे बताए? तब बासु ने तय किया होगा कि साहित्य का सेल्यूलाइड पर अनुवाद नहीं करना है, रचना का मर्म पकड़ना है। इसलिए उन्होंने अपनी भाषा-फोटोग्राफी-का आसरा छोड़ा और एक साहित्यकार की तरह नये दृश्यों की उद्भावना की। दो-चार उदाहरणों से स्पष्ट हो जाएगा।

...तो न सही पीठ पर गुदगुदी... लेकिन हिरामन हीराबाई के लिए खाना और अपने बैलों के लिए पानी लेकर आया है... और हीराबाई की आँख लग गई

है... और उसकी पिंडली पर एक चींटा चल रहा है। अब हिरामन क्या करे? क्या उसे हाथ से हटा दे? लेकिन हाथ खाली कहाँ है? और होते भी तो क्या इस तरह का व्यवहार किया जा सकता है? अर्थात् बताइए! क्या हीराबाई को जगा दे? लेकिन क्या कहकर जगाया जाए? क्या अनदेखी कर ले? लेकिन चींटा घाघरे में घुसकर जगह-बेजगह काट भी तो सकता है। हिरामन फूंक मारकर चींटे को हटाने की कोशिश करता है... तो घाघरा ही उठने लगता है...इस्स! अजब मुसीबत है! जा रे ज़माना!

एक ओर दृश्य देखिए। मेले में संगाती मिलते हैं। आपस में सलाह-मशविरा। हीराबाई को देखने की कोशिश...। नौटंकी के लिए हीराबई से मिले पास... गाँव में कुछ न बताने का परस्पर वादा... एक साथ खाने के लिए बासा... यहाँ हिरामन का अन्य संगाती गाड़ीवालों से संबंध बताना जरूरी है। कहानी भी बताती है। पर वहाँ एक झोल है। कहानी मेले में पहुँचने तक कुछ और है, मेले में पहुँचने के बाद कुछ और। यहाँ एक जोड़ है। कहानी की भाषा अचानक पद्य से गद्य में बदल जाती है। बासु भी हिरामन के अन्य संगाती गाड़ीवानों से संबंध को बताते जरूर है, पर अपनी विधा की सामर्थ्य का सटीक इस्तेमाल करते हुए इसे एक गाने में कन्डेन्स कर देते हैं। गाना है, 'चलत मुसाफिर मोह लियो रे पिंजरेवाली मुनिया।' मैंने आज तक किसी हिंदी फिल्म में कोई गाना ऐसा नहीं देखा जिसमें सहायक कलाकर तो बीचोंबीच बैठा उछल-उछल कर गा रहा हो और हीरो फ्रेम के कोने में पीछे ही पीछे खंजड़ी बजा रहा हो। और फिर भी जो सब कर भारी पड़ रहा हो। गाना एक साथ तीन काम करता है। वह यह बताता है कि (एक को छोड़कर) सभी संगाती हिरामन से वरिष्ठ हैं और उसे राय दे सकने की कूबत रखते हैं। दूसरे यह भोले-भाले गाड़ीवानों की यौन पिपासा का सरस खुलासा भी सहज ही कर देता है और तीसरे वह उनकी परस्पर विश्वसनीयता और सगेपन बल्कि समताभाव वाली सामाजिकता को भी उजागर कर देता है। यह काम कहानी भी करती है, लेकिन इसके लिए कहानी को बहुत सारे शब्द खर्च करने पड़ते हैं।

ऐसा ही एक दृश्य हीराबाई द्वारा तंबू में स्टोव जलाकर खाना पकाने का है, और ऐसा ही एक दृश्य हिरामन का एक गोल पेंदी के लोटे में हीराबाई के लिए चाय

लाने का है। कहानी में ये दृश्य नहीं हैं... लेकिन ये कहानी के मिजाज़ के अनुकूल हैं और कहानी के प्रभाव को पुष्ट और मूर्त करने वाले हैं।

कहानी में हिरामन के अपने बैलों के साथ संबंधों को अत्यंत आत्मीयता के साथ उकेरा गया है। कहानी की शुरुआत से कहानी के अंत तक इन सबंधों की अपनी एक भूमिका है। हिरामन अपने बैलों को खूब प्यार करता है। यदि वह उन्हें पुचकारता ही रहता तो यह लेखक द्वारा प्रायोजित मालूम होता, हिरामन अपने बैलों को उसी तरह प्यार से झिड़कता रहता है जैसे कोई अपने छोटे भाइयों को। सच तो यह है कि हिरामन के बैल उसकी आजीविका के आधार ही नहीं, उसके सुख-दुख के साथी भी हैं, दोनों एक-दूसरे की भाषा को अच्छी तरह समझते हैं।

"....हिरामन ने अपने बैलों को झिड़की दी - कान चुनियाकर गप सुनने से ही तीस कोस मंजिल कटेगी क्या? इस बाएं नाटे के पेट में शैतानी भरी है।"

"....हिरामन ने जाते-जाते उलटकर कहा- हाँ हाँ, प्यास सभी को लगी है। लौटकर आता हूँ तो घास दूँगा। बदमाशी मत करो।"

"....रेलवे लाइन की तरफ उलट-पलटकर क्या देखते हो?"

मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं, और इस मामले में मैं बासु के साथ कोई रियायत नहीं करूंगा कि देहाती जीवन में मनुष्य और पशु के बीच के सहजात संबंधों को या तो बासु ने समझा ही नहीं और समझा भी तो उसका चित्रण तो हर्गिज़ नहीं कर पाये।

लेकिन इससे पहले कि हम बासु की व्याख्या की बनावट को समझ पावें, एक और दृश्य का जिक्र करने की इच्छा हो रही है।

"....सड़क तेगछिया गाँव के बीच से निकलती है। गाँव के बच्चों ने परदेवाली गाड़ी देखी और तालियाँ बजा-बजाकर रटी हुई पंक्तियाँ दुहराने लगे-

लाली-लाली डोलिया में

लाली रे दुल्हनिया

पान खाये...।"

हिरामन हँसा।... दुलहनिया... लाली-लाली डोलिया! दुलहनिया पान खाती है, दुलहा की पगड़ी से पान पोंछती है। 'ओ दुलहनिया तेगछिया गाँव के बच्चों को याद रखना। लौटती बेर गुड़ का लड्डू लेती आइयो। लाख बरिस तेरा दुलहा जिये।' 'कितने दिनों का हौसला पूरा हुआ है हिरामन का। ऐसे कितने सपने देखे हैं उसने! वह अपनी दुलहिन को लेकर लौट रहा है। हर गाँव के बच्चे तालियाँ बजाकर गा रहे हैं। हर आँगन से झाँककर देख रही हैं औरतें। मर्द लोग पूछते हैं कहाँ की गाड़ी है, कहाँ जाएगी? उसकी दुलहिन परदा सरकाकर देखती है। और भी कितने सपने...

'गाँव के बाहर निकलकर उसने कनखियों से टप्पर अंदर देखा, हीराबाई कुछ सोच रही है। हिरामन भी किसी सोच में पड़ गया।' बासु ने उसे उलट दिया।

कहानी में यह हिरामन का सपना है, फिल्म में यह हीराबाई का चरित्र भी कुछ खुलता है, जिसका कहानी में अन्यथा कोई अवकाश नहीं है। कोई आए और विवाह कर इसी तरह डोली में बैठाकर अपने घर ले जाए... इस दृश्य को वहीदा रहमान ने अपनी अद्‌भुत अभिनय क्षमता से अत्यंत मार्मिक और हृदयस्पर्शी बना दिया है। इस बात से कौन इंकार करना चाहेगा कि यह नर्तकी हीराबाई का ही नहीं, अभिनेत्री वहीदा रहमान का भी छलिया सपना रहा हो।

फिल्म और कहानी का अंत अलग-अलग है। फिल्म हीराबाई की गाड़ी के जाने और हिरामन के गुस्से से अपने बैलों को पीटते हुए तीसरी कसम के साथ ही समाप्त हो जाती है। कथा के भावोद्रेक का यह चरम बिंदु भी है। एक प्रेमकथा को इसी बिंदु पर समाप्त भी होना चाहिए था।

लेकिन कहानी वहाँ खत्म नहीं होती।

कहानी में हिरामन अब मेले की कमाई छोड़कर गाँव लौट जाने का निश्चय करता है। क्योंकि मेले में अब क्या है? हीराबाई के जाने के बाद मेला तो खोखला हो चुका है। लेकिन आगे भी कि हिरामन कभी रेल पर नहीं चढ़ा है। 'उसके मन में फिर पुरानी लालसा झांकी, रेलगाड़ी पर सवार होकर, गीत गाते हुए जगरनाथ धाम जाने की लालसा...।'

ध्यान दीजिए, हीराबाई की रेलगाड़ी जाते ही रेल में बैठकर गाना गाते हुए जगरनाथ धाम जाने की लालसा! यह किसी तरह की प्रतिक्रिया है? कहानी के अंतिम वाक्य को ध्यान से पढ़ा जाना चाहिए। अंतिम वाक्य है- "हीरामन गुनगुनाने लगा- अजी हाँ, मारे गए गुलफ़ाम!" मानो अपनी ही विमूढ़ता का उपहास करता हुआ... 'आधुनिकता' और 'ग्लैमर' की चकाचौंध में खोए रहने के बाद अपने गाँव की सड़क पर चल पड़ते समय मानो अपनी ही 'लरिकाई' पर व्यंग्य करता हुआ।

क्या रेणु के ये संकेत कुछ सोचने को विवश नहीं करते?

पूरी कहानी को तीसरी बार ध्यान से पढ़ने पर मुझे लगा यह प्रेमकथा है ही नहीं। रेणु ने इसे एक प्रेमकथा के रूप में लिखा ही नहीं था। हिरामन का परिचय देते हुए यह बताना कि उसने सर्कस के जिन्दा शेर की लदनी भी की है, या नेपाल बॉर्डर पर किस तरह वह एक बार फंस गया था और कैसे उसने दो कसमें खा रखी हैं, केवल वातावरण निर्माण के लिए नहीं हैं। हिरामन का हीराबाई के लिए आकर्षण यदि विमूढ़ता नहीं तो मुग्धता तो है ही। इसमें कौतुहल का भाव अधिक है। जो चीज खींच रही है वह है 'ग्लैमर'। ऐसा रूप-रंग, ऐशी खुश्बू, ऐसा श्रृंगार और ऐसी 'फोनूगिलासी' आवाज हिरामन के अनुभव संसार से बाहर की बात है। जैसे कोई बच्चा पहली बार सर्कस देखकर झूला झूलती लड़कियों से, सधे हाथी-घोडों.से, तोते-कुत्तों से, जोकर से, शेरों के रिंग मास्टर से बैंड से, रोशनियों और रंग-बिरंगी पोशाकों से, हर चीज से मुग्ध हो जाता है... कुछ-कुछ वैसा ही भाव है। आवाज 'कोयल' या 'बुलबुल' जैसी नहीं है, 'फोनूगिलासी' है, जैसी किसी देहातिन की हो ही नहीं सकती। एक पल के लिए कहीं हीराबाई को लेकर हिरामन के मन में कोई फेण्टेसी या कल्पना नहीं है। हीराबाई सुंदर है, सहृदय है, किंतु अनुभवी है, ठोस जमीन पर है। मीता, गुरुजी और भैया के बावजूद वह जानती है कि गाड़ीवान को भाड़ा भी देना है और बख्शीस भी। यहीं पर अटक है। यह एक शहराती ईमानदारी है कि किसी ने पैसे विश्वास से अपने पास रखवाये हैं तो जाने से पहले उसे लौटा दिए जाये...लेकिन हीराबाई के लिए इसी का महत्त्व है। और हिरामन को इसी की खुंदक है। कि ''इस्स! हरदम रुपैया-पैसा, रखिए रुपैया! क्या करेंगे चादर?'' यानी? क्या अपेक्षा है हिरामन की? ज़ाहिर है यह तो नहीं रही होगी कि हीराबाई प्रेम प्रदर्शन करेगी.. पर हाँ, ज़रा मोहब्बत से कहती कि मीता! तुम्हारा साथ छूट रहा है, तुम्हारी

याद आएगी, कोई भूल-चूक हुई तो माफ़ कर देना... वगैरह...। लेकिन वहाँ एक ठोस व्यावसायिकता है... ''मैं फिर जा रही हूँ मथुरा मोहन कंपनी में, अपने देश की कंपनी है। बनैली मेला आओगे न?''

अवसर था कहानी में अवसर था जब हिरामन हीराबाई से उसके अतीत के बारे में, बचपन के बारे में, सपनों के बारे में, भविष्य की कल्पनाओं के बारे में पूछता है। आखिर यह तो पूछा ही था, ''आपका घर कौन जिला में पड़ता है?''

लेकिन हिरामन को हीराबाई से कोई रिश्ता नहीं जोड़ना था। दोनों की दुनियाएँ अलग-अलग हैं। दोनों एक-दूसरे के प्रति मानवीय उष्मता के साथ संवेदित हो सकते हैं, शायद करुण भी, किंतु उससे अधिक कुछ नहीं।

कहानी में की गई महुवा घटवारिन की आयोजना कलात्मक तो है ही, अत्यंत महत्त्वपूर्ण भी है। यह कहानीकार के हेतु पर भी प्रकाश डालती है। इसके स्पष्ट संदर्भ बाद में भी हैं। हिरामन ने यह कथा हीराबाई को इसलिए सुनाई क्योंकि यह उसे बहुत पसंद है, इसलिए नहीं कि उसे हीराबाई की हैसियत और औक़ात के बारे में कोई टिप्पणी करनी है। लेकिन हीराबाई जो कि कहानी से विचलित हो जाती है, इसलिए नहीं कि उसे महुवा घटवारिन से सहानुभूति हो जाती है, बल्कि इसलिए कि उसे अपनी हैसियत और औक़ात की नये सिरे से प्रतीति होती है। कहानी सुनकर वह कहती है, 'तुम तो उस्ताद हो मीता!' और अन्त में जाते समय रुपैया-पैसा के बारे में हिरामन की झिड़की खाकर हीराबाई कहती है, 'महुवा घटवारिन को सौदागर ने खरीद जो लिया है गुरुजी!'

इस बात पर बहुत कम ध्यान दिया गया है, कि कहानी का शीर्षक 'तीसरी कसम' नहीं है। कहानी का शीर्षक है 'तीसरी कसम उर्फ मारे गये गुलफ़ाम'। काश! इस बात पर ध्यान दिया गया होता।

इस तरह यह कहानी ग्रामीण समाज की 'बाजार संस्कृति' से टकराव की कहानी ठहरती है। रेणु की यह सोच उनकी अन्य कहानियों (लाल पान की बेगम, अच्छे आदमी, पंचलैट, उच्चाटन आदि) में भी दिखाई देती है। यह कहानी रेणु ने 1956 में लिखी थी और इस पर फिल्म बनी थी 1966 में। यह ज़माने की भाषा में शायद इसे परंपरा और आधुनिकता का द्वंद्व कहा जाता। लेकिन बात इतनी सी नहीं

थी। यह बाजार की शक्तियों का मानवीयतापूर्ण समाज व्यवस्था पर सीधा सांस्कृतिक हमला था, जिसे रेणु ने अपनी संवेदनशीलता से भांप लिया था। आज 56 की कहानी का भयानक विस्तार हो चुका है। रेणु होते तो देखते कि हमारे पूरे समाज को बाज़ार बनाने की और नागरिक को मात्र उपभोक्ता बनाने की साज़िश बहुराष्ट्रीय शक्तियों द्वारा उदारीकरण और वैश्वीकरण के नाम पर कितनी निष्प्रतिरोध चालू हैं।

''... सुना हो हिरामन!

चौधरी की चाल में सोई है हीराबाई!

कहते हैं कल रात हवेली में नाची थी

........................

देखते रह गये तमाशा बड़े-बड़े

हीराबाई के चाहने वाले

जब सबकी आँखों के सामने चौधरी के गले से

लिपट गई हीराबाई।

× × ×

आओ हिरामन

आओ हिरामन

इतने गुमसुम गुमसुम क्यों हो

कुछ तो गप्प रसाओ हिरामन!

.............................

सब कुछ कितना बदल गया है

संगी-साथी बिखर गये हैं

कोई तो मुँह मोड़ गया है

कोई बीच में छोड़ गया है

सबका अलग-अलग बासा है

सबका भात अलग पकता है

अब वो बातें कहाँ हिरामन!

× × ×

इस्स हिरामन!

महुवा घटवारिन के गीत से

पोंछते रहोगे आँखें जब तक

सौदागर

और बली होते जाएंगे।

× × ×

पीठ पर ढोई अपनी उमर

आत्मा में भरे रहे अपना

निरक्षर सीधापन

आँखों में लिए-लिए फिरते रहे

सूरत

हीराबाई की

बस दो-चार लदनी ही लादनी थी

चतुरता-चालाकी की

इसके बात तो आदत पड़ जाती।

(सभी काव्यांश भगवत रावत की पुस्तक 'सुनो हिरामन' से।
'वसुधा-42 से साभार')

# शैलेन्द्र : भारत के बॉब डिलन

*–लाल बहादुर वर्मा*

पुरस्कार तो होते ही हैं विवादास्पद– नोबेल पुरस्कार भी। 2017 में विवाद का स्वरूप एकदम नया था। पुरस्कार एक लोक-गायक को दिया गया था– साहित्य का नोबेल पुरस्कार अमरीका के एक विख्यात और विवादित गायक बॉब डिलन को दिया गया था। पॉप सिंगर को नोबेल? यह सच है कि डिलन को साहित्य में मान्यता मिल गई थी। नोबेल एकेडेमी ने डिलन में होमर और सैफ्को की छवि देखी थी। खबर सुन कर सलमान रुश्दी ने खुश होकर कहा थाः आरफियश से फैज़ तक शायरी गाई जाती रही है– डिलन भी गाते हैं। वर्तमान व्यवस्था की कटु आलोचक नाओमी क्लाइन तो खबर सुनकर उछड़ पड़ी थीं। पर भारत में, खासतौर पर हिंदी साहित्य वालों ने खास ध्यान नहीं दिया। आखिर डिलन एक गीतकार था– लोकगीतकार! पूरी तरह 'कवि' भी नहीं! बहुतों को पता भी नहीं कि Answer is blowing in the wind — (हवाओं में बह रहा है जवाब) करोड़ों युवाओं को आज के सवालों के जवाब ढूंढ़ने पर आमादा कर रहा है।

बहरहाल मैं तो बीमारी में भी झूम उठा था। क्योंकि मैंने साहित्य में भी भेदभाव को कभी नहीं स्वीकारा है और लोक-साहित्य को निचली पायदान पर रखने का विरोध करता रहा हूं। मेरी नज़र में नोबेल समिति ने साहित्य का विस्तार किया था और शास्त्रीय जकड़बंदी थोड़ी ढीली हुई थी। मैंने स्वस्थ होते ही एक पुस्तिका प्रकाशित की : 'बॉब डिलन को नोबेल पुरस्कार।' इसमें मैंने इस पुरस्कार की अर्थवत्ता बताई और ज़ोर देकर कहा कि ऐसा भारतीय संदर्भ में होता तो यह पुरस्कार निश्चित ही शैलेन्द्र को मिल सकता था– डिलन की ही तरह के लोकप्रिय कवि को अवसर मिलता तो शैलेन्द्र गायक भी बन सकते थे। मंचों पर अपनी कविताएं वह गाकर ही सुनाते थे। जानकर तो उनमें राग भी ढूंढ लेते थे।

इस पुस्तक के संपादक डॉ० इन्द्रजीत सिंह ने शैलेन्द्र को हिंदी साहित्य के एजेन्डे पर ला दिया है। अब शैलेन्द्र को नजरअंदाज करना मुमकिन नहीं। श्रेणीबद्धता और भेदभाव से ग्रस्त हिंदी साहित्य में 'गीतकार' कवियों से अलग एक निम्न श्रेणी है। और फिर फिल्म का गीतकार तो 'निम्नतर' हुआ। लोकगीत– लोक साहित्य तो साहित्य माना ही नहीं जाता। एक गोष्ठी में यह सवाल मैंने विख्यात आलोचक

नामवर सिंह के सामने रखा था। मैंने पूछा, 'आप लोग आखिर फिल्मी गीतों को साहित्य में कब शामिल करेंगे? छपी हुई मामूली कविता भी साहित्य है पर नरेन्द्र शर्मा का 'ज्योति कलश छलके....' जैसा फिल्मी गीत नहीं'। बहुत से जरूरी सवालों की तरह मेरे सवाल को भी नामवर जी ने अपने वाक्-चातुर्य से उड़ा दिया था। आखिर यह सवाल तो बना ही हुआ है कि शैलेन्द्र के समकालीन साहिर और कैफ़ी आजमी जैसे शायर जितने फिल्मों में लोकप्रिय और सम्मानित रहे उतने ही उर्दू अदब में भी। पर शैलेन्द्र का हिन्दी साहित्य के इतिहास में नाम तक नहीं दर्ज हो पाया है। इससे शैलेन्द्र नहीं छोटे हुए हैं, छोटा हिंदी साहित्य ही हुआ है।

डॉ॰ इन्द्रजीत की किताब में शैलेन्द्र का बहुविध मूल्यांकन किया गया है। इसलिए दोहराव से बचने के लिए में विस्तार में नहीं जाऊंगा पर यह तो कहूंगा ही कि बहुत कम साहित्यकार होंगे जिसे नागार्जुन ने कहा थाः 'दिल ही दिल थे।' यह नागार्जुन का अपना अन्दाज था वर्ना शैलेन्द्र जितना दिल के कवि थे उतना ही दिमाग के भी। उनके संग्रह 'न्योता और चुनौती' में एक कविता 'पेरिस कम्यून' पर भी है। हिंदी साहित्य में पेरिस कम्यून की अर्थवत्ता समझने वाले बहुत ज्यादा लोग नहीं हैं।

शैलेन्द्र के मर्म को समझने के लिए इतना ही काफ़ी होगाः मैं चिर प्रेमी शैलेन्द्र और मेरी प्रेयसि हिंदी जनता।

यह है उनके जन कवि होने का सबूत। पर वे मजनूं और फरहाद जैसे 'इनफैचुएटेड' प्रेमी नहीं थे। उन्होंने अपने 'मैं' यानी अपनी वैयक्तिक्ता के साथ कभी समझौता नहीं किया। इसके अनेक उदाहरण हैं। उनके अज़ीज कैफ़ी इसकी ताईद करते हैं। पर सबसे बड़ा प्रमाण तो यही है कि उन्हें पुश्किन कहने वाले राज कपूर, उन्हें आसमान तक ले जाने वाले राज कपूर, ने बहुत चाहा कि 'तीसरी कसम' को सुखांत कर दिया जाए ताकि बॉक्स ऑफिस भी स्वागत करे। वह तो भारतीय दर्शक को भली-भांति जानते थे। जीवन में लगातार दुखों से त्रस्त-ग्रस्त भारतीय आम दर्शक फिल्मों में दुखांत नहीं पसंद करता। वितरक भी अड़े हुए थे। पर शैलेन्द्र और लेखक फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने इस परिवर्तन को नहीं स्वीकार किया। राज रुठ गए। शैलेन्द्र टूट गए। पर माने नहीं।

शैलेन्द्र की सबसे लंबी कविता थी तीसरी कसम— हिंदी सिनेमा के इतिहास में मील का पत्थर, कदाचित हिंदी की एक मात्र फिल्म जो एक प्रशंसित साहित्यिक रचना का फिल्मी 'वर्ज़न' थी और जिससे लेखक भरपूर संतुष्ट था। पुस्तक में सबसे अच्छा विश्लेषण शैलेन्द्र की इस एक मात्र फिल्म का ही हुआ है। इसलिए मेरे पास शैलेन्द्र के चरमोत्कर्ष पर कहने के लिए कुछ विशेष नहीं है।

शैलेन्द्र एक मेहनतकश रचनाकार थे और उनकी श्रमजीवी संवेदना 'जेनुइन' थी। तभी तो आज भी संघर्षरत मेहनतकशों को उनकी रचनाओं से प्रेरणा मिलती है। 1972 की बात होगी। अपनी दूसरी जन्मभूमि, जहां मेरा रूपांतरण हो गया, पेरिस से मैं यह सीख-समझ कर लौटा था कि शिक्षक को तो 'एक्टिविस्ट' होना ही चाहिए नहीं तो वह वास्तव में शिक्षक, एक प्रेरक शिक्षक, नहीं हो सकता। सक्रिय बुद्धिजीवी होते ही सड़क पर उतरा था और छात्र-मित्रों के साथ मिलकर गा रहा थाः 'भगतसिंह इस बार न लेना काया भारतवासी की। देश भक्ति के लिए मिलेगी सज़ा आज भी फांसी की। बाद में पता चला इसका रचनाकार शैलेन्द्र था और उसने यह आज़ाद हिन्दुस्तान में लिखा था, 1948 में— ऐसी दूरदृष्टि!

**तू ज़िंदा है तो ज़िंदगी की जीत में यकीन कर**
**अगर कहीं है स्वर्ग तो उतार ला जमीन पर।**

यह है खांटी आशावादिता। 'जन्नत की हकीकत' तो ग़ालिब की तरह शैलेन्द्र को भी मालूम है पर वह ललकारते हैं कि जिंदा होने का सबूत तो यही हो सकता है कि हम अन्ततः जिंदगी की जीत पर यकीन करें। पर विश्वास करना पर्याप्त नहीं, स्वर्ग जैसी कल्पना को सच करने में जुटना पड़ेगा। यह कविता आज भी लोगों को बताती है कि 'ज़िंदगी ज़िंदादिली का नाम है।'

संपादक ने शैलेन्द्र का सार तय किया है 'इश्क, इन्कलाब और इंसानियत' — गागर में सागर। इससे बड़ी शिनाख्त क्या होगी! इससे आगे कोई और क्या लिखे!

# ''दिल का हाल सुने दिलवाला''
# हृदय के कवि शैलेन्द्र जी

*– पंडित किरण मिश्र*

युग कवि गीतकार शैलेन्द्र जी को शत शत नमन करते हुए कुछ वन्दना प्रसून मैं उनकी स्मृति को चढ़ाना चाहता हूं!

**हे अजर अमर कवि गीतकार।**
**''शैलेन्द्र हृदय कवि'' नमस्कार।।**
**चिठिया का मरम बता करके।**
**मेहमान का धरम दिखा करके।।**
**हर दिल का हाल सुना करके।**
**जन जन को जन से मिला करके।।**
**समझाये करमवा के विचार।**
**''शैलेन्द्र हृदय कवि'' नमस्कार।।**
**गंगा यमुना की अगमधार।**
**जाना सबको है उसी पार।।**
**रहिमू और राम की इक पुकार।**
**मतलब दोनों का एक प्यार।।**
**गागर में भरे सागर अपार।**
**''शैलेन्द्र हृदय कवि'' नमस्कार।।**

''दिल का हाल सुने दिलवाला'' पंक्ति से यह सहज स्पष्ट है कि कवि जन मानस के कितने निकट है। यह पंक्ति उनकी सप्ताम्बरा की ऊंचाई को भाषित करती है। शैलेन्द्र जी के कथ्य में गहराई देखने जाए तो कोई भी रचना उठाकर देख लीजिए ''टू डेप्थ'' सार्थक दिखता है ''अगर कहीं है स्वर्ग तो उतार ला जमीन पर अत्यन्त मार्मिक और चमत्कारी तथ्य रचना है। ऐसे ही संवेदनशील कवि का समाज सदैव ऋणी रहता है। समाज को दर्शन और दिशा का एकाकार कराने वाले कवि के जब ये बोल कानों में गूंजते है कि–

**सजन रे झूठ मत बोलो–**
**खुदा के पास जाना है।**

**न हाथी है न घोड़ा है–**
**वहां पैदल ही जाना है।**

यहां पैदल जाने की बात का जवाब नहीं, इस बात पर मंथन करें तो ऐसा लगता है कि कवि ने विश्व की सारी संस्कृतियों के वाङ्मय को समेट कर एक शब्द में उद्धृत कर दिया है। इतनी पैनी नजर के धनी और इतने सहज, सरल शब्दों के खिलाड़ी विरले ही देखे गये हैं।

शैलेन्द्र जी की तुलना किसी से नहीं की जा सकेगी क्योंकि शैलेन्द्र जी जैसा, कवि और रचनाकार केवल शैलेन्द्र जी में देखा गया। ''सजनवा बैरी हो गये हमार'' जैसी शैलेन्द्र जी की बातें आज मुहावरा का रूप ले चुकी हैं। बहुत-सी बातें लोकोक्तियों के धरातल पर खरी उतर रही हैं। समाज इनका उपयोग करता रहेगा।

जो जन शैलेन्द्र जी के निकट रहे है चाहे पारिवारिक हो या उनके मित्रगण रहे हैं सभी धन्य हैं। ऐसे महाकवि की स्मृति मेरे मानस पटल पर सदैव अंकित हैं मैं अंतर्मन से उन्हें पुनः नमन करता हूं।
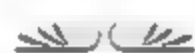
# ''नया सिनेमा'' की पहली फिल्म– 'तीसरी कसम'

*–मनमोहन चड्ढा*

फिल्म को मनोरंजन का साधन मात्र या एक व्यावसायिक उत्पादन न मानकर आत्माभिव्यक्ति की एक रचनात्मक विधा मानने वाले तथा कलात्मक स्तर पर कोई समझौता न करने की दृढ़ता के कारण शैलेन्द्र और बासु भट्टाचार्य को 'नया सिनेमा' का प्रथम प्रहरी माना जा सकता है। शैलेन्द्र, विमल राय की अधिकांश फिल्मों में गीत लिख रहे थे और बासु भट्टाचार्य विमल राय के सहायक निर्देशक के रूप में फिल्म निर्देशन की बारीकियाँ सीख रहे थे। बासु ने ही 'तीसरी कसम' पर फिल्म बनाने का आइडिया शैलेन्द्र को दिया था। ''रमैय्या वस्तावैया– मैंने दिल तुझको दिया'' जैसे लोकप्रिय और साहित्यिक गीत लिखने वाले संवेदनशील कवि ने सचमुच अपना दिल 'तीसरी कसम' को दे दिया। दिल ही नहीं अपने प्राण भी 'तीसरी कसम' पर न्यौछावर कर दिये। शैलेन्द्र जैसा गीतकार और फिल्म निर्माता भी लाखों में एक होता है।

यह कहना गलत होगा कि फिल्म वित्त निगम ने नये सिनेमा को जन्म दिया। निगम ने इस सिनेमा के विकास में केवल एक उत्प्रेरक का काम किया। क्योंकि भारत में सिनेमा की नयी सम्भावनाओं की खोज और इस विधा में कुछ कर सकने की कुलबुलाहट प्रबुद्ध जनों में सन् 1960 में ही शुरू हो गयी थी। जब प्राणोत्सर्ग के जोखिम पर भी अपनी रूचि की फिल्म बनाने की इच्छा प्रबल हो उठी थी। इसी प्रबल आकांक्षा के वशीभूत होकर शैलेन्द्र, फणीश्वरनाथ रेणु, बासु भट्टाचार्य, राजकपूर, मुकेश तथा शंकर-जयकिशन साथ-साथ आ जुड़े थे।

राजकपूर 'जागते रहो' की असफलता से निराश थे लेकिन उन्हें इस फिल्म से विशेष प्रेम था। अपने मित्र शैलेन्द्र को 'तीसरी कसम', के निर्माण से बचने की सलाह भी उन्होंने दी लेकिन 'तीसरी कसम' शैलेन्द्र का सपना थी इसलिए शैलेन्द्र के सपने को साकार करने के लिए फिल्म में काम करने का पारिश्रमिक भी उन्होंने नहीं लिया। 'तीसरी कसम उर्फ मारे गये गुलफाम' का हिरामन अब तक दो कसमें खा चुका है, पहली कसम यह है कि वह कभी तस्करी का माल अपनी गाड़ी पर नहीं लादेगा। बांस को लादकर ले जाने के कारण भी उसकी पिटाई होती है इसलिए वह बांस को लादने से भी तौबा कर चुका है।

इसी हिरामन को एक दिन एक जनाना सवारी को चालीस मील दूर मेले में पहुंचाने का काम मिलता है। हिरामन रात के सफर पर इस जनाना सवारी को लेकर निकल पड़ता है। भीनी-भीनी खुशबू और कभी-कभी छन छनाते घुंघरुओं की आवाज सुनकर हिरामन अपनी उत्सुकता रोक नहीं पाता और देखता है कि उसकी बैलगाड़ी में तो एक परी यात्रा कर रही है। नौटंकी में नाचने वाली हीराबाई को हिरामन का सरल स्वभाव और भोलापन अच्छा लगता है। नाम में समानता के कारण वह हिरामन को 'मीता' कहकर पुकारती है। हिरामन इस लंबे रास्ते को बिताने के लिए हीराबाई को महुआ घटवारिन की कथा सुनाता है। महुआ की कथा और हीराबाई और हिरामन की कथा आपस में घुलमिल जाती है। शैलेन्द्र के गीतों– 'सजन रे झूठ मत बोलो', 'पिया की पियारी भोली भाली रे दुल्हनियाँ', 'पान खाये सइयां हमार' के साथ-साथ कहानी आगे बढ़ती है। मेले में पहुँचकर हीराबाई नौटंकी के मंच पर गाती नाचती है तो तब लोग भद्दे मजाक करते हैं और हिरामन उनसे उलझ पड़ता है। हीराबाई उसे मंच के एक कोने पर ही स्थान दिला देती है। जमींदार हीराबई को पसंद कर चुका है। भरे मन से हीराबाई और हिरामन एक-दूसरे से विदा लेते हैं। दोनों का विशेष रूप से हिरामन का स्वप्न साकार होने से पहले ही टूट जाता है, हीराबाई का आत्मीय साथ छूट जाने के कारण हिरामन तीसरी कसम खाता है कि कभी किसी कंपनी की औरत को अपनी बैलगाड़ी में नहीं बैठायेगा।

रेणु की कथा में जितना प्रवाह है, उसे राजकपूर और वहीदा रहमान के अभिनय, सुब्रत मित्र के कैमरे तथा बासु भट्टाचार्य के निर्देशन से गति मिली है। अपनी पहली फिल्म में ही बासु भट्टाचार्य ने एक अद्भुत लयात्मकता हासिल की। नौटंकी के दृश्यों में कहीं कहीं फिल्म ढीली लगने लगती है लेकिन 'तीसरी कसम' की यात्रा के दृश्य हिंदी सिनेमा में बेजोड़ है। जिस वर्ष 'तीसरी कसम' को वर्ष की सर्वश्रेष्ठ फिल्म का राष्ट्रीय सम्मान दिया गया उस वर्ष सत्यजीत राय की फिल्म 'नायक' भी प्रतियोगिता में थी।

'तीसरी कसम' के बाद बासु ने 'अनुभव' तथा 'आविष्कार' जैसी श्रेष्ठ फिल्में बनायी।

1958 में विमल राय की दो फिल्में प्रदर्शित हुईं– 'मधुमति' और 'यहूदी'। यह दोनों फिल्में सफल रहीं। गीत-संगीत भी दोनों फिल्मों का खूब कामयाब हुआ। 1958 के फिल्म फेयर अवार्ड में दोनों फिल्मों की धूम थी। शैलेन्द्र के लिखे 'मधुमति' फिल्म के बीत– ''आजा रे परदेशी... मैं तो थक गई पंथ निहार'' के लिए लता मंगेशकर को सर्वश्रेष्ठ गायिका का सम्मान मिला और शैलेन्द्र को फिल्म 'यहूदी' के गीत– ''ये मेरा दीवानापन है'' के लिए सर्वश्रेष्ठ गीतकार का अवार्ड मिला। गीत दोनों फिल्मों के बहुत लोकप्रिय हुए। 1963 में विमल राय की एक असाधारण फिल्म– 'बन्दिनी' प्रदर्शित हुई। यह फिल्म सिनेमा की भाषा में रची गयी एक सुन्दर कविता है। विमल राय अपनी इस फिल्म में संकेतों द्वारा गहनतम मनोभावनाओं को अभिव्यक्ति देने में सफल हुए हैं। 'बन्दिनी' बिमल राय की सर्वोत्कृष्ट कृति है। निर्विवाद रूप से इस फिल्म को सर्वोत्कृष्ट बनाने में गीतकार शैलेन्द्र के गीतों एवं संगीतकार एस डी बर्मन का भी बड़ा हाथ है।

हिन्दी फिल्म गीत लेखन में शैलेन्द्र सचमुच एक बहुत बड़ा नाम है। उनके गीतों में सबसे बड़ा जादू सरल भाषा का था। सरल-सहज शब्दों में गहरी और बड़ी बात कहने का जादुई अंदाज ही शैलेन्द्र को बड़ा और महान बनाता है। शैलेन्द्र को उनके अर्थपूर्ण, मधुर, लोकप्रिय और स्तरीय गीतों के रचनाकार के साथ-साथ 'नया सिनेमा' के पहले फिल्म निर्माता के रूप में भी याद किया जाना चाहिए।

# 'तीसरी कसम' के तीन हीरामन

*– बाबू राम 'इशारा'*

'तीसरी कसम उर्फ़ मारे गये गुलफाम' एक कहानी है, जिसके नायक का नाम है– ''हीरामन''। यह कहानी बहुत से लोगों ने पढ़ी है और बहुत से लोगों ने इसके बारे में बहुत कुछ कहा है। मैंने जब यह कहानी पढ़ी थी, तब शायद कहने के लिए कुछ बाकी नहीं रह गया था। पहली बार 'रामायण' सुनने के बाद किसी बच्चे के मन में श्री राम के प्रति भक्ति जैसी उमड़ पड़ती है... 'तीसरी कसम' पढ़ने के बाद रेणु जी के प्रति मेरे मन में वैसी ही श्रद्धा उमड़ रही थी। जब मैंने कहानी पढ़ी थी तो मैं रेणु जी के बारे में उतना ही जानता था जितना कि एक कहानी को पढ़कर उसके लेखक के बारे में जाना जा सकता है। मगर जब शैलेन्द्र जी ने ''तीसरी कसम'' पर फिल्म बनाने का निर्णय लिया और मुझे उनके प्रोडक्शन में सहायक निर्देशक की नौकरी मिल गयी तब मेरी खुशी का ठिकाना नहीं था कि अब तो रेणु जी से सिर्फ भेंट ही नहीं बल्कि बातचीत करने का भी मौका मिलेगा। पहली मुलाकात के समय मुझे पहले लगा, मैं एक महान लेखक से मिला। मेरे दिलो-दिमाग में एक आवाज गूंज वाले कारीगर; यही है जिन्होंने मेला लगाया है एक से एक अभूतपूर्व चरित्रों का, मिट्टी के पुतलों का; यही हीरामन के मन में पैठकर बोलते हैं, यही हीराबाई की हंसी में खिलखिलाते हैं और पलटदास की आत्मा में रामायण की पंक्तियां गुनगुनाते हैं। यही है हीरामन। मेरा पहला हीरामन। यों 'तीसरी कसम' को पढ़ने के बाद हर पाठक 'हीरामन' हो जाता है। हीरामन की जिंदगी के हर लम्हों को वह झेलता है और एक मीठा सा दर्द उसके दिल में हमेशा के लिए पलता रहा है। मगर मेरा यह पहला हीरामन तटस्थ होकर, निर्विकार मुस्करा रहा है। मानों इसने कुछ किया ही नहीं।

फिल्म का कार्य आंरभ हुआ। श्री नवेन्दु घोष ने 'पटकथा' लिखी और रेणु जी संवाद लिखने में जुट गये। पटकथा तैयार करने के पहले हम सभी एक साथ बैठकर बहस करते, दृश्य सोचते और एक दूसरे से सहमत और असहमत होते। अंत में रेणु जी की ओर हम देखते। वे कहते– 'नहीं', हीरामन ऐसा नहीं सोच सकता; अथवा हीराबाई ऐसा ही व्यवहार कर सकती है; या लालमोहर और धुन्नीराम ठीक ऐसे ही हरकत करेंगे।' आज तीसरी कसम को देखने के बाद साफ

पता चलता है कि 'संवाद' लिखने वाली भाषा में नहीं बल्कि बोलने वाली भाषा में होने चाहिए। मेरे पहले हीरामन ने 'संवाद' लिखकर यह बता दिया है कि लिखने वाली भाषा और बोलने वाली भाषा में कितना अंतर है। ....... पहले हीरामन ने अपना पार्ट बखूबी अदा कर दिया।

### ''जी'' कहने न कहने का संकोच : हीरामन नंबर दो

हीरामन के घर का सेट— पहला सेट था। इस सेट में श्री राजकपूर (हीरामन) श्रीमती दुलारी (हीरामन की भाभी) और श्री ए० के० हंगल (हीरामन के बड़े भाई) पार्ट करने वाले थे। सेट मोहन स्टूडियो में बाहर, वृक्षों की छांव में लगा हुआ था। कला निर्देशक देश मुखर्जी और उनके सहायकों ने बांस फूस-मिट्टी और गोबर से हीरामन का घर तैयार किया था। शूटिंग शुरू होने के दिन मैं सुबह से बस एक ही बात सोच रहा था कि श्री राज कपूर हीरामन के रूप में कैसे लगेंगे। या हीरामन श्री राज कपूर के रूप में कैसे जंचेगा? श्री विमल राय जो मुहुर्त शॉट लेने वाले थे—आकर कैमरे के पास राज कपूर साहब की प्रतीक्षा कर रहे थे। तब किसी ने कहा—अरे राज जी आ गये हैं। मैंने पलटकर इधर-उधर देखा मगर मुझे कहीं भी राज जी दिखायी नहीं पड़े। इतने में डायरेक्टर श्री बासु भट्टाचार्य की आवाज सुनाई पड़ी— 'एसो हीरामन। एइदिके एसो'। मैंने दूसरी तरफ मुड़कर देखा—सामने 'हीरामन' खड़ा था। ऐसे लगा जैसे रेणुजी की कहानी का हीरामन कपड़े पहनकर उनके मन से बाहर आ गया है। उनके मन से ही नहीं मेरे मन से भी। एक बार तो जी मैं आया कि कंधे पर हाथ मारकर मैथिली या भोजपुरी में पूंछू— ''कि हौ हीरामन भाय। कौन चीज के लदनी लाद...।'' मगर कह नहीं सका। यह था मेरा दूसरा हीरामन जो सिर्फ कपड़े और ''मेकअप'' बदलकर ही नहीं अपनी सारी सत्ता को बदलकर हर सेट पर आता। वह जब संवाद बोलता तो ऐसा कभी नहीं लगता कि यह 'राज जी' बोल रहे हैं। हर दृश्य में उसके हाव-भाव, चाल-चलन और बोली-बानी को देखने-सुनने के बाद ''राज साहब'' या ''राज जी' कहकर पुकारने की बात भूल जाता और हीरामन के साथ 'जी' जोड़ना अच्छा नहीं लगता। और इस 'जी' को अलग करना सभ्यता के विरुद्ध था। इसीलिए हम उनसे बातें करते समय खूब सतर्क हो जाते। वर्ना मैं ही नहीं यूनिट और स्टुडियों का हर कार्यकर्ता प्यार से

इस भोले-भाले पात्र को हीरामन कहकर ही पुकारना चाहता था। आज लगता है, रेणुजी ने 'तीसरी कसम' में हीरामन का चरित्र केवल राज जी के लिए गढ़ा था।

## सचमुच जादूगर है : हीरामन नंबर तीन

फिल्म बनने लगी। पहले सेट के 'रशेज' तैयार हुए। फेमस लेबोरेटरी में हम सभी ने यानी ''ईमेज-मेकर्स'' यूनिट के कार्यकर्ताओं ने पर्दे पर 'रशेज' देखे। और तब मुझे लगा कि 'तीसरी कसम' का 'तीसरा हीरामन' भी है। जो अपने कैमरों के साथ कहानी की आत्मा में पैठ गया है। जो खुद एक शब्द नहीं बोलता मगर जिसका काम बोलता है। आमिई हीरामन ...जिसने 'तीसरी कसम' के हर बारीक और मोटी मार को अपने कलेजे पर सहा है। मैं ही वह हीरामन हूं जो हीराबाई को 'देवी' समझता है, परी समझता है और अंत में उसका मीता हो जाता है। मैंने ही वे गीत गाये हैं।

मैं आजतक किसी ऐसे व्यक्ति से नहीं मिला जिसे अपने काम से इतना लगाव या प्यार हो। रात-रात भर जगकर दृश्यों को आंकने के सपने देखना, सेट पर आकर उनींदी आंखों में हर बारीकियों की जांच करना, प्रकाश और छाया को मापना और फिर भी संतुष्ट नहीं होना। इसे कोई 'नखरे' माने। मगर इन 'नखरों' के पीछे कहीं भी अभिमान या घमंड नहीं बल्कि एक महान कलाकार की ईमानदारी होती थी। यों बात कुछ बेढंगी सी लगती है। पर, मैं आज बार-बार सोचता हूं कि रेणु जी के लिखने और राज साहब के 'अदा' करने के बावजूद यदि ''आंकने'' वाला यह व्यक्ति यानी श्री सुब्रत मित्रा नहीं होता तो..... क्या होता? यह सवाल मैंने शैलेन्द्र जी जो इस फिल्म के निर्माता और गीतकार हैं– पूछा है, रेणु जी से पूछा है, और युनिट के अन्य कार्यकर्ताओं से भी पूछा है। सभी हैरत से एक ही जवाब देते हैं– ''न जाने क्या होता।'' हर प्रिंट को देखने परखने के बाद एडिटर श्री मायेकर पर एक नशा सवार हो जाता है और उनके मुंह से बरबस निकल पड़ता है– 'जादूगर है यह आदमी।'

उस दिन ट्रायल देखने के बाद जब सभी लोग प्रोडयूसर से लेकर 'ऑफिस ब्वॉय' तक उनकी तारीफ कर रहे थे और उनको बधाई देने की खोज रहे थे तो सुब्रत बाबू असंतुष्ट मुद्रा में खड़े, गंभीर होकर श्री अरुण भट्ट से प्रिंट के बारे में बातें कर

थे– ''नेहीं नेहीं। इससे काम नहीं चलेगा। हम ऐसा नहीं मांगा। हमारा सामने में करना होगा। रात दू बजे हम यहां रहेगा।'' हम सभी जब उन्हें घेरकर मुबारकवाद दे रहे थे तो उनके चेहरे पर एक विरक्ति की रेखा अंकित थी– ''एतना चेंचा मेंची (अर्थात शोरगुल) का क्या बात है?'' मेरे मुंह से अनायास निकल पड़ा– ''सुब्रत बाबू। आप तो ''तीसरी कसम'' के तीसरे हीरामन हैं।

''और दो-दो कौन हैं?'' एक सरल बालक की तरह उन्होंने पूछा। मैंने जब उन्हें पहले दो हीरामनों के नाम बतलाये तो तनिक मुस्कराकर उन्होंने एक 'अत्यंत आवश्यक' काम की जिम्मेदारी मुझे सौंप दी। यानी कल उनके साथ शहर से बाहर कहीं जाकर बैलगाड़ियों के पहियों की आवाजों, रेलवे इंजनों की सीटी, खुलने-ठहरने और दूर जाने की आवाजों, मैना, कोयल, झिंगुर की बोलियों, पानी में बैलगाड़ी चलने की आवाजों की रिकॉर्डिंग करनी होगी। ''स्टॉक'' की एक आवाज या इफेक्ट उन्हें नहीं चाहिए। हम दूसरे दिन उनके साथ निकले। दिन भर वे बगैर कुछ खाये-पीये ''इफेक्ट'' रिकॉर्ड करते रहे। इतना ही नहीं तीसरे दिन आर के स्टूडियों के बाहर ''साउण्ड वैन'' में श्री अलाउदीन के साथ उन आवाजों को दिन भर टेप से फिल्म पर स्वयं उपस्थित रहकर ट्रांसफर करवाते रहे। राजकपूर साहब स्टूडियों के अंदर से 'सपनों का सौदागर' फ़िल्म की शूटिंग करके ज्यों ही बाहर निकलते, उनके कानों मे बैलगाड़ियों की घंटियों अथवा रेलवे इंजिन की कूक अथवा कोयल के कलेजे की 'हूक' सुनाई पड़ती है। हर बार मुस्कुराते हुए वे अपने कॉटेज की ओर चले जाते। शाम को उनकी शूटिंग समाप्त हो गयी। मगर सुब्रत बाबू को मगन होकर काम करते देखकर वे अपने को रोक नहीं सके। बड़बड़ाये- ''सुब्रतो!तुमि मानुष ना की? थकता भी नहीं। ''फिर शैलेन्द्र जी को देखकर बोले– ''किस्मत के सिकन्दर हो तुम जो ऐसा...।'' बम्बई फिल्म इंडस्ट्री के मशहूर और अनुभवी साउंड रिकॉर्डिस्ट श्री अलाउद्दीन कह रहे थे– ''अपनी जिंदगी में मैंने ऐसा आदमी पहली बार देखा...। मैं मान गया...।''

---

धर्मयुग 25 दिसम्बर, 1966 से साभार

# ग्लोबल गाँव का कबीरा– शैलेन्द्र

*–कमलेश पांडेय*

जैसे पेड़ों में फल लगते हैं, स्त्रियों में बच्चे लगते हैं, शैलेन्द्र में गीत लगते थे। जैसे शैलेन्द्र में गीत लगे, शैलेन्द्र मेरी पीढ़ी में लगे, ये मेरा और मेरी उस पीढ़ी का सौभाग्य रहा है जिसे बड़ी कच्ची उम्र और राज कपूर, गुरुदत्त, बिमल राय, शांताराम, के आसिफ, चेतन आनंद जैसे फिल्मकारों की फिल्में लगीं। मेरी पीढ़ी ने शैलेन्द्र को न सिर्फ पढ़ा, सुना, देखा, बल्कि हम उनके गीतों पर बड़े हुए हैं। शैलेन्द्र के गीत हमारी खूराक थे। जैसे हम खाना खाते हैं, हम शैलेन्द्र के गीतों को पीते थे। और इसलिए पीते थे क्योंकि इस मुल्क के जिन आदर्शों, मूल्यों सोच और संस्कारों की बात होती है वे वेदों, उपनिषदों, भगवद्गीता से चले आए हैं, मगर आम जनता तो वेद, उपनिषद पढ़ती नहीं है, तो आम जनता के लिए इन वेदों, उपनिषदों, भगवद्गीता का रस निकाल कर जनता तक जनता की भाषा में पहुँचाने का काम शैलेन्द्र जैसे हमारे फिल्म गीतकारों ने किया है। जो आजतक बरकरार है। हालांकि हमारे फिल्म गीतकारों के इस योगदान की पहचान और सम्मान अभी भी बाकी है।

शैलेन्द्र शायद वो पहले गीतकार थे, शायर तो बहुत हुए हैं...साहिर, शकील, मजरूह, कैफी साहब। मगर खुद साहिर ने, जब उन्हें शैलेन्द्र के फिल्म 'बंदिनी' के गीत 'मत रो माता लाल तेरे बहुतेरे' के मुकाबले उनके फिल्म 'ताजमहल के गीत 'जो वादा किया वो निभाना पड़ेगा' के लिए फिल्मफेयर दिया गया तो कहा था, 'इस इंडस्ट्री में अगर कोई लिरिसिस्ट है तो शैलेन्द्र है, हम लोग तो शायर हैं।' और फर्क है शायर और लिरिसिस्ट में। फर्क ये है कि शायरी साहित्यिक विधा है और लिरिसिस्ट आम आदमी की जबान में बड़ी-से-बड़ी और गहरी-से-गहरी बात कहने की काबिलियत रखता है। इसीलिए शैलेन्द्र में कहीं कबीर मिल जाएँगे, कहीं मीरा, कहीं उपनिषद, कहीं गीता। शैलेन्द्र के साधारण गानों में भी, जैसे 'मधुमती' का जिसमें नायिका अपने प्रेमी का इंतजार कर रही है...

**'मैं नदिया, फिर भी मैं प्यासी**
**भेद है गहरा, बात जरा सी'**

मगर 'बात जरा सी' नहीं क्योंकि भेद गहरा...एक नदी है जो खुद प्यासी है क्योंकि उसे सागर से मिलना है। एक अनपढ़ गंवार के लिए इसमें एक गाँव की

भोली-भाली लड़की की प्यास है और उपनिषद जानने वाले के लिए आत्मा की परमात्मा से मिलने की प्यास है। अनपढ़ और पढ़े-लिखे बुद्धिजीवियों के बीच की दूरी बड़े आसान, सहज शब्दों से, आम जनता की जबान पर चढ़ जाने वाले शब्दों से शैलेंद्र ही पाट सकते थे। इसीलिए शैलेंद्र सिर्फ अपनी पीढ़ी के ही नहीं हर पीढ़ी के गीतकार हैं। आज भी जब उनके गीत बजाते हैं तो देखने और सुनने वाले साथ में गाने लगते हैं।

शैलेंद्र के शब्द-भंडार का कोई मुकाबला नहीं। पूरब की लोकभाषा हो, उर्दू हो या खड़ी बोली, गाँव-गवैयों से ले कर संभ्रांत शहरियों तक इतनी सहजता से जो शक्स पहुँच सकता है उसका आप किससे मुकाबला करेंगे?

उनका 'तीसरी कसम' का गीत 'लाली लाली डोलिया में लाली रे दुल्हनिया' ले लीजिए... मैं छै साल का रहा हूँगा अपने गाँव में। शादी-ब्याह के मौसम में हम बच्चे गाँव के बाहर खड़े रहते और जो भी डोली गुजरती, यही गीत इसी लय में हमारे नन्हें होठों पर होता था। दशकों बाद शैलेन्द्र ने दुबारा उस गीत को हमारे लिए ज़िंदा कर दिया।

ऐसा ही एक गीत है 'मधुमती' का... 'बिछुआ'...'बिछुआ' गाँव का शब्द है और पैशन का प्रतीक है। पहली बार जो सेक्सूऐलिटी की, वासना की उमंग उठती है उसका प्रतीक है। एक उम्र होती है जब 'बिछुआ' डंक मारता है और सारी पर्सनालिटी बदल जाती है। आप अचानक जवान हो जाते हैं, आपकी जरूरतें बदल जाती है। एक शब्द से शैलेन्द्र ने लड़की का औरत में बदलने का रूपांतरण बयान कर दिया है कि अब वो लड़की जवान हो गई है, उसकी जरूरतें बदल गई हैं। इस एक शब्द से गाँव का अनपढ़ गवाँर भी समझ जाएगा और शहरी लिखा-पढ़ा भी। ऐसा ही एक और गीत है...

**'छोटे से घर में गरीब का बेटा,**
**मैं भी हूँ माँ के नसीब का बेटा,**
**रंजोग़म बचपन के साथी,**
**आँधियों में जली जीवन बाती,**
**भूख ने है बड़े प्यार से पाला...'**

'भूख ने है बड़े प्यार से पाला', इसे वही समझ सकता है जो भूखों मरा हो। इस पंक्ति का अर्थ मुझे मुंबई में अपने संघर्ष के दिनों में समझ में आया था जब मुझे कई-कई दिन भूखे रहना पड़ा। तब मुझे समझ में आया कि भूख सिर्फ तीन दिन सताती है, उसके बाद सिर्फ भूख की याद सताती है। तीन दिन के बाद शरीर अपने आपको खाने लगता है इसीलिए वजन कम होने लगता है। भूख से लड़ना उतना मुश्किल नहीं है, इसीलिए लोग तो हफ्तों का उपवास कर लेते हैं, मगर भूख की याद से लड़ना वही अनुभव कर सकता है जिसे भूख ने बड़े प्यार से पाला हो।

शैलेन्द्र से अपना जुड़ाव मैंने सिर्फ उनके गीतों से ही नहीं उनकी कविताओं से भी अनुभव किया है। सन् 2000 के आसपास मैंने अपनी फिल्म 'रंग दे बसंती' लिखी थी जो 2007 में प्रदर्शित हुई। 2011 में शैलन्द्र के पुत्र दिनेश मेरे पास शैलेन्द्र की डायरी ले कर आए थे जिनमें उनकी हस्तलिपि में वो गीत लिखे थे जिन पर हम बड़े हुए थे। शैलेन्द्र के उन शब्दों को अपनी ऊँगलियों से छूना... तीन दिन तक मैंने अपना दाहिना हाथ नहीं धोया। मेरी पत्नी नाराज़ होती रही कि मैं गंदे हाथ से खाना खा रहा हूँ। मैं कहता ये उँगलियाँ शैलेन्द्र के शब्दों को चूम कर आई हैं, इनको धोना बड़ी गुस्ताखी होगी। उसी डायरी में शैलेन्द्र की कुछ कविताएँ भी थी जिनमें एक कविता थी...

**'भगत सिंह इस बार न लेना काया भारतवासी की**
**देशभक्ति के लिए आज भी सज़ा मिलेगी फाँसी की'**

मैंने दिनेश को मज़ाक में बोला कि तेरे बाबा ने मेरी फिल्म से पचास साल पहले ही मेरी कहानी चुरा ली थी। और ये महज़ इत्तेफ़ाक नहीं है, अस्तित्व में कहीं-न-कहीं तमाम कहानियों, गीतों, कविताओं, चित्रों, मूर्तियों का स्रोत शायद एक ही है।

हम लोग पटकथा लिखते हैं तो उसमें गीतों के लिए मक़ाम निकाले जाते हैं। और इसकी वजह है हॉलीवुड में मेरे मित्र लेखकों को ये समझ में नहीं आता कि हमारी हर फिल्म में गीत क्यों होते हैं। अगर फिल्म म्यूजिकल हो, तब तो ठीक है मगर हर तरह की फिल्म में गीत? तो मैं उन्हें समझाता हूँ कि हम भरत मुनि की संतान हैं। हमारा सिनेमा भरत मुनि के नाट्य-शास्त्र से आता है जिसमें गीत सिर्फ मनोरंजन के लिए नहीं रखे जाते, गीत भी सीन होते हैं जिनमें कहानी चलती रहती

है, किरदार की सोच, उसकी उलझन, दुविधा, खुशी, गम, उदासी, हँसी, मनस्थिति, सब बयान हो जाते हैं। शैलेन्द्र के कुछ गीतों में भी स्क्रीनप्ले का व्याकरण उपयुक्त हुआ है। जैसे 'जिस देश में गंगा बहती है' का 'हम भी हैं, तुम भी हो, दोनों हैं आमने-सामने', - इस एक गीत में नायक का, नायिका का, खलनायक का, यहाँ तक कि नायिका की सहेली का भी पोईंट ऑफ व्यू एक साथ है जो एक पूरा सीन है। इसको अगर सीन की तरह लिखा जाता तो शायद दस-पंद्रह पन्नों का सीन होता। मगर यहाँ एक गीत में सब आ गया है। इसी तरह शैलेन्द्र का 'आवारा हूँ, गर्दिश में हूँ, आसमान का तारा हूँ, ले लीजिए- अनपढ़ से लेकर पढ़े-लिखे तक, सबको समझ में बात आ गई कि किरदार आवारा है, गर्दिश में भले है, मगर आसमान का तारा है। दो पंक्तियों में पूरी कहानी समझ में आ गई। ये कमाल दुनिया की कोई और फिल्म इंडस्ट्री नहीं कर सकती, सिर्फ, हमारी फिल्में कर सकती है। और शैलेन्द्र के 'आवारा हूँ', गीत ने तो दुनिया फ़तह की है और 'मेरा जूता है जापानी, मेरी पतलून इंग्लिशतानी, सर पे लाल टोपी रूसी फिर भी दिल है 'हिंदुस्तानी' ने भारत के पहले ग्लोबल इंडियन की घोषणा कर दी थी। इसलिए मैं शैलेन्द्र को 'ग्लोबल गाँव का कबीरा' कहने का लोभ नहीं सँवरण कर पा रहा हूँ।

शैलेन्द्र का ही एक और गीत है जो शायद हिंदी फिल्मों के इतिहास में अकेला गीत है जिसे सुन कर आँखों और मुँह, दोनों में एक साथ पानी आ जाता है। 'उजाला' का गीत है 'सूरज ज़रा पास आ', इसका एक अंतरा है-

**'चूल्हा है ठंडा पड़ा, और पेट में आग है',**

इसी में आगे आता है...

'आलू-टमाटर का साग, इमली की चटनी बने, रोटी करारी सिंके, घी उसमें असली लगे'... सुन कर किस कमबख़्त के मुँह में पानी नहीं आ जाएगा? और बात भूख की हो रही है इसलिए 'चूल्हा है ठंडा पड़ा और पेट में आग है' सुन कर किस कमबख़्त की आँख में पानी नहीं आ जाएगा? सूरज तो क्या खुदा की आँख और मुँह में भी पानी आ जाए ऐसा ये गीत है।

शैलेन्द्र का जिक्र हो और 'गाईड' छूट जाए, ये कैसे हो सकता है। 'गाईड' अकेली फिल्म है जिसका रीमेक नहीं हो सकता क्योंकि गोल्डी साब, शैलेन्द्र, बर्मन दा, देव साब, वहीदा जी, किशोर साहू, सबको एक साथ नहीं लाया जा सकता।

गोल्डी साब मेरे गुरु भी थे और मित्र भी। 'गाईड' पहले अंग्रेजी में बनी थी जिसकी पटकथा प्रसिद्ध लेखिका पर्ल एस० बक ने लिखी थी और निर्देशक हॉलीवुड के थे। फिल्म बुरी तरह फ़्लॉप हुई थी। देव साब ने इसको हिंदी में बनाने का सोचा और पहले अपने बड़े भाई चेतन साब के पास गए। चेतन साब ने मना कर दिया क्योंकि तब वे अपनी 'हक़ीक़त' बनाने में व्यस्त थे। उन्होंने सुझाव दिया कि गोल्डी को ले लो। गोल्डी साब ने कहा मैं बनाऊँगा तो अपनी 'गाईड' बनाऊँगा, उपन्यासकार की 'गाईड' नहीं। और वही 'गाईड' बनी जो गोल्डी साब बनाना चाहते थे। इसकी पटकथा अपने समय से दशकों आगे थी। अपराध से आध्यात्म तक फैली हुई इस पटकथा में इतनी अंतरधाराएँ थी, इतनी गुत्थियाँ थी जिसे निभाना, संभालना और अपने गीतों में उतारना केवल शैलेन्द्र जैसे गीतकार के लिए संभव था। और 'गाईड' का 'काँटों से खींच के ये आँचल तोड़ के बंधन बाँधी पायल', तो मेरे विचार से स्त्रियों का एंथम होना चाहिए। 'तीसरी कसम' में हीरामन हीराबाई को महुआ घटवारिन की कथा सुनाने के लिए लीक छोड़ कर बेलीक होता है। शैलेन्द्र भी हमें 'तीसरी कसम उर्फ मारे गए गुलफाम' की कथा सुनाने के लिए गीतकार होते हुए भी लीक पर बेलीक हुए और प्रोड्यूसर बन बैठे। जावेद साब का मिसरा है 'हिरन को अपनी कस्तूरी सज़ा थी'। हीरामन के दिल में हीराबाई कस्तूरी बन कर बैठी थी और शैलन्द्र के दिल में 'तीसरी कसम'। शायद अनजाने या जानबूझ कर दोनों इस हक़ीक़त से अनजान रहे कि हिरन को उसकी अपनी कस्तूरी ही सज़ा होती है। हीरामन को हीराबाई नहीं मिली और 'तीसरी कसम' को भी कामयाबी तो दूर, ठीक से प्रदर्शन तक नहीं मिला। कुछ लोग मानते हैं कि इसी ने शैलेन्द्र को भी हीरामन की तरह 'मारे गए गुलफाम' बना दिया। मैं नहीं मानता, ये एक गलतफहमी है जो गुरुदत्त की चर्चित आत्म-हत्या के साथ शैलन्द्र की मौत को भी जोड़ देती है। जो शक्स मौत से दो दिन पहले तक ऑफिस रेनोवेट करने और शंकर-जयकिशन के साथ पचास फिल्मों में कम-से-कम पचास गाने लिख कर लेनदारों का कर्ज चुकाने के लिए हिसाब लगा रहा हो वो खुद्कुशी नहीं कर सकता। हाँ, ये हो सकता है कि शैलेन्द्र ने जिन लोगों का भरोसा किया हो उन लोगों ने उनका भरोसा तोड़ा हो। तभी तो लेनदारों की तरफ से सिर पर लटकती गिरफ्तारी के वारंट के डर से शैलेन्द्र अपनी फिल्म के प्रीमियर के लिए दिल्ली नहीं जा सके थे। गुरुदत्त की 'कागज के

फूल' हो या शैलेन्द्र की 'तीसरी कसम', साहिर के शब्दो में, जो उन्होंने गांधी और ग़ालिब के लिए कहा था, हम दर्शक 'दोनों के कातिल हैं और दोनों के पुजारी हैं।'

शैलेन्द्र के विषय में बहुत कुछ लिखा गया है, बोला गया है, पढ़ा गया है मगर शैलेन्द्र जैसी घटना के विषय में जितना भी लिखा, बोला और पढ़ा जाए, कम है। हाँ मैं शैलेन्द्र को केवल एक व्यक्ति नहीं, एक घटना मानता हूँ जो कभी-कभी और बड़ी मुश्किल से घटती है मगर घटती है... एक आशीर्वाद की तरह, एक चमत्कार की तरह। ताज्जुब तो ये है कि बॉब डिलन को उनके गीतों के लिए 'नोबेल प्राइज़' दिया जा सकता है तो आज तक शैलेन्द्र का नाम 'नोबेल प्राइज़' के लिए प्रस्तावित करने की कोशिश इस मुल्क ने क्यों नहीं की? ये मुल्क जो पिछले साठ साल से शैलेंद्र के गीतों को पीता और जीता रहा है। 'नोबेल प्राइज़' तो दूर 'भारत रत्न', 'पद्म विभूषण', 'दादा साहेब फाल्के पुस्कार' तो क्या, एक 'पद्मश्री' तक नहीं? ये और बात है कि शैलेन्द्र इन पुरस्कारों के मोहताज नहीं, वे इन सब पुरस्कारों से बड़े हैं। तभी वे गा सके कि...

**'होंगे राजे राजकुँवर, हम बिगड़े दिल शहज़ादे**
**हम सिंहासन पर जा बैठे, जब-जब करें इरादे'**

जिसने करोड़ों दिलों को अपना सिंहाँसन बना लिया हो उसे उन पुरस्कारों के सिंहाँसन की क्या जरूरत? जरूरत शैलेन्द्र की नहीं जरूरत हमारी है, हम जो शैलेन्द्र के कर्जदार हैं। शैलेन्द्र ने जो गीत हमें दिए हैं वो हम पर कर्ज से कम नहीं जिसे हम शायद कभी चुका नहीं पाएँगे।

मैंने सुना है कि शैलेन्द्र जब इप्टा की मीटिंगों में आते थे तो अक्सर उनकी कमीज़ में छोटे-छोटे सुराख दिखाई देते थे क्योंकि शैलेन्द्र जब मुंबई रेलवे में वेल्डर थे और वैल्डिंग की चिंगारियाँ अक्सर उनकी कमीज़ में सुराख कर देती थी। जिस तरह शैलेन्द्र की वेल्डिंग मशीन से चिंगारियाँ निकलती थी, वैसे ही उनकी कलम से गीत निकलते थे। वे चिंगारियाँ शैलेन्द्र की कमीज़ में सुराख करती थी और उनके गीतों ने आज तक हमारी नीदों में सुराख करके हमें जगाए रखा है और आगे भी जगाए रखेंगे।

# फिल्म आकाश में चमकता रहेगा गीतों का सितारा

*–ईशमधु तलवार*

गीतकार शैलेन्द्र की हाथ में सिगरेट लिए तस्वीर बहुत लोगों ने देखी होगी, लेकिन कितनों को पता होगा कि इस सिगरेट के पीछे भूख की आग और जिंदगी का धुंआ भी कहीं छिपा है। कहा जाता है कि पिता की बीमारी और आर्थिक तंगी की वजह से शैलेन्द्र का परिवार जब रावलपिंडी से मथुरा आया तो यहाँ उनकी आर्थिक कठिनाइयाँ इतनी बढ़ गईं कि शैलेन्द्र और उनके भाइयों को बीड़ी पीने पर मजबूर किया जाता था, ताकि उनकी भूख मर जाए। यानी बीड़ी जीवन की ज्योत जलाए रखने वाली एक बाती बनकर रह गई। जीवन में ऐसी आँधियों से निकल कर ही शैलेन्द्र के गीत में ये पंक्तियाँ आई होंगी-

**"रंज-ओ-गम बचपन के साथी**
**आँधियों में जली जीवन बाती**
**भूख ने है बड़े प्यार से पाला**
**दिल का हाल सुने दिलावाला**
**सीधी सी बात न मिर्च मसाला**
**कह के रहेगा कहने वाला..."**

सच में, शैलेन्द्र को भूख ने बड़े प्यार से पाला था। शैलेन्द्र की बेटी अमला शैलेन्द्र मजूमदार ने एक बार बताया था की वे स्ट्रीट लाइट के नीचे बैठकर पढ़ते थे और कभी ऐसा भी हो जाता कि घर में एक ही आलू है, तब सोचते थे कि सुबह का खाना खाएँगे या रात को? रोटियाँ सपने में आती थीं।

शायद इसीलिए शैलेन्द्र अपने गीतों में ऐसे हसीन ख्वाब देख पाए-

**"चूल्हा है ठंडा पड़ा और पेट में आग है,**
**गरमा-गरम रोटियाँ कितना हसीन ख्वाब है।"**

(फिल्म-उजाला- 1959, गीत-सूरज जरा पास आ...)

शैलेन्द्र का प्रारंभिक जीवन बेहद कष्ट में बीता। परिवार में बड़े होने के कारण उन्हें विषम परिस्थितियों से जूझना पड़ा। उनका नाम था शंकर शैलेन्द्र और शंकर भगवान के वे बड़े भक्त थे। सोचते थे कि भगवान सब कुछ ठीक कर देगा। जब शैलेन्द्र की माँ पार्वती देवी बहुत बीमार हुईं तो वे मंदिरों में चक्कर लगाते थे। माँ के

स्वास्थ्य की कामना के लिए वे तपती धूप में नंगे पैर मंदिरों में भटकते रहे, लेकिन माँ नहीं बची और अंत में वह चली गईं। इससे शैलेन्द्र को गहरा धक्का लगा और उन्होंने भगवान पर भरोसा करना छोड़ दिया। इस तरह अंधविश्वास और पाखंड के दुनिया से वह बाहर निकल कर आए और नास्तिक बन गए।

शैलेन्द्र की प्रगतिशील चेतना के सिद्धहस्त कवि के रूप में पहचान बन चुकी थी। उन्होंने जिंदगी को बहुत नजदीक से देखा था और वह अपनी कविता में लोगों को भरोसा दिला रहे थे- "तू जिंदा है तो जिंदगी की जीत में यकीन कर, अगर कहीं हैं स्वर्ग तो उतार ला जमीन पर।"

शैलेन्द्र को रेलवे में मुंबई के माटुंगा वर्कशॉप में अप्रेंटिस के रूप में काम करने का मौका मिल गया था। खाली समय में वे कविता लिखा करते और काम निपटा कर सीधे प्रगतिशील लेखक संघ के दफ्तर में वक्त बिताने पहुँच जाया करते। यह दफ्तर पृथ्वीराज कपूर के ओपेरा हाउस के बिल्कुल सामने था। यह वह वक्त था जब शैलेन्द्र रेलवे यार्ड में एक वेल्डर के तौर पर काम करते थे। कहा जाता है कि शर्मीले स्वभाव के शांत रहने वाले शैलेन्द्र चिंगारियों से जला छींटदार शर्ट पहनकर इंडियन पीपुल्स थिएटर एसोसिएशन (इप्टा) के सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग लिया करते थे।

उस दौर में शैलेन्द्र की 'हंस', 'नया पथ', 'जनयुग' जैसी पत्रिकाओं में कविताएँ और गीत छपते थे। यह वह वक्त था जब आजादी का आंदोलन तेज हो रहा था। ऐसे में शैलेंद्र भी इस आंदोलन में कूद पड़े और जेल गए। बाद में जब देश आजाद हुआ तो बंटवारे के विभत्स हालात को लेकर उस रात वह फूट-फूट कर रोए। तब दिल में भड़क रही चिंगारियों ने गीत लिखवाया-

**"दोनों के आंगन एक थे भैया**
**कजरी औ सावन एक थे भैया**
**दो आंगन कर गया मकां के..."**

शैलेन्द्र प्रगतिशील लेखक संघ के सक्रिय सदस्य थे और 'इप्टा' के संस्थापकों में से एक थे। इप्टा के कार्यक्रम में ही उन्होंने अपनी एक प्रसिद्ध रचना 'जलता है पंजाब...' सुनाई थी। इसे सुनकर ही राज कपूर उनके पास पहुँचे और 'आग' फिल्म के लिए गाने लिखने का प्रस्ताव उनके सामने रखा। लेकिन शैलेन्द्र ने

इससे साफ इंकार कर दिया और कहा-"मैं कविताओं का कारोबार नहीं करता।" बाद की कहानी सब जानते हैं कि किस तरह उन्होंने जब घर में नया मेहमान आने वाला था तो राज कपूर से ₹500 उधार लिए और जब रुपये वापस करने पहुँचे तो 'सूद चुकाने के लिए' बरसात फिल्म के गीत लिखने के इसरार को उन्होंने मंजूर कर लिया। तब उनकी कलम से गीत निकला-

**"तुम से मिले हम सजन**
**हम से मिले तुम**
**बरसात में...।"**

हिंदी फिल्मों का यह पहला शीर्षक गीत था।

इसके बात तो शैलेन्द्र ने कई सदाबहार शीर्षक गीत लिखे जिन्हें लोग आज भी गुनगुना लेते हैं। 'जिस देश में गंगा बहती है', 'आई मिलन की बेला', 'हरियाली और रास्ता', 'दिल अपना और प्रीत पराई', 'सच है दुनियावालों के हम हैं अनाड़ी' (अनाड़ी), 'यहाँ के हम हैं राजकुमार'(राजकुमार), जैसे मानीखेज शीर्षक गीतों की लंबी फेहरिस्त है।

'आवारा' फिल्म के शीर्षक गीत को लेकर तो कई किस्से हैं। यह वही गीत है, जब शैलेन्द्र 'बरसात' के गीत लिख कर कर्जमुक्त हो चुके थे और आगे लिखने का मन नहीं था, लेकिन राज कपूर उन्हें यह कह कर साथ ले गए कि कहानी तो सुन लो। ख़्वाजा अहमद अब्बास चौंके और उनके मुँह से निकला- "अरे, इनसे ढंग से परिचय कराइए। ढाई घंटे की कहानी इन्होंने एक लाइन में कह दी।"

'आवारा हूँ, गर्दिश में हूँ, आसमान का तारा हूँ' गाने को लेकर एक दिलचस्प किस्सा शैलेन्द्र की पुत्री अमला शैलेन्द्र मजूमदार बताती हैं- "नोबल पुरस्कार से सम्मानित रूसी साहित्यकार अलेक्जेंडर सोल्ज़ेनित्सिन की एक किताब है द कैंसर वार्ड", इस पुस्तक में कैंसर वार्ड का एक दृश्य आता है, जिसमें एक नर्स एक कैंसर मरीज़ के दर्द को यही गाना गाकर कम करने की कोशिश करती है।"

इस गाने की लोकप्रियता के बारे में अमला शैलेन्द्र एक किस्सा और बताती हैं- "हम दुबई में रहते हैं। हमारे पड़ोस में तुर्कमेनिस्तान का एक परिवार रहता है। उनके पिता एक दिन हमारे घर आ गए, कहने लगे युवर डैड रोट दिस सांग- आवारा हूँ...आवारा हूँ? और उसे रूसी भाषा में वे गाने लगे।

फिल्मी गीतों में शैलेन्द्र का वामपंथी रूझान लगातार बना रहा। हक के लिए लड़ाई, गरीबी, शोषण, सामाजिक विषमता और मेहनतकश मजदूरों के लिए एक से एक नायाब गीत उनकी कलम से निकले। वह हमेशा आम आदमी के साथ खड़े रहे और उसी की भाषा में गीतों को रचते रहे-

**"होंगे राजे राजकुंवर**
**हम बिगड़े दिल शहजादे,**
**हम सिंहासन पर जा बैठें**
**जब जब करें इरादे...।"**

शैलेन्द्र को राजकूपर कभी पुश्किन कह कर बुलाते थे तो कभी कविराज। विख्यात कवि रामधारी सिंह दिनकर और नागार्जुन उन्हें 'आज का रैदास' कहते थे। देश के शीर्ष समीक्षक नामवर सिंह ने भी उन्हें रैदास के बाद उनकी परंपरा का सबसे बड़ा कवि बताया।

गुलज़ार ने शैलेन्द्र को याद करते हुए यूं ही यह नहीं कहा था-

"बिना शक शंकर शैलेन्द्र को हिन्दी सिनेमा का आज तक का सबसे बड़ा लिरिसिस्ट कहा जा सकता है। उनके गीतों को खुरच कर देखे, आपको सतह के नीचे दबे नए अर्थ प्राप्त होंगे। उनके एक ही गीत में न जाने कितने गहरे अर्थ छिपे होते थे।"

शैलेन्द्र ने समाज को अपना चेहरा दिखाने वाले कई गीत लिखे-

**"सब कुछ सीखा हमने**
**ना सीखी होशियारी**
**सच है दुनिया वालों**
**कि हम हैं अनाड़ी...।।"**

और... आगे वे कहते हैं-

**"कुछ लोग जो ज्यादा जानते हैं**
**इंसान को कम पहचानते हैं...।"**

थोड़े से ही शब्दों में इतनी बड़ी बात शैलेन्द्र ही कह सकते थे।

शैलेन्द्र ने समाज की विषमताओं को जितने नजदीक से देखा, उतनी ही गहराई से उन्होंने प्यार और रोमांस की संवेदनाओं को भी समझा। उनके सीने में एक

कोमल दिल भी था, जो उनके तमाम रोमांटिक गीतों में धड़कता हुआ दिखाई देता है। 'जिस देश में गंगा बहती है' फिल्म के ही एक गीत में शैलेन्द्र की कलम से निकली अनूठी भाषा का सौंदर्य देखा जा सकता है। शंकर जयकिशन का संगीतबद्ध यह गीत राग बसंत मुखारी पर आधारित है और जब इसे लता गाती हैं तो मन में संगीत के तार बजने लगते हैं-

**"ओ बसंती पवन पागल, ना जा रे ना जा, रोको कोई**

**वन के पत्थर हम पड़े थे, सूनी सूनी राह में**

**जी उठे हम जब से तेरी बाँह आई बाँह में**

**छीन कर नैनों से काजल, ना जा रे ना जा, रोको कोई...।"**

शैलेन्द्र के गीत में लोक और हिन्दी का जो सौंदर्य उभर कर आया है, उसे उनकी इन रचनाओं में देखा जा सकता है. "मेरा जूता है जापानी, आवारा हूँ, मुड़ मुड़ के ना देख मुड़ मुड़ के, पिया तोसे नैना लागे रे, चिठिया हो तो हर कोई बांचे, पान खाए सैंया हमारो, गाता रहे मेरा दिल, मैं गाऊँ तुम सो जाओ, सजन रे झूठ मत बोलो, नाचे मन मोरा, हर दिल जो प्यार करेगा, किसी की मुस्कुराहटों पे हो निसार, अजीब दास्तां है ये...।" आँखों में आँसू बन कर मुस्कराने का विशिष्ट अंदाज शैलेन्द्र में ही देखा जा सकता है। शैलेन्द्र अपने गीतों में जिस तरह नए ढंग के रूपक लाए, उसने फिल्मी गीतों को नई ऊँचाइयाँ दी। इन पंक्तियों को ही देखिए-

**"बही लिख लिख के क्या होगा**

**यहीं सब कुछ चुकाना है।**

**सजन रे झूठ मत बोलो खुदा के पास जाना है।"**

शैलेन्द्र की हिन्दी का उजियारा इस गीत में भी हम देख सकते हैं-

**"रात और दिन दिया जले, मेरे मन में फिर भी अंधियारा है**

**जाने कहाँ है वो साथी, तू जो मिले जीवन उजियारा है...।"**

शैलेन्द्र को हम आम आदमी का कवि कह सकते हैं। कुछ लोग उनकी तुलना अंग्रेजी के कवि शेली से भी करते हैं। शैलेन्द्र की रचनाओं में शब्दों की सादगी है, जिनमें गहरे अर्थ छिपे होते हैं। अपने गीतों में आम आदमी के दर्द को उन्होंने आवाज दी। शैलेन्द्र ने कहा राज कपूर के साथ फिल्म बरसात से अपने गीतों की यात्रा शुरू की और जीवन भर लोगों को अपने गीतों के रस में भिगोते रहे। उनके अविस्मरणीय गीत आवारा, बूट पॉलिश, श्री 420, संगम, गाइड, बंदिनी,

मधुमति, अनाड़ी, दिल अपना और प्रीत पराई और अनुराधा जैसी बेजोड़ फिल्मो में बिखरे पड़े हैं।

शैलेन्द्र के फिल्म ज्वैलथीफ (1967) के लिए लिखे गए गीत को भी देखा जाना चाहिए। संगीतकार एस॰डी॰बर्मन के लिए लिखा शैलेन्द्र का यह आखिरी गीत था, जो बर्मन दा की सफलतम फिल्म में से एक मानी जाती है-

**"रुला के गया सपना मेरा, बैठी हूँ कब हो सवेरा**
**वही है गम-ए दिल, वही है चन्दा तारे**
**आधी रात वही है और हर बात वही है**
**फिर भी ना आया लुटेरा**
**रुला के गया सपना मेरा...।"**

फिल्मी गानों को जिन लोगों ने हिन्दी भाषा से समृद्ध किया है, उनमें शैलेन्द्र का नाम अग्रणी है। शैलेन्द्र के घर में उर्दू और फारसी का चलन था। उनके गीतों में कहीं-कहीं उर्दू के शब्द आ जाते हैं, लेकिन उन्होंने हिंदी में अनेक यादगार गीत रचे।

शैलेन्द्र ने फिल्म सीमा (1955) में एक खूबसूरत गीत लिखा, जिसे मन्ना डे की कशिश भरी आवाज ने और भी प्रभावी बना दिया-

**"तू प्यार का सागर है, तेरी एक बूंद के प्यासे हम**
**लौटा जो दिया तूने, चले जाएंगे जहाँ से हम...।"**

शैलेन्द्र का गीत लिखने का ढंग भी निराला था। उनके प्रसिद्ध गीत 'खोया-खोया चांद...' के बारे में एक किस्सा मशहूर है। इस गीत में संगीतकार सचिन देव बर्मन ने अपने पुत्र आर॰डी॰बर्मन को यह गीत लेने के लिए शैलेन्द्र के पास भेजा। शैलेन्द्र उस समय अपने खार स्थित निवास पर नहीं थे। परिवार वालों ने बताता कि वे जुहू बीच पर मिल सकते हैं। आर॰डी॰ बर्मन वहाँ पहुँचे तो शैलेन्द्र चांदनी रात में समुद्र किनारे एक चट्टान पर बैठे सिगरेट का धुँआ छोड़ रहे थे। आर॰डी॰बर्मन के गीत माँगने पर शैलेन्द्र ने कहा- "पंचम, तुम माचिस पर ताल दो।" पंचम ने अंगुलियों से माचिस बजाई और शैलेन्द्र ने सिगरेट के खाली पैकेट पर गीत का मुखड़ा लिख कर दे दिया-

**"खोया खोया चांद**
**खुला आसमान**

**आँखों में सारी रात जाएगी**
**तुम को भी कैसे नींद आएगी...।"**

शैलेन्द्र ने यह मुखड़ा लिख कर पंचम को थमा दिया और कहा कि अभी मुखड़े पर धुन बना लो, अन्तरे बाद में दे दूँगा। और देखिए हिन्दी में अन्तरे भी क्या लिखे थे-

**"मस्ती भरी हवा जो चली**
**खिल खिल गई ये दिल की कली**
**मन की गली में है खलवली**
**कि उनको तो बुलाओ।"**

ऐसा ही एक किस्सा और है। वे एक बार गीत लिख रहे थे- "ए मेरे दिल कहीं और चल...।" लिखते-लिखते फाउंटेन पेन की स्याही खत्म हो गई। उन्होंने नीचे देखा, सिगरेट के टोंटे और माजिस की जली तीलियाँ पड़ी थीं। उनसे ही उन्होंने गीत पूरा कर दिया।

कल्पना कीजिए कि जब शैलन्द्र मथुरा से मुम्बई आए, तब उनके पास क्या था। मुंबई के परेल में रेलवे के एक कमरे के छोटे से क्वार्टर में वे रहते थे। क्या था इस कमरे में? देखिए- एक चारपाई, चारपाई के नीचे बर्तन, एक बक्सा जिसमें 2 जोड़ी कपड़े और खूंटी पर टंगी एक ढपली। यही ढपली बाद में राज कपूर की पहचान बन गई। "दिल का हाल सुने दिलवाला।" सहित कई गानों में राज कपूर को फिल्मों में ढपली बजाते हुए देखा गया।

मुंबई में राज कपूर की 'बरसात' फिल्म में पहला गीत लिखने के बाद शैलेन्द्र गर्दिश के बाहर आए तो उन्होंने एक नया बंगला खरीदा था और उसका नाम रखा था- 'रिमझिम'। जब तक आसमान रहेगा और आसमान में बादल रहेंगे, तब तक उनके गीतों की रिमझिम बारिश होती रहेगी और लोग सुख-दुख, रोमांस की बूंदों में भीगते रहेंगे। शैलेन्द्र आज बेशक हमारे बीच नहीं हैं, लेकिन फिल्म आकाश में गीतों का यह सितारा हमेशा चमकता रहेगा।

# अगला जन्म हो तो शैलेन्द्र का कोई गीत बनना चाहता हूँ

*– प्रसून जोशी*

आज मुझे बहुत गर्व और गौरव की अनुभूति हो रही है क्योंकि शैलेन्द्र मेमोरियल ट्रस्ट द्वारा कालजयी, कलात्मक, सुमधुर और लोकप्रिय गीतों के रचयिता महान गीतकार शैलेन्द्र जी की स्मृति में स्थापित 'शैलेन्द्र सम्मान' से मुझे अलंकृत किया गया। तीन कारणों से आज में बहुत प्रसन्न हूँ। पहली वजह महान गीतकार शैलेन्द्र की स्मृति में स्थापित 'शैलेन्द्र सम्मान' मुझे प्राप्त हुआ। खुशी का दूसरा कारण गीतों के राजकुमार नीरज जी के हाथों मुझे यह सम्मान मिला। खुशी का तीसरा कारण देवभूमि उत्तराखंड में शैलेन्द्र सम्मान समारोह को आयोजित किया जाना। मेरा जन्म अल्मोड़ा, उत्तराखंड में हुआ है इसलिए उत्तराखंड में जब भी आने का अवसर मिलता है, इसे मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ।

शैलेन्द्र जी ने आर्थिक मजबूरी के कारण राज कपूर साहब के आग्रह पर फिल्मों में गीत लिखना स्वीकार किया। 'बरसात' फिल्म में उन्होंने दो गीत लिखे। 'बरसात' फिल्म के कारण उन्हें पहचान मिली। 'आवारा' फिल्म ने उन्हें सर्वाधिक लोकप्रिय गीतकार बनाया। इस फिल्म के शीर्षक गीत 'आवारा हूँ, गर्दिश में हूँ आसमान का तारा हूँ' ने देश-विदेश में अपना परचम लहराया। सरलता, सहजता के साथ ऊंची और गहरी बात कहने में शैलेन्द्र निपुण थे। शैलेन्द्र शब्दों के जादूगर थे। 'मैं नदिया फिर भी मैं प्यासी, भेद यह यह गहरा बात जरा सी', 'तू प्यार का सागर है, तेरी इक बूंद के प्यासे हम' 'मेहमा जो हमारा होता है, वह जान से प्यारा होता है', 'मेरा जूता है जापानी... फिर भी दिल है हिंदुस्तानी' ये सभी गीत न केवल लोकप्रिय हुए बल्कि इनमें एक दर्शन है, एक फलसफा है। शैलेन्द्र जी और नीरज जी ने अपने गीतों से साहित्य को समृद्ध किया है। मेरा अगला जन्म हो तो मैं शैलेन्द्र जी का कोई गीत बनना चाहता हूँ। क्योंकि मेरा मानना है कि गीत, गीतकार से बड़ा होता है। मैं शैलेन्द्र जी का वह गीत बनना चाहता हूँ जो बेसाख़्ता किसी के हृदय से फूट निकले किसी के हृदय से बह निकले। आम आदमी दुख में हर्ष में उलझनों में शैलेन्द्र जी के गीतों का सहारा लेता है। अभी नीरज जी मुझसे कह रहे थे कि 'प्रसून आपने तारे जमीन पर' फिल्म के सभी गाने बहुमत उम्दा लिखे हैं। विशेष रूप से 'देखो इन्हें ये हैं ओस की बूंदे, पत्तों की गोद में आसमा से कूदे, अंगड़ाई ले

फिर करवट बदलकर, नाजुक से मोती हंस दे फिसलकर खो न जाए ये तारे ज़मीं पर', ये फिल्म गीत न होकर साहित्य की कविता है। आज के दौर में ऐसी मार्मिक कविता फिल्म गीत में लिखना बड़ी बात है।' यह कहते हुए वह मेरी पीठ थपथपा रहे थे। 'फूलों के रंग से दिल की कलम से जैसा' कालजयी गीत लिखने वाले गीत सम्राट नीरज जी के मुख से प्रशंसा सुनना मेरे लिए किसी अवॉर्ड से कम नहीं है। 'शैलेन्द्र सम्मान' उनके हाथों आज मिला, मेरे लिए ये सम्मान और भी कीमती हो गया है। मेरा जन्म, आरंभिक शिक्षा उत्तराखंड में हुई। प्रकृति की गोद में पला बड़ा हूं। यहाँ के पहाड़ों, नदियों, झीलों और फूलों ने बहुत प्रभावित किया। शैलेन्द्र और साहिर साहब के दौर में फिल्मों में अच्छे गीत लिखे गए, साहित्यिक गीत लिखे गए, संवेदनाएँ और सामाजिक सरोकार गीतों के अभिन्न अंग थे। मेरे जैसे नए गीतकार के लिए शैलेन्द्र जी एक आदर्श है। शैलेन्द्र जी ने फिल्म गीतों में साहित्य दिया है, सामाजिक सरोकारों को प्रधानता दी है, वंचितों-शोषितों की वाणी को मुखरित करने में अहम योगदान दिया। उन्होंने प्रकृति और प्रेम के अद्‌भुत गीत लिखे हैं।' 'सुहाना सफर और ये मौसम हसीं, हमें डर है, हम खो न जाएं.... गोरी नदियों का चलना उछल के, जैसे अल्हड़ चले पी से मिलकर' इस गीत में उन्होंने प्रकृति का अप्रतिम सजीव वर्णन किया है। देशप्रेम की भावना उनके गीतों में मौजूद है। 'होठों पे सच्चाई रहती है, जहाँ दिल में सफाई रहती है, हम उस देश के वासी हैं जिस देश में गंगा बहती है', या जब वह लिखते हैं 'मेरा जूता है जापानी, ये पतलून इंगलिशतानी, सर पे लाल टोपी रूसी, फिर भी दिल है हिंदुस्तानी', दिल है हिंदुस्तानी शब्दों में शैलेन्द्र भारतीयता और राष्ट्रीयता का रंग भर देते हैं।

# मनुष्यता के गान के अमर रचनाकार: शैलेन्द्र

– *स्वानंद किरकिरे*

मैं बड़ा खुशनसीब हूँ कि आज आशा उम्मीद और सरोकार के महान कवि शैलेन्द्र जी की स्मृति में स्थापित 'शैलेन्द्र सम्मान' से मुझे नवाजा जा रहा है। मैं गुलजार साहब से बहुत प्रभावित था, उनकी शायरी को पढ़कर और सुनकर मैने भी कविता लिखनी शुरू की। मेरे दिल के बहुत करीब रहे हैं शैलेन्द्र जी और साहिर साहब। इनके गीतों तक पहुँचने का माध्यम बने गुलजार साहब। गुलजार साहब ने इन महान कवियों तक पहुंचने का रास्ता दिखाया। शैलेन्द्र साहब ने एक से बढ़कर एक सरल सहज भाषा में कालजयी गीत लिखे। बेहद सादगी से बड़ी बात कहने में माहिर थे शैलेन्द्र। 'बंदिनी', 'गाइड', 'तीसरी कसम', 'अनाड़ी', 'जिस देश में गंगा बहती है', 'श्री 420', 'मधुमती' आदि कितनी ऐसी बेहतरीन फिल्में हैं जिनमें शैलेन्द्र जी ने सरल शब्दों में दिल को छूने वाले लाजवाब गीत लिखे। 'गाइड' फिल्म का गीत 'वहाँ कौन है तेरा मुसाफिर जाएगा कहाँ, दम ले ले घड़ी भर ये छैयाँ पाएगा कहाँ' आज भी रुह को सुकून देता है। अनाड़ी फिल्म का गीत- 'किसी की मुस्कुराहटों पे हो निसार, किसी का दर्द मिल सके तो ले उधार, किसी के वास्ते हो तेरे दिन में प्यार, जीना इसी का नाम है।' यह गीत मनुष्यता का गान है। इंसानियत की पहचान है। शैलेन्द्र जी को राज कपूर, विमल राय, ऋषिकेश मुखर्जी जैसे बड़े काबिल निर्देशक मिले जिन्होंने बहुत अच्छी फिल्में बनाई और शैलेन्द्र जी से दिल को छू लेने वाले गीत लिखवाए। उनका लिखा 'परख' फिल्म का एक गीत 'ओ सजना बरखा बहार आई, रस की फुहार लाई' मुझे बेहद पसंद है। मेरा मानना है कि जो दिल को छुए वह गीत बाकी सब शोर। शैलेन्द्र जी के अधिकांश गीत दिल को छूते हैं मन को भाते हैं। उन्होंने न केवल आशा, उम्मीद, फलसफे और लोक जीवन को चित्रित करने वाले गीत लिखे बल्कि 'तीसरी कसम' जैसी मार्मिक दिल को भाने वाली अविस्मरणीय फिल्म बनाई। 'तीसरी कसम' वास्तव में न्यू वेव सिनेमा का आगाज है। रेणु जी की मार्मिक कहानी राज कपूर और वहीदा जी का अभिनय और शैलेन्द्र जी के गीतों ने फिल्म को क्लासिक बना दिया। बहीदा जी की खूबसूरती फिल्म को और अधिक खूबसूरत बना देती है। शैलेन्द्र जी के गीत 'लाली लाली डोलिया में लाई रे दुल्हनियाँ' का फिल्मांकन इतना मैजिकल है जो दिल में

उतर जाता है। एक संवेदनशील कवि ही दिल को छू लेने वाली इतनी मार्मिक खूबसूरत फिल्म बना सकता है। शैलेन्द्र द्वारा दिल से बनाई गई फिल्म दुर्भाग्य से जनता के दिल तक नहीं पहुँच पाई। शैलेन्द्र का दिल टूट गया। फिल्म की असफलता ने उनकी जान ले ली। शैलेन्द्र ने कहानी की आत्मा को जिंदा रखने के लिए बाजार की शर्तों के साथ समझौता नहीं किया।

मैंने नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा में एडमिशन लिया। निर्देशन में मेरी रुचि थी। सुधीर मिश्रा जी ने मुझे सहायक निर्देशक बनाया। मैंने एक गीत 'बावरा मन देखने चला है इक सपना' लिखा और अपने दोस्तों को सुनाया गीत सबको अच्छा लगा। गीत की गूंज सुधीर मिश्रा जी के कानों तक पहुँची। उन्होंने मेरे इस गीत को 'हजारों खवाहिशें ऐसी' फिल्म में मेरी आवाज में शामिल किया। इस गीत ने मेरी किस्मत बदल दी। इसके बाद विधु विनोद चोपड़ा ने 'परिणीता' फिल्म में बतौर गीतकार मुझे मौका दिया। फिल्म चली और मेरे गीत भी। 'लगे रहो मुन्ना भाई' के गीत- 'बंदे में था दम' ने मुझे पहली बार नेशनल अवॉर्ड दिलवाया। 'पी के' फिल्म के गीत 'बहती हवा सा था' के लिए मुझे दूसरी बार सर्वश्रेष्ठ गीतकार का राष्ट्रीय पुरस्कार मिला। आमिर खान ने मुझसे 'सत्यमेव जयते', टी॰वी॰ सीरियल के लिए 'ओ री चिरैया, नन्ही सी चिड़िया अंगना में फिर आ जा रे' गीत लिखवाया। इस गीत ने मुझे बहुत लोकप्रियता दी। मेरा पहला कविता संग्रह 'आप कमाई' राजकमल प्रकाशन से आ रहा है। 'बद्रीनाथ की दुल्हनियां' फिल्म बहुत जल्द रिलीज हो रही है। इसमें मैंने अभिनय किया है। एक मराठी फिल्म में भी अभिनय कर रहा हूँ। आर बाल्की, राजू हिरानी आदि की आने वाली फिल्मों के लिए संवाद और गीत लिख रहा हू। मुझे संतोष और खुशी है कि हमारे साथी गीतकार- पीयूष मिश्रा जी, प्रसून जोशी, अमिताभ भट्टाचार्य, वरुण ग्रोवर, इरशाद कामिल आदि बहुत अच्छे गीत लिख रहे हैं। सरल शब्दों में गहरी और बड़ी बात कहने की शैलेन्द्र जी की परम्परा को हम आगे बढ़ाने की पूरी कोशिश करेंगे।

# फूल ही फूल ज़िंदगी बहार है

—*यतीन्द्र मिश्र*

**मैं हूँ गुबार या तूफाँ हूँ**
**कोई बताए मैं कहाँ हूँ**
**डर है सफर में कहीं खो न जाऊँ मैं**
**रस्ता नया आ आ आ...**
**आज फिर जीने की तमन्ना है**
**कल के अंधेरों से निकल के**
**देखा है आँखें मलते-मलते**
**फूल ही फूल ज़िंदगी बहार है**
**तय कर लिया आ आ आ...**
**आज फिर जीने की तमन्ना है**

मेरे प्रिय कवि शैलेन्द्र ने ''आज फिर जीने की तमन्ना है, आज फिर मरने का इरादा है'', गाईड फिल्म के इस गीत में एक स्त्री की मुक्ति की आकांक्षा और उसके सपनों की उन्मुक्त उड़ान का अप्रतिम वर्णन किया है। हिंदी सिनेमा में शायद स्त्री की मुक्ति और उसकी स्वतन्त्रचेता अभिव्यक्ति के लिए गाईड फिल्म के इस गीत के अलावा शायद दूसरा कोई इतना स्तरीय गीत आज तक रचा ही नहीं गया है। शैलेन्द्र के लिखे सदाबहार कालजयी गीत में जितने संकेत भरे है, उससे कहीं ज्यादा खुद के जीवन में इस गीत की अर्थ व्याप्ति को लता जी ने कई स्तरों पर साकार व जीवंत किया है। सचिन दा के संगीत का जादू गीत को और अधिक मनमोहक बनाने में कामयाब हुआ है।

यह सुनकर हैरानी होती है कि देव साहब ने शैलेन्द्र के इस अमर गीत को शुरू में अस्वीकृत कर दिया था। वहीदा रहमान ने लता जी पर अपने एक संस्मरण में (लता मंगेशकर पर नसरीन मुन्नी कबीर की एक पुस्तक) इस बात का उल्लेख किया है। ''काँटो से खींच के यह आँचल'' गीत देव साहब को रास नहीं आया लेकिन वहीदा जी और फिल्म के निर्देशक विजय आनंद इस गीत को फिल्म में शामिल करने पर जोर दे रहे थे। आखिरकार देव साहब आधे अधूरे मन से इस गीत

को शूट करने के लिए राजी हुए। गीत फिल्मांकन का काम लगभग 4-5 दिन में पूरा हुआ। रोज शाम को होटल पहुँचकर यूनिट के सभी सदस्य– 'कांटों से खींच के यह आँचल'' गा-गुनगुना रहे होते और आखिरकार देव साहब पर भी इस गीत का जादू चला और उन्होंने स्वीकार किया कि यह गीत बहुत अच्छा है।

'पिया तोसे नैना लागे रे' गाईड फिल्म के ही इस गीत में शैलेन्द्र का एक नया रूप हमारे सामने आता है। नृत्य गीतों के तरन्नुम को अपने विशिष्ट अंदाज़ में बयाँ करने वाली शब्दावली को शैलेन्द्र ने भी पूरी कोमलता के साथ उभारा है। लगता ही नहीं कि इतने सरस प्रेम पगे गीत को लिखने वाला कोई कॉमरेड हो सकता है। चारों ही अंतरों के अंत में शैलेन्द्र द्वारा शब्दों से धुन के बोल बनाने का प्रयोग भी इस गीत को विशिष्ट बनाता है। जैसे दीवाली वाले अंतरे के अंत में 'आ सजन पायल पुकारे झनक झन-झन झनक झन-झन', दूसरे अंतरे के अंत में 'जाने क्यूँ बज उठे कंगना छनक छन-छन छनक छन-छन', होली वाले अंतरे में 'तन बदन मोरा काँपे थर-थर धिनक धिन-धिन धिनक धिन-धिन' तथा अंतिम अंतरे में 'चमकना उस रात को जब मिलेंगे तन-मन मिलेंगे तन-मन' का आना धुन और गायिकी को आपस में ऐसी सुगंध के साथ गूँधता है, जैसे किसी नर्तकी की वेणी में करीने से सजाई गई फूलों की मनोहारी पंखुरियाँ हों।

इन्कलाब का गीत गाने वाले शैलेन्द्र का एक पक्ष वह था, जो उनकी कविता की विचारधारा से निर्धारित न होकर सीधे उनके दिल से निकलता था। एक ऐसा हरदिल अजीज़ गीतकार जो अपनी संवेदना की लय से जीवन के उदास लम्हों को कल्पना के पंख देता था। कहने का मतलब इतना भर है कि अपनी सारी प्रगतिशील चेतना के बावजूद वे एक ऐसे महत्त्वपूर्ण कवि भी थे, जिनके यहाँ स्मृतियों, मानवीय रिश्तों, प्रेम संबंधों एवं पारस्परिक जुड़ाव को अत्यंत हार्दिकता के साथ बरता गया है। जाहिर है, ऐसी कविताओं या फिल्मी गीतों के माध्यम से हम उस शैलेन्द्र की तस्वीर नहीं बना रहे, जो मिजाज से जनवादी था, मगर यहाँ इतना जरूर है कि ऐसे गीतों की दुनिया रचने वाले गीतकार की भावुकता को आँके बगैर भी हम उस प्रगतिशील शैलेन्द्र को पूरी तरह समझ नहीं सकते, जिसने अपने विचार का रंग हिंदी सिनेमा की दुनिया में पूरी गहराई के साथ बिखेरा हुआ है।

शैलेन्द्र पर विचार करते समय हमें इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि उनसे पहले हिन्दी सिनेमा में जो गीतकार मौजूद थे, उनमें साहिर लुधियानवी, जां निसार अख़्तर और कैफी आज़मी को छोड़कर बाकी रचनाकारों की रचनाएँ बाकायदा सुंदर और लोकप्रिय होने के बावजूद किसी वाद, मत या विचारधारा का सीधे-सीधे प्रतिनिधित्व नहीं करती थीं। यदि हम एक सरसरी निगाह उनके फिल्मों में आगमन से पूर्व एवं समकालीन परिदृश्य पर डालें तो पाएँगे कि डी.एन. मधोक, शकील बदायूँनी, मजरूह सुलतानपुरी, सरस्वती कुमार दीपक, राजेन्द्र कृष्ण, राजा मेंहदी अली खाँ, हसरत जयपुरी, भरत व्यास, प्रेम धवन, वर्मा मलिक एवं इन्दीवर जैसे गीतकार अपनी सारी उत्कृष्टता के बावजूद शैलेन्द्र या साहिर जैसे गीत नहीं लिख रहे थे। और यह एक दुर्लभ संयोग ही कहा जायेगा कि जनवादी चेतना के प्रति पूरा आदर रखने के साथ-साथ शैलेन्द्र, साहिर या कैफ़ी आज़मी ने कुछ बेहद उन्मुक्त और प्रणय गीतों की भी रचना की है, जो इस बात की ओर इशारा करती है कि उनके सरोकार भीतर से मर्मस्पर्शी थे। मुझे उनमें जो सबसे बड़ी खासियत नज़र आती है, वह यही है कि अपनी जनप्रतिबद्ध रचनाओं से अलग वे हर स्थिति में एक ऐसे गीतकार थे, जिसकी पहली शर्त–मत या विचारधारा नहीं, बल्कि फिल्म के कथानक से मेल खाता हुआ कथ्य का मार्मिक बखान होती थी। यह बात थोड़ी अचरज भरी लग सकती है कि उन जैसे वैचारिक शायर से हम आत्मीय या मार्मिक परिदृश्य वाले गीतों की उम्मीद क्यों करते हैं या किसलिए करते हैं? पर इतना तय है कि शैलेन्द्र का गीतकार व्यक्तित्व दरअसल ऐसी ही धूप-छाँही गीतों में अपना निखार पाता था।

यह जानना दिलचस्प है कि **'आवारा हूँ या गर्दिश में हूँ आसमान का तारा हूँ'** (आवारा) एवं **'दिल का हाल सुने दिलवाला, सीधी सी बात न मिर्च मसाला (श्री 420**) जैसे यथार्थपरक गाने लिखने वाला गीतकार उसी समय **'नौ बहार'** जैसी फिल्म के लिए एक ठुमरीनुमा अद्‌भुत गीत लिखता है, जिसके बोल हैं– **'कजरारी मतवारी मदभरी दो अँखियाँ/पिया तोरी दो अँखियाँ'** और **'बसन्त बहार'** के लिये उस फिल्म का उत्कृष्ट भजन **'भये भंजना वन्दना सुन हमारी'**। यह शैलेन्द्र की अपनी बड़ी खूबी है कि एक फिल्मी गीतकार होने के बावजूद उन्होंने लोक जीवन और उसके घरेलू अनुभवों से खुद को कभी अलग या

वंचित नहीं रखा। यह इप्टा का ही असर रहा होगा कि बन्दिनी जैसी फिल्म के लिए उन्होंने लोकजीवन का अनुसरण करते हुए जो गीत लिखा वह उत्तर प्रदेश की ऐसी पारंपरिक लोकधुन में था, जिसके केन्द्र में बहन और भाई का असीमित प्यार, गीत के अर्थ तक आते—आते एक सामाजिक जवाबदेही बन जाता है। गीत की पंक्तियाँ देखने लायक हैं—

**अबके बरस भेज भईया को बाबुल/सावन में लीजो बुलाय रे/लौटेंगी जब मेरे बचपन की सखियाँ/दीजो सन्देसा भिजाय रे/बैरन जवानी ने छीने खिलौने और मेरी गुड़िया चुराई/बाबुल थी मैं तेरे नाजों की पाली/फिर क्यों हुई मैं पराई/बीते रे जुग कोई चिठिया न पाती/न कोई नइहर से आय रे...।**
मुझे लगता है कि मानवीय संबंधों को लेकर हिंदी फिल्मेतिहास में जितने मर्मस्पर्शी गीत लिखे गये हैं, उसमें बन्दिनी फिल्म का यह गाना बिल्कुल अलग से रेखांकित किये जाने योग्य है। जवानी के रूपक में खिलौने और गुड़ियों के खोने, लुप्त होने और जीवन परिदृश्य से बाहर निकल जाने का जो बिम्ब शैलेन्द्र ने यहाँ बाँधा है वह कई परतों में अपनी अर्थ व्याप्ति को व्यंजित करता है। यह शैलेन्द्र के ही बस की बात थी कि वे आत्मीयता और करुणा का भाव रचते समय समाज और जीवन को अपने निजी मुहावरे की जद में आसानी से ले जाते थे। उस समय फिर यह अलगा पाना मुश्किल हो जाता था कि वह लोक जीवन से जुड़े हुए एक ऐसे कवि हैं, जो रिश्तों की हरारत को सर्वोपरि मानता है या कि वह उस समय ऐसे चिन्तक शायर है, जिसकी कलम में समाज, राजनीति, विचार, धर्म, दर्शन सभी चीजें नयी-नयी छवियों के साथ, अपना बाँकपन निर्मित करती हैं।

राजकपूर के साथ शैलेन्द्र का रिश्ता बेहद महत्त्वपूर्ण माना जाता है। एक हद तक यह सही भी है कि शैलेन्द्र बनने की प्रक्रिया आर.के. बैनर की फिल्मों के साथ ही अपना मुकम्मल चेहरा गढ़ती है। फिर भी यह उनके अपने कलम की रौशनाई ही है, जो तमाम सारे प्रसंगों में अद्‌भुत ढंग की कविता सृजित करती है। कुछ फिल्मी गीतों को यदि उनके परिदृश्य और पटकथाओं से अलग हटाकर पढ़ा जाये, तो यह बात आसानी से समझ में आती है कि वह गीत आला दर्जे की साहित्यिक हैसियत रखते हैं। शैलेन्द्र के बरअक्स साहिर लुधियानवी और कैफी आजमी के जनवादी गीतों और गजलों को इन्हीं संदर्भों में रखकर पढ़ना इस अर्थ में भी ज्यादा समीचीन

होगा। मेरी निगाह में शैलेन्द्र के कुछ ऐसे अमर गीत हैं, जिन पर अलग से विमर्श की जरूरत है। यह ढेरों गीत अपनी साहित्यिकता के अलावा बिम्ब विधान, सादृश्य, रूपकों एवं कथ्य में अनुपम हैं। उदाहरण के लिए कुछ गीतों को यहाँ इन्हीं संदर्भों में याद किया जा सकता है। मसलन– **'वहाँ कौन है तेरा मुसाफिर जायेगा कहाँ (गाईड), 'रूला के गया सपना मेरा/बैठी हूँ कब हो सवेरा (ज्वैलथीफ), 'मिल जुल के काटो लोगों दुख सुख बाँटो रे' (आगोश), 'नन्हे मुन्ने बच्चे तेरी मुट्ठी में क्या है' (बूट पॉलिश), 'धरती कहे पुकार के/बीज बिछा ले प्यार के/मौसम बीता जाए' (दो बीघा ज़मीन), 'मिट्टी से खेलते हो बार बार किसलिए' (पतिता), 'घायल हिरणिया मैं बन बन डोलूँ/किसका लगा बान' (मुनीम जी), 'बोल री कठपुतली डोरी कौन संग बाँधी' (कठपुतली) एवं 'जागो मोहन प्यारे' (जागते रहो)** आदि।

शैलेन्द्र जिस एक बात के लिये अलग से रेखांकित किये जाने वाले गीतकार हैं, वह यह कि उन्होंने अपनी राजनीतिक प्रतिबद्धता को कई बार परे हटाकर कुछ बेहद श्रुति मधुर गीतों का सृजन किया, जिनमें से अधिकांश गीत शास्त्रीय नृत्य, लोकनृत्य एवं ऋतु संबंधी अवसरों पर दृश्यांकित किये गये। इस नृत्य गीतों में भाषा और कथ्य की रवानी अपने उत्कर्ष पर है, साथ ही पूरी फिल्म दृश्यावली को अपने साहित्यिक मानदंडों के तहत अतिरिक्त सौंदर्य बरतने वाली। जैसे– **'पटरानी'** का यह गीत **'जा मैं तोसे नाही बोलूँ कन्हैया'**, जो शास्त्रीयता की सारी शर्तों को पूरी करने के साथ लता मंगेशकर एवं मन्ना डे के स्वरों में एक अद्‌भुत युगल गीत बन पड़ा है। **'कठपुतली', 'छोटी बहन', 'गाईड, 'बन्दिनी', 'संगम', 'आवारा'** एवं **'लव मैरिज'** जैसी फिल्मों के लिये जाने जाते हैं। मगर इस बात से कौन इनकार करेगा कि यह **'इंसान जाग उठा'** जैसी ही फिल्म है, जिसमें आशा भोसले और गीता दत्त का गाया हुआ अमर गीत **'जानूँ जानूँ री काहे खनके है तोरा कंगना'** जैसा गाना शैलेन्द्र की कलम पाकर ही जीवन्त हुआ है।

शैलेन्द्र के लिये किस्सा कोताह यह कि उन्होंने अपने कवि व्यक्तित्व को सदैव ऊपर रखते हुए भारतीय फिल्म संगीत को अद्‌भुत रंग मुहैया कराया है। वे एक ही समय में इतने प्रखर चिन्तक और सलोने कवि ठहरते हैं कि जहाँ एक ओर

**'मुड़ मुड़ के न देख मुड़ मुड़ के (श्री 420)** जैसा गीत लिखते हैं, तो दूसरी ओर **'ठंडी ठंडी सावन की फुहार पिया आज खिड़की खुली मत छोड़ो' (जागते रहो)** जैसा गीत लिख सकते हैं। मनुष्य के अवसाद, आत्मदया और आत्मग्लानि को भी गर्व और उत्साह के स्तर पर व्याख्यायित करने वाले प्रगतिशीलों में शैलेन्द्र का नाम शायद सबसे ऊपर ही लिया जाएगा। वे बेवजह नहीं कहते– **'गर्दिश में हूँ/आसमान का तारा हूँ।** गर्दिश और मुफलिसी में भी बुलंदी का हौसला रखने की जद्दोजहद एक क्रांतिकारी सोच के व्यक्ति द्वारा ही सम्भव है। यह अकारण नहीं कि शैलेन्द्र इसीलिए जिजीविषा और प्रेम के गीत लिखते समय सबसे सबल रचनाकार बनकर उभरते हैं। उनके यहाँ बेचैनी और सब कुछ गवाँ देने की स्थिति भी इसी वजह से पूरे वैभव के साथ बार-बार दर्ज होती रहती है।

यह हम जैसे नये कवियों और लिखने-पढ़ने वालों का सौभाग्य है कि उनके द्वारा रची हुई गीतों की विशाल थाती के बारे में उनकी प्रासंगिकता के चलते आज अपने-अपने ढंग से पुनर्पाठ कर पा रहे हैं। और जब लिखने और सोचने का सिलसिला हाथ लगता है, तो दिमाग में जाने कितने ऐसे गीतों की तरफ चला जाता है, जिसमें जिंदगी का फलसफा रेशा–रेशा दर्ज हुआ है। आप चाहें भी तो उनके जादू से अपने को ज्यादा देर तक दूर नहीं रख सकते।

लता जी 'मधुमती' के गीत 'आ जा रे परदेसी मैं तो कब से खड़ी इस पार' का जिक्र करते हुए इस बात का उल्लेख करना नहीं भूलतीं कि 'वे' सहज ही कविता में बड़ी-बड़ी बातें कह देते हैं। अब देखिए, जैसी इसी गीत में वे कह रहे हैं– 'मैं नदिया फिर भी मैं प्यासी, भेद ये गहरा बात जरा सी'। यह कितनी बड़ी बात है, जो शैलेन्द्र जी के देखने में आई है। उसको इतने सरल ढंग से कहना भी उनके बस की बात थी। मैंने हमेशा यह पाया है कि उनके गाने जब मैं गाती हूँ, तो जिंदगी का दर्शन किसी न किसी अंतरे में जरूर मौजूद रहता है। इसलिए उसे गाते हुए एक अलग ही आनंद और सुकून का एहसास भी होता है।'

लता जी कहती हैं– ''मैंने विदेशी कविताएँ नहीं पढ़ी हैं। वह कुछ व्यस्तता के कारण भी और कुछ उस दौर में जानकारी के अभाव के चलते भी हुआ होगा, क्योंकि ऐसा कोई मित्र साथ में नहीं था, जो मुझे विदेशी भाषा के उत्कृष्ट कवियों की कविता पढ़ने के लिए देता या प्रेरित करता। अलबत्ता मैंने रूस के महान कवि

पुश्किन को थोड़ा पढ़ा है और अधिकतर उनकी कविताएँ सुनी हैं। वो ऐसे कि अकसर रेकॉर्डिंग और रिहर्सल के दौरान शैलेन्द्र जी पुश्किन को पढ़ते रहते थे। मुझे पढ़कर अकसर वे उन्हें सुनाते थे और उनकी कविता का मर्म समझाते थे। वे विचारधारा से कम्युनिस्ट थे, लेकिन कविता को समझाने के लिए कभी भी उन्होंने अपनी विचारधारा को सुनने वाले पर जबरन नहीं थोपा। मुझे बड़ा मजा आता था, जब वे पुश्किन की कविताएँ सुनाते हुए बताते थे कि इस कवि ने ऐसा लिखा है और उसका अर्थ यह होता है। यह सब मैं सुनती थी, तो मुझे कविता में कुछ नया भी लगता था। इसके अलावा अगर मैंने कुछ विदेशी कविता और भी सुनी होगी, तो वह शर्तिया शैलेन्द्र जी के मुँह से ही सुनी होगी। वे कुछ बड़े विचारकों और नाज़िम हिकमत आदि का भी नाम लेते थे, जो उस समय मैंने बहुत चलते फिरते ढंग से सुना होगा।''

शैलेन्द्र के गीतों में विविधता और व्यापकता की रेंज बहुत बड़ी है। एक तरफ प्रणय के स्नेहिल गीत रचकर वह अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाते हैं, दूसरी ओर इन्कलाब की आवाज़ को बुलंद करके प्रगतिशील चेतना के प्रखर कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं। सदाबहार साहित्यिक गीतों के रचयिता शैलेन्द्र का महत्त्व काल प्रवाह के साथ बढ़ता ही जाएगा।

# जनकवि शैलेन्द्र

*–बल्ली सिंह चीमा*

हमारे देश में जनगीत गाये जाने का रिवाज हमेशा रहा है और आज भी है। जनगीत जनता में जोश भर देते हैं। लक्ष्य को पाने की चाहत और इरादों को मजबूती इन गीतों से मिलती है। लक्ष्य तक पहुँचने के लिए मर मिटने की भावना को ताकत इन जनगीतों से मिलती है। जन आंदोलन में निम्नलिखित तीन गीत सर्वाधिक गाये जाते हैं-

1. **'हम मेहनतकश जगवालों से जब अपना हिस्सा माँगेंगे, इक खेत नहीं इक देश नहीं हम सारी दुनिया माँगेंगे' (फ़ैज)।**

2. **'तू ज़िंदा है तो जिंदगी की जीत में यकीन कर, अगर कहीं है स्वर्ग तो उतार ला ज़मीन पर' (शैलेन्द्र)।**

3. **ले मशालें चल पड़े हैं लोग मेरे गाँव के, अब अंधेरा जीत लेंगे लोग मेरे गाँव के' (बल्ली सिंह चीमा)।**

यदि किसी आंदोलन में इन तीन गीतों में से किसी एक गीत को गाने के लिए मुझे कहा जाये तो मैं शैलेन्द्र के गीत 'तू ज़िंदा है तो जिंदगी की जीत' को चुनुंगा। यह गीत जहाँ दुनिया को सभ्य, सुंदर और शोषण मुक्त बनाकर ज़मीन पर स्वर्ग उतार लाने की बात करता है, वहीं 'अगर' शब्द से भगवान, परलोक और पुनर्जन्म की सच्चाई को नकारता है। इसीलिए शैलेन्द्र धरती को स्वर्ग बनाने की प्रेरणा देते हैं। उनका एक और प्रसिद्ध गीत है जो वामपंथी आंदोलनों में बहुत गाया जाता है-

**'क्रांति के लिए जली मशाल!**<br>
**भूख के विरुद्ध भात के लिए,**<br>
**रात के विरुद्ध प्रात के लिए,**<br>
**मेहनती गरीब जात के लिए,**<br>
**हम लड़ेंगे, हमने ली कसम!**<br>
**छिन रही हैं आदमी की रोटियाँ,**<br>
**बिक रही हैं आदमी की बोटियाँ,**<br>
**किन्तु सेठ भर रहे हैं कोठियाँ,**<br>
**लूट का राज हो ख़तम!'**

मेहनती गरीब जात के लिए लड़ने की कसम लेने वाले शैलेन्द्र की काव्य-भाषा अत्यंत सहज, सरल और बोधगम्य है। उनके जनगीत वंचित वर्ग के सुख दुख की कहानी बयां करते हैं। जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टि, गहरी आस्था, और जिन्दगी की जीत पर उनका अटूट विश्वास ही उन्हें उनके काव्य को बड़ा बनाता है। फिल्मों में जाने से पूर्व ही वह जनकवि के रूप में स्थापित हो चुके थे। फिल्म जगत में रहकर भी उन्होंने कविता की धार को कुंद नहीं होने दिया। शैलेन्द्र को रूमानी गीतकार कहना उनके साथ अन्याय करना है। उनका जनोन्मुख काव्य प्रगतिशील साहित्यिक मूल्यों पर खरा उतरता है। उन्होंने जनपक्षधरता का दामन कभी नहीं छोड़ा। उन्होंने जनता का शोषण करने वाली शक्तियों को अपनी कविताओं में बेनकाब ही नहीं किया बल्कि उसका विरोध भी किया। वह सही मायने में प्रतिबद्ध कवि थे। उन्होंने बुद्धिजीवियों को भी आड़े हाथों लेते हुए लिखा- 'कुछ लोग जो ज्यादा जानते हैं, इंसान को कम पहचानते हैं।'

बाबा नागार्जुन ने मुझे एक बार कहा था कि "बल्ली सिंह, अपनी कविताओं में सरलता के साथ गहराई पैदा करने की कोशिश किया करो।" मैंने उनके इस गुरुमंत्र और सीख को अपना लिया। अपनी रचनाओं में इसे आजमाया। इसी का प्रभाव है कि मेरी गज़लें और गीत जनता में बहुत लोकप्रिय हुए। मेरी कोशिश रही है कि सरल शब्दों में ऊंची और गहरी बात जनता तक पहुँचाऊँ। कविता या गीत को लिखते समय सामाजिक यथार्थ पर जरूर ध्यान दिया जाना चाहिए। शैलेन्द्र की कविताएँ सरलता, उद्दात विचार, जीवन का फलसफा और सामाजिक यथार्थ के मानकों पर खरी उतरती हैं। रेणु जी की कहानी- 'मारे गये गुलफाम उर्फ़ तीसरी कसम' पर उन्होंने बहुत ही बेहतरीन काबिले तारीफ फिल्म बनाई। फिल्म की आत्मा पर उन्होंने आँच नहीं आने दी। बॉक्स ऑफिस के फॉर्मूलों के आगे उन्होंने घुटने नहीं टेके। जनकवि नागार्जुन ने शैलेन्द्र की इन्हीं खूबियों से प्रभावित होकर उन्हें अपनी श्रद्धांजलि इन शब्दों द्वारा दी- **'गीतों के जादूगर का मैं छन्दों से तर्पण करता हूँ,/ सच बतलाऊँ तुम प्रतिभा के ज्योति पुत्र थे छाया क्या थी/भली-भांति देखा था मैंने दिल ही दिल थे काया क्या थी/जनमन जब हुलसित होता था, वह थिरकन भी पढ़ते थे तुम/साथी थे मजूदर पुत्र थे, झंडा लेकर बढ़ते थे तुम।'**

# ताऊ जी कहानी, पिताजी की ज़बानी

*–डॉ० संदीप भगत*

मेरे पिता श्री प्रह्लाद भगत पांच भाई थे। पिता जी के सबसे बड़े भाई श्री बी.डी. राव थे। दूसरे नम्बर पर शैलेन्द्र ताऊ जी थे। तीसरे नम्बर के ताऊ जी श्री पुरुषोत्तम दास थे। मेरे पिता अपनी माता-पिता की चौथी संतान थे। पिता जी के सबसे छोटे भाई कैलाश चन्द्र मेरे चाचा जी थे। आज पांचो भाइयों में कोई भी जीवित नहीं है। यह संयोग ही था कि पांचों भाई रेलवे में नौकरी करते थे। मेरे पिताजी रेलवे में मालगाड़ी ट्रेन के गार्ड भर्ती हुए थे। 1988 में वह मेल/एक्सप्रेस ट्रेन के गार्ड पद से सेवानिवृत्त हुए।

देश के महानतम गीतकार शैलेन्द्र जी का जब 1966 में निधन हुआ तो मैं लगभग एक साल का था इसलिए शैलेन्द्र जी से मेरा मिलना नहीं हो सका। लेकिन कालजयी गीतों के अमर रचनाकार अपने गीतों के माध्यम से गीत-संगीत रसिकों के दिल में आज भी जिंदा है। जब तक चाँद-तारे रहेंगे तब तक शैलेन्द्र जी के गीत भी लोगों की जबान पर रहेंगे। ''आवारा हूँ'', ''रमैय्या वस्तावैया... मैंने दिल तुझको दिया'', ''सजन रे झूठ मत बोलो खुदा के पास जाना है'', ''मेरा जूता है जापानी'' 'तू प्यार का सागर है', 'सब कुछ सीखा हमने' आदि गाने मुझे बहुत पसंद है।

शैलेन्द्र जी 14 दिसम्बर 1966 को इस फ़ानी दुनिया को अलविदा कह गये। जब मैं किशोरावस्था में पहुँचा तो पिताजी की ज़बानी शैलेन्द्र ताऊ जी की कहानी मुझे पता चली। उनके मधुर, कर्णप्रिय, अर्थपूर्ण, सदाबहार गीतों को सुनकर मुझे और मेरे पिताजी को बहुत गर्व महसूस होता था। मेरे पिताजी ने बताया कि शैलेन्द्र ताऊ जी को बचपन से ही कविता लिखने सुनाने का शौक था हालांकि हमारे दादा जी श्री केशरीलाल जी को उनका कविता– गीत से प्रेम बहुत नहीं भाता था। मुम्बई में रेलवे की नौकरी के दौरान उनका कविता पाठ सुनकर राजकपूर बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने शैलेन्द्र जी को अपनी पहली फिल्म 'आग' में गीत लिखने का न्यौता दिया, जिसे उन्होंने अस्वीकार कर दिया लेकिन जब ताई जी गर्भवती हुई तो ताऊ जी को मामूली वेतन के कारण उन्हें राज साहब का निमंत्रण स्वीकार करना पड़ा। इसके तीन फायदे हुए। राजकपूर जी को उनका मनचाहा

गीतकार मिल गया जो उनकी सोच के अनुसार आम-आदमी के दिलों तक पहुँचने वाले गाने लिख सकेगा। शैलेन्द्र ताऊ जी को भी राजकपूर जैसा जोहरी और दोस्त मिला जिन्होंने शैलेन्द्र जी की टैलेन्ट का भरपूर इस्तेमाल करके उन्हें स्टार गीतकार बनाया। तीसरा सबसे बड़ा लाभ देश की जनता को मिला, जिन्हें 'आवारा', 'श्री 420', 'जागते रहो' 'जिस देश में गंगा बहती है' 'अनाड़ी' 'संगम' 'मेरा नाम जोकर' 'तीसरी कसम' जैसी बेहतरीन फिल्मों में राज साहब के दिल को छू लेने वाला अभिनय देखने को मिला और सामाजिक सरोकार प्रधान, सदाबहार मधुर गीत लोगों को सुनने को मिले।

''सब कुछ सीखा हमने न सीखी होशियारी सच है दुनिया वालो कि हम हैं अनाड़ी'' गीत पर कौन सा भारतीय है जो फिदा न हो। 'सजन रे झूठ मत बोलो' गीत के द्वारा व्यक्ति को सरल जीवन सच्चा जीवन बिताने का अमर संदेश देते हैं। उन्होंने फिल्म 'दो बीघा जमीन' में एक बहुत ही प्रेरणा देने वाला गीत रचा– ''धरती कहे पुकार के, बीज बिछा ले प्यार के, मौसम बीता जाये।'' उन्होंने सरल शब्दों में कितनी बड़ी बात कही है। उनके अधिकांश गीतों में दर्शन है, जिंदगी का फलसफ़ा है प्रकृति के साथ और इन्सानों के साथ प्रेम करने का संदेश है।

22 फरवरी 1951 को शैलेन्द्र ताऊ जी ने मेरे पिताजी को एक प्रेरक पत्र लिखा उसकी कुछ पंक्तिया मैं उद्धृत कर रहा हूँ

भगत भैया,

तुम्हें बहुत-बहुत प्यार। 2 फरवरी की चिट्ठी आज एक दोस्त ने लाकर दी। तुमने पुराने पते पर भेजी थी। अब या तो उपरी पते पर लिखना या C/O R.K. Films, Haines Road Mahaluxmi, Bombay के पते पर लिखते बराबर रहना। हफ्ते में एक या कम से कम पन्द्रह दिन में एक बार जरूर भेजा करना, तुम वहाँ अकेले हो इसलिए फिक्र रहती है। अकेले रहने में आदमी कभी-कभी Home sick महसूस करने लगता है, मेरा तो ऐसा ही अनुभव है, इसलिए चिट्ठी से सम्पर्क और नजदीकी महसूस होती है, जी लगता है तो कामधाम और जिंदगी भी अच्छी गुजरती है। तुमने अपनी चिट्ठी में लिखा है कि बाज़ दफ़ा ऐसी परेशानियाँ रहती हैं कि उनकी उलझन में पड़े रहते हो... उलझने तो बड़ी चीजें हैं पर धीरे-धीरे आदत से

हर उलझन सुलझाने की कूवत तुममें आ जायेगी, हाँ कोई भी बात हो बेहद परेशान या बदहवास मत होना, ऐसे मौकों पर दिल और दिमाग ठिकाने पर रख कर सोच समझ कर कदम उठाने की आदत डालो, मैं बड़े भाई होने के कारण तुम्हें लैक्चर नहीं दूँगा, मैं तो अनुभव के बल पर सीखी हुई चीज अपने छोटे साथी और नजदीकी दोस्त को बता रहा हूँ क्योंकि तुमने भी मुझसे कम अनुभव नहीं किया है, जिन कठिनाइयों और तकलीफों से हम गुज़रे है उन्होंने हमें बेहद पक्का बना दिया है।

दोस्ती हमेशा अच्छी होती है, ज्यादा से ज्यादा लोगों से मुहब्बत मेल रखना ही बुद्धिमानी है............... इन्द्र बहादुर भी वहीं किसी विद्यालय में लेक्चरार है, मेरा पता मालूम करके उसने 11 साल बाद चिट्ठी लिखकर खुशी जाहिर की है कि मथुरा का शंकर ही शंकर शैलेन्द्र है जिसका जिक्र प्रेमचंद के पुत्र अमृतराय ने किसी लेक्चर के दौरान में वहाँ किया था, मैं उसे भी चिट्ठी लिखूंगा वह तुमसे मिलेगा। बस, अपनी खबर देना, किसी चीज की या पैसों की दिक्कत हो तो लिखना, शर्माना मत!

तुम्हारा भाई

शंकर शैलेन्द्र

चार पृष्ठ का यह पत्र पिताजी ने संभालकर रखा था जो आज मेरे पास सुरक्षित है। मैं भी मराठी और हिंदी फिल्मों में गीत लिखने की कोशिश कर रहा हूँ। शैलेन्द्र ताऊ जी के बारे में उनकी प्रतिभा, उनके संघर्ष के बारे में मेरे पिताजी कई बार मुझे बताते थे। गीतकार शैलेन्द्र मेरे ताऊ जी हैं, यह सोचकर मैं हमेशा स्वयं को भाग्यशाली मानता हूँ, गौरवान्वित महसूस करता हूँ।

---

('फिल्म जगत के अंतरंग संस्मरण'- किशन शर्मा पुस्तक से साभार)

# गीतकार शैलेन्द्र : कि मरके भी याद आयेंगे

*– सदानन्द सुमन*

कहते हैं, वक्त गहरे से गहरे घाव को भी भर देता है, लेकिन यह बात हमेशा गणित के नियम की तरह सच नहीं होती। कुछ घाव ऐसे होते हैं, जो दिन-ब-दिन और गहरे होकर बेतरह रिसने लगते हैं और कुछ की तो टीस आजीवन बनी रहती है। गीतकार शंकर शैलेन्द्र की याद भी हर सिने प्रेमियों के दिल पर कुछ ऐसी ही टीस छोड़ जाती है। शैलेन्द्र का निधन हुए आधी सदी से भी अधिक समय हो गया, लेकिन उनके कालजयी अर्थपूर्ण सदाबहार गीत आज भी रेडियो पर बजते रहते हैं, जो सुनने वालों को सुकून से भर देता है।

आज फिल्मी गीतों की जो स्थिति है, उसे देखते हुए उनकी याद और भी सताती है। आज के कर्णकटु फिल्मी गीतों के बीच रेडियो पर उनके इक्के-दुक्के गीत आज भी सुनाई पड़ते हैं, तब यह अंतर आसानी से समझ में आता है। शैलेन्द्र बेमिसाल थे, यह बात जोर देकर कही जा सकती है, क्योंकि उनके लिखे सरस, सुन्दर और लालित्यपूर्ण गीतों की कोई तुलना नहीं है। सहज, सरल शब्दों में बड़ी से बड़ी बात को जिस सहजता से वे कह जाते थे, यह उन्हीं की खासियत थी। यही कारण है कि उनके गीतों को हर स्तर के श्रोताओं से उन्हें मान-सम्मान मिला। यह अकारण नहीं है, सच तो यह है कि उन्होंने जो भी लिखा, स्तरीय लिखा। पैसे के लिए कभी अपनी आत्मा नहीं बेची, उलजलूल लेखन से कभी समझौता नहीं किया। बकौल राज कपूर, "अगर वह पैसों के लिए लिखता तो बम्बई में उनकी कई आलीशान बिल्डिंगें खड़ी होतीं, क्योंकि फिल्मी दुनिया की भेड़चाल में यह आम नियम है कि सफल व्यक्तियों के पीछे भीड़ जुटती ही है और प्राय: लोग ऐसे मौकों का फायदा भी उठाते हैं, पर उन्होंने ऐसा नहीं किया।" यह बात उनकी ईमानदार लेखन की ठोस गवाही है।

शैलेन्द्र का फिल्मों में प्रवेश राज कपूर के आग्रह पर फिल्म 'बरसात (1949)' से हुआ था और तब से लेकर जब तक वे जीवित रहे, उनकी फिल्मों के लिए गीत लिखते रहे। 'बरसात' संगीत की दृष्टि से सफल फिल्म साबित हुई ही, बॉक्स ऑफिस पर भी काफी सफल रही। इस फिल्म की खास बात यह थी कि इसके संगीतकार शंकर-जयकिशन और दूसरे गीतकार हसरत जयपुरी भी बिल्कुल नए थे।

उनकी भी यह पहली फिल्म थी। इस फिल्म की सफलता के बाद संगीतकार शंकर-जयकिशन और गीतकार शैलेन्द्र-हसरत एक टीम के रूप में काम करने लगे। आर०के० की फिल्मों के लिए यह टीम तो स्थायी ही हो गई। 'बरसात' के बाद राज कपूर की जो फिल्म प्रदर्शित हुई थी, वह थी 'आवारा'। यह एक अद्वितीय फिल्म थी। यूँ तो इस फिल्म के सभी गीत हिट हुए, पर शैलेन्द्र रचित शीर्षक गीत 'आवारा हूँ या गर्दिश में हूँ, आसमान का तारा हूँ...।' न सिर्फ देश बल्कि विदेशों में भी-खासकर रूस में काफी लोकप्रिय हुआ। रूस में राज कपूर की लोकप्रियता का एक कारण यह गीत भी है।

और फिर तो शुरू हुआ सफलताओं का एक नया दौर। अब इस टीम की माँग बढ़ने लगी। आर०के० के अतिरिक्त बाहर की फिल्मों में भी ढेरों काम मिलने लगा। शैलेन्द्र अभी तक रेलवे की नौकरी में ही थे। फिल्मों में व्यस्तता बढ़ने के कारण नौकरी छोड़ दी और पूर्ण रूप से गीत लेखन में सक्रिय हो गए। वैसे, फिल्मों में आने से पूर्व उनकी कविताएँ देश की प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में छपने लगी थी। 'इप्टा' के वे सक्रिय सदस्य थे तथा उसके कार्यक्रमों में दिल खोलकर हिस्सा लेते थे। राज कपूर से उनका प्रथम परिचय भी इप्टा द्वारा आयोजित एक कवि सम्मेलन में ही हुआ था। उन दिनों देश में सांप्रदायिक माहौल बिगड़ा हुआ था। हिंदुस्तान का दो टुकड़ों में विभाजित होना निश्चित हो चुका था। यह सब देखकर शैलेन्द्र का भावुक कवि मन दुखी था। इसी की अभिव्यक्ति उनके उस गीत में थी, जो कवि सम्मेलन के उस मंच पर उन्होंने सुनाया था, जिससे प्रभावित होकर राज कपूर उनसे मिले थे। वह गीत था 'जलता है पंजाब साथियों, जलता है पंजाब...!'

वस्तुत: शैलेन्द्र के अंदर एक आग थी, जो धधक रही थी। देश की कुव्यवस्था, गरीबी, असमानता, अशिक्षा आदि के विरुद्ध उनकी कलम हर संवेदनशील रचनाकार की तरह संघर्ष कर रही थी। कुछ आलोचकों ने शैलेन्द्र पर आरोप लगाया कि शैलेन्द्र फिल्मों में जाकर वहाँ की सुविधाओं में खो गया है और अब उनकी रचनाओं में वह ओज नहीं रहा। इस आरोप का उत्तर मेरी समझ से यही हो सकता है कि सही व्यक्ति चाहे जहाँ, जिस क्षेत्र में भी रहे, वह अपना लक्ष्य कभी भूलता नहीं है। शैलेन्द्र भी अपना लक्ष्य नहीं भूले। पत्र-पत्रिकाओं में या कविता पुस्तकों के लिए नहीं लिखकर फिल्मी गीतों के माध्यम से, जो प्रचार का सबसे

सशक्त माध्यम है, अपनी बात, आदमी की बेहतरी की बात, जब भी उन्हें मौका मिला, बड़ी सफाई से कही। क्या यह कम बड़ी उपलब्धि नहीं है? उनकी फिल्मों में आने से पूर्व तक या उनके सामयिकों में भी एक-दो को छोड़कर सामाजिक चेतना जगाने वाले कितने गीतकार सक्रिय थे? शैलेन्द्र ने फिल्मी गीतों को जो आयाम दिए, उसके लिए तो फिल्म वालों और श्रोताओं को उनका कृतज्ञ होना चाहिए.

शैलेन्द्र ने सैकड़ों ऐसे अमर गीत दिए हैं, जिनसे सिर्फ हिन्दी का विकास हुआ, बल्कि वे सामाजिक चेतना जगाने में भी सहायक हुए। उदाहरण के लिए कुछ गीत देखे जा सकते हैं- 'नन्हें-मुन्हे' बच्चे तेरी मुट्ठी में क्या है (बूट पॉलिश)…, जिंदगी की इस चिता में जिंदा जल रहा हूँ हाय (आवारा).. मेरा जूता है जापानी… (श्री 420), धरती कहे पुकार के, बीज बिछा ले प्यार के मौसम बीता जाए… (दो बीघा जमीन), सबकुछ सीखा हमने ना सीखी होशियारी… (अनाड़ी), सजन रे झूठ मत बोलो, खुदा के पास जाना है… (तीसरी कसम) आज अपना हो ना हो कल हमारा है… (कल हमारा है), काँटो से खींचकर ये आँचल तोड़कर बंधन बांधी पायल… (गाईड), सुहाना सफर और ये मौसम हसीं… (मधुमती), तू प्यार का सागर है, तेरी एक बूँद के प्यासे हम… (सीमा), किसी की मुस्कुराहटों में हो निसार, किसी का दर्द मिल सके तो ले उधार, जीना इसी का नाम है… (अनाड़ी)… और भी न जाने कितने ऐसे अमरगीत हैं उनके। यह तो मात्र एक झलकी भर है। राष्ट्रीय गीतों में तो उनके इस गीत को विशिष्ट दर्जा प्राप्त है-

**'तू जिन्दा है तो जिन्दगी की जीत में यकीन कर,**

**अगर कहीं है स्वर्ग तो उतार ला जमीन पर…'**

शैलेन्द्र को हर तरह के गीत लिखने में महारत हासिल थी और कमाल यह कि कहीं अतिरेक या बहकाव नहीं। लोकगीतों पर तो उनकी पकड़ जबरदस्त थी। फिल्म चाहे जैसी भी रही हो, उनके गीत हमेशा स्तरीय बने रहे। इसकी एक वजह यह भी हो सकती है कि एक बार लिखने के बाद उसमें फेरबदल करना उन्हें पसंद नहीं था। वह अपना काम बखूबी जानते थे, इसलिए उसमें किसी का भी हस्तक्षेप उन्हें बर्दाश्त नहीं होता था। संगीतकार शंकर से एक बार (श्री 420) उनकी बहस हो गई थी। बाद में राज कपूर की मध्यस्थता से ही दोनों में सुलह हो सकी थी। शैलेन्द्र ने

अनेक सफल संगीत निर्देशकों के साथ काम किया था। इनमें शंकर-जयकिशन तो प्रमुख रहे ही, सलिल चौधरी, सचिन देव बर्मन और रोशन के साथ अनेक फिल्मों में गीत लिखे। इसके अतिरिक्त भी जिन संगीतकारों के साथ उन्होंने काम किया, उनमें से कुछ प्रमुख नाम हैं- हेमन्त कुमार, सी॰ रामचन्द्र, अनिल विश्वास, रवि, दत्ता राम, चित्रगुप्त, किशोर कुमार, पं॰ रविशंकर, राहुल देव बर्मन, सपन-जगमोहन, जयदेव, एस॰एन॰ त्रिपाठी आदि।

बहुत कम लोग जानते हैं कि शैलेन्द्र ने राज कपूर की फिल्म 'बूट पॉलिश' में अभिनय भी किया था। राज कपूर के आग्रह पर उस फिल्म में एक अंधे गायक की भूमिका निभाई थी और पर्दे पर अपना ही लिखा गीत 'चली कौन से देश गुजरिया, तू सजधज के...' गाया था। शैलेन्द्र ने हिन्दी के अतिरिक्त कई भोजपुरी फिल्मों के गीत भी लिखे थे- 'हे गंगा मैया तोहे पियरी चढ़इबो', के गीत शैलेन्द्र ने ही लिखे थे- 'हे गंगा मैया तोहे पियरी चढ़इबो, सैंया कर दे मिलनवां हो राम...', 'सोनवां के पिंजरा में बंद भइल हाय राम, चिरई के जियरा उदास...' जैसे स्तरीय और कर्णप्रिय गीत आज भी सदाबहार हैं। शैलेन्द्र ने भोजपुरी गीतों को जो उच्चता दी, दुखद है कि आज के भोजपुरी फिल्मों के अश्लील गीतों ने उसे पतन के गर्त में पहुँचा दिया।

शैलेन्द्र ने गीत लेखन के साथ-साथ फिल्म निर्माण के क्षेत्र में भी 'तीसरी कसम' के पर्दे पर साकार कर एक निर्माता के रूप में अपनी विशिष्ट छाप छोड़ी। सच पूछो तो समान्तर फिल्मों की लीक डालने वाले पहले व्यक्ति शैलेन्द्र ही थे। उनकी फिल्म 'तीसरी कसम' पहली समान्तर फिल्म थी। जिन दिनों 'तीसरी कसम' बनी, उससे पहले हिन्दी की साहित्यिक कृतियों पर बहुत कम ही फिल्में बनती थी, जो भी बनती थी, वह ठीक ढंग से नहीं। शैलेन्द्र फिल्मों में थे। उन्होंने देखा, यहाँ पैसों के लिए लोग बे सिरपैर की कहानियों पर फिल्में बनाते हैं, क्योंकि उनकी रुचि फिल्म में नहीं, बल्कि उनका उद्देश्य महज आर्थिक लाभ अर्जित करना होता है। वे जानते थे कि इस उद्देश्य से बनने वाली फिल्म किसी भी स्तर पर अच्छी तो हो ही नहीं सकती। यह बात उन्हें अखरती थी। उन्हें मौके की तलाश थी कि कोई अच्छी कहानी मिले तो वे खुद फिल्म बनाएँ। यह तलाश खत्म हुई फणीश्वरनाथ रेणु की प्रसिद्ध कहानी 'तीसरी कसम अर्थात् मारे गए गुलफ़ाम' पर।

बासु भट्टाचार्य (बाद में इस फिल्म के निर्देशक) ने मोहन राकेश द्वारा संपादित पाँच लंबी कहानियाँ में से यह कहानी पढ़ी और उसमें उन्हें फिल्म बनने की संभावना दिखी। शैलेन्द्र उनके मित्र थे। इस कहानी को उन्होंने शैलेन्द्र को भी पढ़ने को दी। कहानी पढ़ने के बाद तो शैलेन्द्र भी इसे फिल्माने के लिए लगभग दीवाने से हो गए। अन्तत: शैलेन्द्र ने निर्माण करने की योजना बना ली। 'तीसरी कसम' की शुरुआत जिस उत्साहजनक ढंग से हुई थी, उसका अंत ठीक इसके विपरीत स्थिति में हुआ। शैलेन्द्र भावुक व्यक्ति थे। फिल्म निर्माण का कार्य काफी झंझट-झमैलों वाला। इसलिए निर्माण की पेचीदगियों में उलझते चले गए। कभी कलाकारों का समय पर सहयोग नहीं मिलता। कभी पैसों का अभाव, फिल्म ओवर बजट होती गई ऐसे वे उसमें उलझते चले गए। जो फिल्म एक वर्ष में बनकर तैयार हो जानी थी, उसे बनने में चार-पाँच वर्ष लग गए। शैलेन्द्र कर्ज में डूबते चले गए। अंत में फिल्म जैसे-तैसे रिलीज हुई, तो फ्लॉप हो गई। फिल्म की असफलता ने उन्हें मानसिक रूप से तोड़ कर रख दिया। यह जबरदस्त झटका वह सहन नहीं कर पाए।

अंत में 30 अगस्त, 1923 को जन्मे अमर गीतकार शैलेन्द्र आखिरकार 14 दिसंबर 1966 को इस दुनिया से चल बसे। आज शैलेन्द्र हमारे बीच नहीं हैं, लेकिन उनके सैकड़ों सदाबहार गीत हमारे साथ रहेंगे और सुख-दुख में जीने की प्रेरणा देते रहेंगे। याद आ रही है, उनके ही गीत की पंक्तियाँ-

**'...रिश्ता दिल से दिल के एतबार का**
**जिन्दा है हमीं से नाम प्यार का**
**कि मरके भी किसी को याद आएंगे**
**किसी के आँसुओं में मुस्कुराएँगे।**
**कहेगा फूल हर कली से बार-बार**
**जीना इसी का नाम है...'**

# प्रतिभा के ज्योतिपुत्र शैलेन्द्र

*—डॉ॰ पुनीत बिसारिया*

**गीतों के जादूगर का मैं छंदों से तर्पण करता हूं,**
**सच बतलाऊँ तुम प्रतिभा के ज्योतिपुत्र थे।**

× × × × × × ×

**जहाँ कहीं भी अंतर मन से ऋतुओं की सरगम बुनते थे**
**ताजे कोमल शब्दों से, तुम रेशम की जाली बुनते थे।**

× × × × × × ×

**प्रिय भाई शैलेन्द्र, तुम्हारी पंक्ति पंक्ति नभ में लहराई,**
**तिकड़म अलग रही मुस्काती ओह तुम्हारे पास न आई।**

× × × × × × ×

**ओ जन जन के सजग चितेरे, जब-जब याद तुम्हारी आती**
**आँखें हो उठती हैं गीली, फटने सी लगती है छाती।**

**(नागार्जुन)**

कवि शैलेन्द्र को जानना भारत की मनुष्यता का परिचय पाना है, जो घनघोर अभावों में भी आशा का दामन नहीं छोड़ती और समस्त दुखों में भी देश-दुनिया के लिए भारतीयता की सोंधी महक, प्रेम की कोमल भावनाएँ, संबंधों की उष्णता, भक्ति की उच्चता, जीवन-दर्शन और दुखियारों के प्रति सहानुभूति की भावना की अभिव्यक्ति करती है। 'शचीपति' नाम से आगरा से निकलने वाली पत्रिका 'साधना' में एक खूबसूरत लड़की के न मिलने पर केंद्रित कविता से कवि जीवन की शुरुआत करने वाले शैलेन्द्र ने चाहा था कि उन्हें कवि के रूप में दुनिया जाने और इसीलिए उन्होंने फिल्म 'आग' में गीत लिखने के राज कूपर के प्रस्ताव को पहली बार ही ठुकरा दिया था लेकिन अभावों की आँधी ने जब उनके पारिवारिक जीवन में हलचल पैदा की तो उन्होंने फिल्मों के लिए गीत लिखना स्वीकार किया और 'बरसात के' टाइटल गीत 'बरसात में हमसे मिले तुम सजन तुमसे मिले हम' की सफलता से जो ख्याति पाई, वह उनके फिल्म गीतकार के रूप में स्थापित होने का सबब बन गई। यह भी महत्त्वपूर्ण है कि राज कपूर ने ही उन्हें 'कविराज' की उपाधि से विभूषित किया।

शैलेन्द्र को यदि फिल्मों में लिखे गीतों से गंभीरतापूर्वक विवेचित करें तो एक महत्त्वपूर्ण तथ्य स्थापित होता है कि जिस दौर में तथा कथित मुख्य धारा का हिन्दी साहित्य जगत प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और अकविता जैसी कवितेतर प्रवृत्तियों में उलझकर दलीय आधार अथवा कला के नाम पर निम्न कोटि की कविताएँ रच रहा था, उस पचास तथा साठ के दशक में शैलेन्द्र के नेतृत्व में फिल्मी गीतकार से बढ़कर एक श्रेष्ठ गीत लिख रहे थे, जिन्हें हिन्दी और हिन्दी सिनेमा के देश-विदेश में फैले प्रशंसक आज भी गुनगुनाया करते हैं। इस दृष्टि से शैलेन्द्र तथा उनके समकालीन फिल्म गीतकारों का मूल्यांकन नहीं किया गया है और उनके गीतों को 'फिल्मी गाने' कहकर साहित्योतिहास लेखों एवं आलोचकों ने उन्हें हिन्दी साहित्य में स्थान नहीं दिया है, जो शैलेन्द्र युग के अनेक महत्त्वपूर्ण गीतकारों के साहित्यिक अवदान को नकारने की दुरभिसंधि प्रतीत होती है।

शैलेन्द्र ने लगभग 18 वर्ष के अपने फिल्मी सफर में लगभग 800 ऐसे गीत दुनिया को दिए हैं, जो भारत की पहचान बन गए हैं। 'आवारा हूँ या गर्दिश में हूँ आसमान का तारा हूँ', 'श्री 420' का 'मेरा जूता है जापानी', 'अराऊंड द वर्ल्ड' का 'दुनिया की सैर कर लो' आज भी रूस तथा अनेक अन्य देशों में भारतीयता की पहचान बने हुए हैं।

शैलेन्द्र को बाल मन के मनोविज्ञान की गहरी पहचान थी, इसीलिए उनके लिखे बाल गीत आज भी बच्चों और बड़ों सभी के मानस पटल पर अंकित हैं। उनका लिखा 'मासूम' फिल्म का गीत 'नानी तेरी मोरनी को मोर ले गए' प्रायः हर बच्चा अपने बचपन में अवश्य गाता है। इसी तरह 'ब्रह्मचारी' फिल्म का 'चक्के में चक्का, चक्के पे गाड़ी, गाड़ी में निकली अपनी सवारी', इस संदर्भ में 'बूटपॉलिश' का गीत 'नन्हे-मुन्ने बच्चे तेरी मुट्ठी में क्या है' का जिक्र करना अपरिहार्य है, जो अभावों के बावजूद बच्चों को जीवन पथ पर आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है। यह गीत उन्होंने अपने पहले बच्चे के जन्म पर उसकी बंद मुट्ठी देखकर रचा था। 'जिन्दगी' फिल्म का ऐसा ही आशावादी गीत बच्चों को सदैव प्रसन्न रहने की प्रेरणा देता, जिसके बोल हैं 'मुस्कुरा लाडले मुस्कुरा, कोई भी फूल नहीं खूबसूरत है जितना ये मुखड़ा तेरा।'

भारतीय बच्चे अपने बड़े-बुजुर्गों से विशेषकर दादी-नानी से लोरी सुनकर निद्रा के आगोश में जाते रहे हैं। शैलेन्द्र ने भी कुछ अविस्मरणीय लोरियाँ रची हैं, जिनमें फिल्म 'दो बीघा जमीन' की 'आ जा री आ निंदिया' और 'चारदीवारी' फिल्म की 'नींद परी लोरी गाये', 'मद भरे नैन' फिल्म की 'आ पलकों में आ सपने सजा' विशेष उल्लेखनीय हैं। ऐसा ही एक लोकप्रिय लोकगीत 'ब्रह्मचारी' फिल्म का है, जिसके बोल हैं- 'मैं गाऊं तुम सो जाओ।'

यदि हिन्दी फिल्मों में शैलेन्द्र के गीतों की विवेचना करें तो पाते हैं कि यौवन के राग-रंग, प्रणय-विरह अर्थात संयोग शृंगार और वियोग शृंगार उनके प्रिय विषय रहे हैं। उनके फिल्मी जीवन के पदार्पण गीत 'बरसात में हमसे मिले तुम सजन तुमसे मिले हम' से ही वे प्रेम की ऐसी मधुर स्वरलहरियाँ छेड़ते रहे हैं कि फिर तो बस चतुर्दिक प्रणय ही दिखता है। उनके संयोग शृंगार के गीतों में मन के कोमल भाव और प्रिय के प्रेयसी से मिलने पर मन की उत्ताल तरंगे सरल भाषा में आकर लोगों के मन को गुदगुदा देती हैं। यूं तो शैलेन्द्र के शृंगार रस से सराबोर फिल्मी गीतों की एक लंबी सूची है लेकिन इस सूची के कुछ विशिष्ट गीतों में 'दम भर जो उधर मुँह फेरे' (आवारा), 'घर आया मेरा परदेसी (आवारा), 'प्यार हुआ इकरार हुआ है' (श्री 420), 'ये रात भीगी-भीगी' (चोरी-चोरी), 'जहाँ मैं जाती हूँ वहीं चले आते हो' (चोरी-चोरी), 'दिल की नज़र से नज़रों की दिल से' (अनाड़ी), 'कहे झूम-झूम रात ये सुहानी; (लव मैरिज), 'अजीब दास्ताँ है ये कहाँ शुरू कहाँ ख़तम' (दिल अपना और प्रीत पराई), 'तेरा-मेरा प्यार अमर' (असली नकली), 'पतली कमर है तिरछी नज़र है' (बरसात), 'मतवाली नार ठुमक-ठुमक' (एक फूल चार काँटे), 'खुली पलक में झूठा गुस्सा' (प्रोफ़ेसर), 'दिल तेरा दिवाना है सनम' (दिल तेरा दीवाना), 'रुक जा रात ठहर जा रे चंदा' (दिल एक मन्दिर), 'आ जा आई बहार' (राजकुमार), 'मेरे मन की गंगा और तेरे मन की जमुना का' (संगम), 'हर दिल जो प्यार करेगा वो गाना गायेगा' (संगम), 'ओ मेरे सनम ओ मेरे सनम' (संगम), 'हम दिल का कँवल देंगे उसको होगा कोई एक हजारों में (जिदगी), 'पान खाए सैंया हमारो' (तीसरी कसम), 'चलत मुसाफिर मोह लियो रे' (तीसरी कमस), 'जोशे जवानी हाय रे हाय' (अराउंड द वर्ल्ड), 'दीवाने का नाम तो पूछो' (एन इवनिंग इन पेरिस), 'आजकल तेरे मेरे प्यार के चर्चे हर जबान पर'

(ब्रह्मचारी), 'सुहाना सफ़र और ये मौसम हसीं' (मधुमती), 'चढ़ गयो पापी बिछुआ' (मधुमती), 'चाँद रात तुम हो साथ; (हाफ टिकट), 'ये रातें ये मौसम नदी का किनारा ये चंचल हवा' (दिल्ली का ठग), 'साथ हो तुम और रात जवां' (कांच की गुड़िया), 'खोया-खोया चाँद खुला आसमान' (कालाबाजार), 'नाचे मन मोरा मगन' (मेरी सूरत तेरी आँखें), 'पिया तोसे नैना लागे रे' (गाइड), 'आज फिर जीने की तमन्ना है' (गाइड), 'गाता रहे मेरा दिल' (गाइड), 'रुक जा ओ जाने वाली रुक जा' (कन्हैया), 'नाचेमन मोरा मगन धीगदा धीगी धीगी' (मेरी सूरत तेरी आँखें) को परिगणित किया जा सकता है। उनके प्यार की अजीब दास्ताँ मथुरा में शुरू हुई थी जहाँ उनका बाल्यकाल गुजरा था और कक्षा 9 में पढ़ते हुए अन्हें प्रेम की जो मासूम अनुभूति हुई, उसने उन्हें संवेदनशील कवि और फिल्म गीतकार बना दिया। 'मेरी प्रेयसि' कविता में उन्होंने इसका उल्लेख किया है-

**नौवीं कक्षा में पढ़ता था, जव मेरी उसकी प्रीत लगी,**

**मथुरा की संकरी गलियों में, वह मिली मुझे सर्वस्व ठगी।**

× × × ×

**था शांत विजन विश्राम घाट, वह जल भरने को आई थी,**

**मैंने पूछा था नाम और वह, शीश झुका मुस्काई थी।**

**फड़के थे उसके होंठ और, कांपे थे उसके अंग अंग,**

**तमतमा उठे उसके कपोल, औ निकला सूरज संग-संग,**

**मेरे जीवन के प्रथम प्यार की, यहाँ कहानी शुरू हुई,**

**हर बार नयी जो लगती है, वह बात पुरानी शुरू हुई।**

('महाराष्ट्र के लोकप्रिय हिन्दी स्वर' संकलन से)

वह अपनी 'नादान प्रेमिका से' उसकी नादानी पर पछताने की बात करते हुए कहते हैं-

**तुमको अपनी नादानी पर**
**जीवन भर पछताना होगा।**
**मैं तो मन को समझा लूँगा**

**यह सोच कि पूजा था पत्थर-**
**पर तुम अपने रूठे मन को**
**बोलो तो, क्या दोगी उत्तर?**

जब जीवन में दु:ख डेरा डाल देते हैं तो उसके घटाटोप से बाहर निकलने के बाद भी 'वियोगी होगा पहला कवि आह से उपजा होगा गान, उमड़कर नैनों से चुपचाप बही होगी कविता अनजान' की भांति कविगण विरह एवं अभावों की अनुभूति को काव्यात्मक अभिव्यक्ति देते हैं। प्रारंभ में निर्धनता-अभावों, दुखों का सामना करने वाले शैलेन्द्र निर्धनता के कारण पिता के साथ शैशवकाल में ही रावलपिंडी से मथुरा आए और यहाँ उनको दलित होने का दंश भी बाल्यकाल से झेलना पड़ा। ऐसे चुनौतीपूर्ण जीवन में अभावों में जुगलबंदी करते हुए उनके कवि रूप को निखारने का काम किया। उन्होंने 'आवारा' में खुद को अभिव्यक्त करते हुए लिखा 'आवारा हूँ या गर्दिश में हूँ आसमान का तारा हूँ।' ऐसी ही अभिव्यक्ति उन्होंने 'श्री 420' फिल्म के एक गीत में दी, जब उन्होंने लिखा 'रंजो गम बचपन के साथी, आँधियों में जली जीवन बाती, भूख ने है बड़े प्यार से पाला, दिल का हाल सुने दिलावाला, सीधी सी बात न मिर्च मसाला, कहके रहेगा कहने वाला', या फिर 'कालाबाजार' फिल्म के एक गीत में वे लिखते हैं 'अपनी तो हर आह इक तूफान है'। जितने श्रेष्ठ और संवेदना से भरपूर उनके संयोग शृंगार के गीत हैं उतने ही मर्मस्थल पर चोट करने वाले उनके विरह गीत भी हैं। उनके महत्त्वपूर्ण विरह गीतों में 'ऐ मेरे दिल कही और चल' (दाग), 'ये शाम की तनहाइयाँ ऐसे में तेरा गम' (आह), 'राजा की आएगी बारात' (आह), 'आ जा के इंतजार में' (हलाकू) 'ये मेरा दीवानापन है' (यहूदी), 'तेरा जाना दिल के अरमानों का लुट जाना' (दिल अपना और प्रीत पराई), 'तेरी याद दिल से भुलाने चला हूँ' (हरियाली और रास्ता), 'छोटी सी ये दुनिया पहचाने रास्ते हैं' (रंगोली), 'दोस्त-दोस्त न रहा' (संगम), 'तुम्हें याद करते-करते जाएगी रैन सारी' (आम्रपाली), 'ओ जाने वाले हो सके तो लौट के आना' (बन्दिनी), 'पूछो न कैसे मैंने रैन बिताई (मेरी सूरत तेरी आँखें), 'दिन ढल जाए हाय रात न जाए' (गाइड), 'सजनवा बैरी हो गये हमार' (तीसरी कसम), 'दिल की गिरह खोल दो चुप न बैठो' (रात और दिन), 'आ जा रे परदेसी मैं तो कबसे खड़ी इस पार' (मधुमती), 'जुल्मी संग आँख लड़ी' (मधुमती), 'बाग़ में कली खिली भंवरा मुस्काया' (चाँद और सूरज), 'झूमती चली हवा याद

आ गया कोई' (संगीत सम्राट तानसेन), 'रुला के गया सपना मेरा' (ज्वेल थीफ), 'जाऊँ कहाँ बता ऐ दिल' (छोटी बहन), 'पंथी हूँ मैं उस पथ का अंत नहीं जिसका' (दूर का राही), 'रात ने क्या क्या ख्वाब दिखाए' (एक गाँव की कहानी), 'ओ बसंती पवन पागल न जा रे न जा' (जिस देश में गंगा बहती है) आदि के नाम लिए जा सकते हैं।

भक्ति हिन्दी फिल्मी गीतों का एक विशेष तत्व रही है। प्रत्येक दौर के गीतकारों ने हिन्दी सिनेमा में अपने-अपने तरीके से भक्ति और प्रार्थना के गीत लिखे हैं। शैलेन्द्र को भी हिन्दी फिल्मों के श्रेष्ठ भक्त गीतकारों में गिना जा सकता है। 'सीमा' फिल्म का गीत तू प्यार का सागर है' आज भी कई स्कूलों में प्रार्थना के रूप में गाया जाता है। इसके अतिरिक्त 'बड़ी देर भई कब लोगे खबर मोरे राम' (बसंत बहार), 'पतिव्रता सीता माई को तूने दिया बनवास क्यूँ न फटा धरती का कलेजा क्यूँ न फटा आकाश' (आवारा), 'मेरी विपदा आन हरो' (पूजा), 'राधिका तूने बांसुरी चुराई' (बेटी-बेटे), 'जागो मोहन प्यारे जागो' (जागते रहो), 'मन रे हरि गुन' (मुसाफिर), 'लागी नाहीं छूटे राम' (मुसाफिर), 'ना मैं धन चाहूँ ना रतन चाहूँ तेरे चरणों की धूल मिल जाए तो मैं तर जाऊँ श्याम तर जाऊँ' (कालाबाज़ार), 'शिवजी ब्याहने चले पालकी सजाइ के' (मुनीजी), 'पावन गंगा सर पर सोहे' (पटरानी), 'बांसुरिया काहे बजाई' (आगोश), 'अल्ला मेघ दे पानी दे' (गाइड), 'इलाही तू सुन ले हमारी दुआ' (छोटे नवाब), 'बता दो कोई कौन गली गये श्याम' (मधु), 'भय भंजना वन्दना सुन हमारी दरस माँगे ये तेरा पुजारी' और 'दुनिया न भाए मोहे अब तो बुला ले' (बसंत बहार) भी पर्याप्त लोकप्रिय रहे हैं।

भक्ति की भांति ही देशभक्ति भी हिन्दी फिल्मों की लोकप्रियता का एक विशिष्ट कारक रही है। शैलेन्द्र ने भले ही कम संख्या में देशभक्ति के गीत लिखे हैं किन्तु उनके ये गीत अत्यंत लोकप्रिय हुए हैं। उनके लिखे देशभक्ति के गीतों में 'होंठो पे सचाई रहती है' (जिस देश में गंगा बहती है), 'ये चमन हमारा अपना है' (अब दिल्ली दूर नहीं) के नाम लिए जा सकते हैं। यहाँ उनके 'बन्दिनी' फिल्म के एक देशभक्ति के गीत का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा, जिसके बोल थे 'मत रो माता लाल तेरे बहुतेरे'। उस साल सन् 1964 का फिल्मफेयर अवार्ड साहिर लुधियानवी को उनके ताजमहल फिल्म के गीत 'जो वादा किया वो निभाना पड़ेगा'

के लिए दिया जा रहा था। इससे पहले उस साल की छह श्रेणियों सर्वश्रेष्ठ फिल्म, सर्वश्रेष्ठ निर्देशक, सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री, सर्वश्रेष्ठ पटकथा, सर्वश्रेष्ठ सिनेमेटोग्राफी (श्वेत-श्याम० और सर्वश्रेष्ठ ध्वनि के फिल्मफेयर अवार्ड 'बंदिनी' फिल्म की झोली में जा चुके थे लेकिन गीत का नहीं मिला था। उस समय साहिर ने कहा था कि इस साल का सर्वश्रेष्ठ गीतकार का अवार्ड मुझे नहीं बल्कि शैलेन्द्र को बन्दिनी फिल्म के उनके गीत 'मत रो माता लाल तेरे बहुतेरे' को दिया जाना चाहिए था। यह एक महान गीतगार द्वारा दूसरे महान गीतकार की प्रतिभा का सम्मान था।

15 अगस्त 1947 को भारत को मिली आज़ादी का अभिनन्दन करते हुए इसी शीर्षक से एक कविता में वे लिखते हैं-

**जय-जय भारतवर्ष प्रणाम।**
**युग-युग के आदर्श प्रणाम।**
**शत-शत बंधन टूटे आज**
**बैरी के प्रभु रूठे आज**
**अंधकार है भाग रहा**
**जाग रहा है तरुण विहान।**

आज़ादी से पहले कांग्रेस पार्टी द्वारा दिखाई गए आज़ादी के कोरे सपनों के पूरा न होने से वे इतने व्यथित थे कि आज़ादी के मात्र एक साल बाद ही सन् 1948 में 'भगत सिंह से' कविता में वे जनता को आइना दिखाते हुए कहते हैं-

**देशभक्ति के लिए आज भी सजा मिलेगी फाँसी की।**
**मत समझो पूजे जाओगे क्योंकि लड़े थे दुश्मन से**
**रुत ऐसी है आँख लड़ी है अब दिल्ली की लन्दन से**
**कामनवेल्थ कुटुंब देश को खींच रहा है मंतर से**
**प्रेमविभोर हुए नेतागण नीरा बरसी अम्बर से**

चीन से युद्ध होने पर उन्होंने 'आवाजें' कविता के माध्यम से साम्यवादी चीन के आक्रमण की भर्त्सना की और कुछ तथाकथित भारतीय वामपंथियों की शुतुरमुर्गी नीति पर प्रहार करते हुए लिखा-

**ये आवाजें, मैं सुन रहा हूँ**
**तुम सुन रहे हो, सब सुन रहे हैं।**
**दबी-दबी साजिश भरी ज़हरीली आवाजें।**

उनकी आवाजें जो देश के इस संकट में
मर्द बन बैठे हैं, मूंछ रख ऐंठे हैं
और फुफकारते हैं सह अस्तित्व पर
तटस्थता की नीति पर, एटम हाइड्रोजन के युग में
विश्व शांति पर, शांति दूत नेहरू पर

गोवा पर पुर्तगाल के अवैध कब्जे को लेकर भी उन्होंने 'अमन का सिपाही' शीर्षक से कविता लिखी, जिसमें उन्होंने अमन के सिपाही भारत देश को छलने वाले पुर्तगालियों पर सवाल उठाते हुए लिखा-

अमन का सिपाही मेरा देश प्यारा
अडिग शांति के पथ पर चल रहा है
इधर हम चले झूमते गीत गाते
उधर जंगबाजों का दिल जल रहा है।

× × × ×

मगर जब ये तेवर बदलती है प्यारे
समझ लो कि दुश्मन की आई हुई है
ब्रिटिश फ्रांसीसी सभी घर सिधारे
मगर पुर्तगी खुद को क्यों छल रहा है?

शैलेन्द्र अपनी जन्मभूमि से अत्यधिक प्रेम करते थे, इसका संकेत वे 'प्यारी जन्मभूमि' कविता में देते हैं-

वही है, वही है मेरी जन्मभूमि।
प्यारी जन्मभूमि, मेरी प्यारी जन्मभूमि।
मेरी जन्मभूमि, मेरी प्यारी जन्मभूमि।

× × × ×

ऊँचा है सबसे ऊँचा जिसका भाल हिमाला।
पहले पहल उतरा जहाँ अम्बर से उजियाला।
वही है जन्मभूमि, मेरी प्यारी जन्मभूमि।।

आशावाद शैलेन्द्र की बहुत बड़ी पूँजी थी। उनके फिल्मी गीतों में भी यह आशा का स्वर दिखाई देता है। वे 'अनाड़ी' फिल्म में खुलेआम मुनादी करते हैं

'किसी की मुस्कुराहटों पे हो निसार, किसी का दर्द मिल सके तो ले उधार, किसी के वास्ते हो तेरे दिल में प्यार, जीना इसी का नाम है'। इससे पहले 'आवारा' फिल्म में वो कह ही चुके थे 'आबाद नहीं बर्बाद सही गाता हूँ खुशी के गीत मगर, जख्मों से भरा सीना है मेरा, हंसती है मगर से मस्त नजर, दुनिया में तेरे तीर या तकदीर का मारा हूँ, आवारा हूँ'। 'बूटपॉलिश' फिल्म में उनके बच्चे अपनी मुट्ठी में तकदीर लेकर किस्मत को वश में करने का गुर जानते हैं। 'पतिता' फिल्म में वो कहते हैं 'जब गम का अँधेरा घिर आये समझो के सवेरा दूर नहीं' लेकिन इसके लिए उन्हें अहल्या को पत्थर से मनुष्य बनाने वाले राम की तलाश है, तभी तो वह 'जिस देश में गंगा बहती है' फिल्म में कहते हैं 'बनके पत्थर हम पड़े थे सूनी-सूनी राह में, जी उठे हम जब से तेरी बाँह आई बाँह में, छीनकर नैनों से काजल न जा रे न जा'। 'जागते रहो' फिल्म में भी कुछ ऐसी ही आशावादी भावना है 'एक क़तरा मय का जब पत्थर के होठों पर गिरा, उसके सीने में भी दिल धड़का, ये उसने भी कहा, जिन्दगी ख़्वाब है, ख्वाब में झूठ क्या और भला सच है क्या'। 'शिकस्त' फिल्म के एक गीत में वे लिखते हैं 'नयी जिन्दगी से प्यार करके देख, इसके रूप का सिंगार करके देख, इसपे जो भी है निसार करके देख'। 'सूरत और सीरत' फिल्म में वे ईश्वर से हरदम शिकायत करने वालों को जवाब देते हुए कहते हैं 'बहुत दिया देने वाले ने तुझको आँचल ही न समाए तो क्या कीजे'। 'उजाला फिल्म के एक गीत में वे आशावाद को यूं परिभाषित करते हैं 'सूरज जरा पास आ, आज सपनों की रोटी पकाएँगे हम, ऐ आसमां तू बड़े मेहरबां आज तुझको भी दावत खिलाएँगे हम'।

जिस समय शैलेन्द्र फिल्मों में लिख रहे थे उस समय देश नया-नया आज़द हुआ था और ढेरों समस्याएँ देश के सामने मुँह बाए खड़ी थीं, जिनका अहसास वे सन् 1955 में आई फिल्म 'श्री 420' के गीत के माध्यम से यह संदेश देते हुए कराते हैं कि लाख चुनौतियाँ हो हमारा दिल हिन्दुस्तानी ही रहेगा' मेरा जूता है जापानी, ये पतलून इंग्लिस्तानी सर पे लाल टोपी रूसी फिर भी दिल है हिन्दुस्तानी'। उनका नायक इसी फिल्म के एक गीत 'मुड़-मुड़ के न देख' भारतवासियों को आश्वस्त करता हुआ कहता है 'जिंदगानी के सफ़र में तू अकेला ही नहीं है' और इसीलिए 'सीमा' फिल्म में 'घायल मन का पागल पंछी उड़ने को बेकरार, पंख हैं कोमल आँख है धुंधली जाना है सागर पार' का प्रण लेता है।

गैरफिल्मी गीतों में भी वे अपनी इसी आशावाद को प्रकट करते हैं। उनका ऐसा ही एक गीत दृष्टव्य है-

**तू जिंदा है तो जिन्दगी की, जीत में यकीन कर**
**अगर कहीं है स्वर्ग तो, उतार ला ज़मीन पर**
**ये गम के और चार दिन, सितम के और चार दिन**
**ये दिन भी जाएँगे गुजर, गुजर गए हजार दिन**
**सुबह औ' शाम के रंगे, हुए गगन को चूमकर**
**तू सुन ज़मीन गा रही है, कब से झूम-झूम कर**
**तू आ मेरा सिंगार कर, तू आ मुझे हसीन कर!**

वे रो-धो कर अपने जीवन को व्यर्थ करने को मनुष्यता की दृष्टि से असंगत मानते हैं, तबी वे एक गैर फिल्मी गीत में कहते हैं-

**मैं अपने दुःख के गीत नहीं गाऊँगा,**
**रो-धो कर ही मन कब तक बहलाऊँगा?**

करोड़ों भारतीयों की भांति उनका भी छोटा सा सपना है, जो 'नौकरी' फिल्म के इस गीत में उभरकर सामने आता है, जिसमें वे मासूमियत से कहते हैं, 'छोटा सा घर होगा बादलों की छाँव में, आशा दीवानी मन में बाँसुरी बजाए, हम ही चमकेंगे तारों के उस गाँव में, मेरा क्या मैं पड़ा रहूँगा अम्मी जी के पाँव में'।

शैलेन्द्र का जीवन दर्शन स्पष्ट है। 'तीसरी कसम' में वह अपने सजन से कहते हैं 'सजन रे झूठ मत बोलो खुदा के पास जाना है, न हाथी है न घोड़ा है, वहाँ पैदल ही जाना है' क्योंकि कठपुतली फिल्म के गीत के अनुसार 'हम कठपुतली काठ के हमें तू नाच नाचाए'। 'सीमा' के एक गीत में वे मनुष्यता को सावधान करते हुए कहते हैं 'कहाँ जा रहा है तू ऐ जाने वाले अँधेरा है मन का दिया तो जला ले'। 'गाइड' के एक गीत में वे अपने सूफियाना अंदाज़ को बयान करते हुए कहते हैं 'वहाँ कौन है तैरा, मुसाफिर जाएगा कहाँ दम ले ले घड़ी भर ये छैयां पाएगा कहाँ'। शैलेन्द्र 'गाइड' के गीत में सूफियाना अंदाज़ में कहते हैं 'कहते हैं ज्ञानी दुनिया है फ़ानी, पानी पे लिखी लिखाई, है सबकी देखी है सबकी जानी'।

शैलेन्द्र ने अनेक पर्वों पर कुछ अविस्मरणीय गीतों की रचना की है। रक्षाबंधन के पवित्र पर्व पर यदि हम उनके लिखे 'छोटी बहन' फिल्म के 'भैया मेरे राखी के बंधन को निभाना' गीत न सुनें तो शायद कुछ अधूरापन अवश्य लगेगा। इसी तरह 'माशूका' फिल्म का होली पर आधारित गीत 'होली खेलें नंदलाला' ऐसा गीत है, जिसके बाद में अनेक संस्करण कई फिल्मों में आए।

शैलेन्द्र को प्रकृति के सुन्दर दृश्यों को गीतों में उकेरने की अद्‌भुत समझ थी। 'बरसात' फिल्म के 'बरसात में हमसे मिले तुम' गाने में बारिश के गीलेपन के बीच पनपते प्रेम का जो अनुभव है, वह बेमिसाल है। प्रकृति के संयोगात्मक एवं वियोगात्मक स्वरूप के अद्‌भुत नजारे उनके गीतों में मिलते हैं- 'बाग़ में कली खिली भंवरा मुस्काया' (चाँद और सूरज), 'झूमती चली हवा याद आ गया कोई' (संगीत सम्राट तानसेन), 'सुहाना सफ़र और ये मौसम हसीं' (मधुमती), 'चाँद रात तुम हो साथ' (हाफ टिकट), 'ये रातें ये मौसम नदी का किनारा' (दिल्ली का ठग), 'साथ हो तुम और रात जवां' (काँच की गुड़िया), 'ये रात भीगी-भीगी' (चोरी-चोरी), 'कहे झूम-झूम रात ये सुहानी' (लव मैरिज), 'रुक जा रात ठहर जा रे चंदा' (दिल एक मंदिर), 'तितली उड़ी उड़ जो चली' (सूरज), 'दिन ढल जाए हाय रात न जाय' (गाइड), 'धरती कहे पुकार के बीज बिछा ले प्यार के' (दो बीघा जमीन), 'ओ सजना बरखा बहार आयी' (परख), 'आहा रिमझिम के ये प्यारे-प्यारे गीत लिए' (उसने कहा था), 'रिमझिम के तराने ले के आई बरसात' (कालाबाजार) प्रमुख हैं। वे अपने प्रकृति प्रेम का बखान करते हुए 'आशिक' फिल्म के एक गीत में कहते भी हैं- मैं आशिक हूँ बहारों का'।

यद्यपि शैलेन्द्र को भोजपुरी का ज्ञान न के बराबर था लेकिन फिर भी उन्होंने छह भोजपुरी फिल्मों के लिए गीत लिखे हैं। सन् 1964 में आई फिल्म 'नैहर छूटल जाय' के गीतों के बोल थे- 'जिया कसक मसक मोर रहे', 'घर से सुन रे भैया', 'जमना तट स्याम खेलत', 'अरे रामा रिमझिम बरसेला', 'चढ़ेला असाढ़ बरसेला' और 'नैहर छूटल जाय'। सन् 1965 में आई 'गंगा मैया तोहे पियरी चढ़ईबो', सुपरहिट फिल्म मानी जाती है। इसके गीत शैलेन्द्र ने लिखे थे, जिसमें 'हे गंगा मैया तोहे पियरी चढ़ईबो', 'हम तो खेलत रहनी', 'मोरे करेजवा मा पीर है', 'सोनवा के पिंजरे में', 'लुक छिप बदरा में चमके' और 'काहे बाँसुरिया बजउले तोहरे बंसुरिया

में गिनती के छेदवा मनवा हमार पिया छलनी भईल बा', 'अब हम कइसे चली डगरिया लोगवा नजर लगावेला' शामिल थे। सन् 1965 में आयोजित भोजपुरी और मागधी फिल्म सम्मान समारोह में शैलेन्द्र को 'गंगा मैया तोहे पियरी चढ़ईबो' के गीतों में सर्वश्रेष्ठ भोजपुरी गीतकार का सम्मान दिया गया था, जबकि पण्डित राममूर्ति चतुर्वेदी को 'बिदेसिया' गीतों के लिए इस सम्मान का मजबूत दावेदार समझा जा रहा था। सन् 1965 में आई 'गंगा' फिल्म के लिए भी उन्होंने भोजपुरी गीत लिखे थे, जिनके बोल थे- 'कान्हा तोरी बंसी के जुल्मी रे तान', 'बनवा फुलेलवा बसंत रे' आदि। इसी साल आई एक अन्य भोजपुरी फिल्म 'सइयां से नेहा लगइबे' के लिए लिखे उनके गीतों में 'काहे के भेजल बिदेस रे मोहे', 'नैना मोरे कजरारे' आदि शामिल थे। अगले वर्ष सन् 1966 में आई भोजपुरी फिल्म 'मितवा' में भी पाँच गीत लिखे।

व्यंग्य भी शैलेन्द्र के गीतों में देखा जा सकता है। 'परख' फिल्म के एक गीत में वे कहते हैं- क्या हवा चली बाबा गुरबत की, सौ सौ चूहे खाके बिल्ली हज को चली, पहले लोग मर रहे थे भूख से अभाव से, अब कहीं ये मर न जाएँ अपनी खाब-खाब से, मीठी बात कड़वी लगे गालियाँ भली, आम में उगे खजूर नीम में फले हैं आम, डाकुओं ने जोग लिया चोर भजें राम नाम, होश की दला करो मियाँ फजल अली'। 'यहूदी' फिल्म के एक गीत में वे कहते हैं 'ये दुनिया ये दुनिया हाय हमारी ये दुनिया शैतानों की बस्ती है, यहाँ जिंदगी सस्ती है'।

शैलेन्द्र ने हिन्दी फिल्मों को अनेक अविस्मरणीय मादक गीत दिए हैं, जिनमें 'पतली कमर है तिरछी नज़र है' (बरसात), एक दो तीन आजा मौसम है रंगीन (आवारा), 'चढ़ गयो पापी बिछुआ' (मधुमती) और 'नखरे वाली देखने में देख लो है कैसी भोली-भाली' (न्यू दिल्ली) प्रमुख हैं लेकिन यहाँ यह तथ्य उल्लेखनीय है कि इन गीतों में मादकता तो है किंतु अश्लीलता, फूहड़ता और भोंडापन कतई नहीं है। शैलेन्द्र इन दुर्गुणों के विरोधी थे, इसीलिए उन्होंने 'लव मैरिज' फिल्म के एक गीत में अपना मंतव्य स्पष्ट करते हुए कहा था 'टीन कनस्तर पीट-पीट कर गला फाड़कर चिल्लाना यार मेरे मत बुरा मान ये गाना है न बजाना है'। इस संबंध में उन्होंने 'कवि तुम किनके? कविता किसकी' शीर्षक में से एक कविता भी लिखी है, जो उनके इस दृष्टिकोण को और भी स्पष्ट कर देती है-

**जिनके सपनों की प्रीत परी बिक जाती है बाज़ारों में,**
**जिनके अरमानों की कलियाँ सो जाती हैं अंगारों में,**
**फिर भी जो दिल के घाव छुपा हँसते हैं जिन्दा रहते हैं...**
**तूफां से काँधे कदम मिला जो संग समय के बहते हैं...**
**कवि उनका है,**
**कविता उनकी।**

शैलेन्द्र अंग्रेजी के मशहूर कवि शेली से अत्यंत प्रभावित थे, ऐसा उनके गीतों में भी देखा जा सकता है। उन्होंने शेली की प्रसिद्ध पंक्ति "Our sweetest songs are those that tell of the saddest thought" का सुप्रसिद्ध गायक तलत महमूद के आग्रह पर कुछ यूं अनुवाद किया था-

**हैं सबसे मधुर वो गीत जिन्हें हम दर्द के सुर में गाते हैं,**
**जब हद से गुजर जाती है ख़ुशी, आँसू भी छलकते आते हैं।**

शैलेन्द्र शेली से किस कदर प्रभावित थे, इस बाद का अंदाज़ इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि उन्होंने अपने पहले बच्चे का नामकरण ही शैली शैलेन्द्र कर दिया था, जिन्होंने 17 साल की अल्पायु में पिता के निधन के बाद राज कपूर के कहने पर शैलेन्द्र की 'मेरा नाम जोकर' फिल्म के अधूरे रह गए गीत' जीना यहाँ मरना यहाँ इसके सिवा जाना कहाँ' को पूरा किया था।

अंग्रेजी के शब्दों में मिश्रित कर चमत्कारपूर्ण गीतों की सृष्टि करना शैलेन्द्र की खूबी थी। उनके ऐसे कुछ फिल्मी गीत अत्यंत लोकप्रिय भी हुए। इन गीतों में 'ओ ओ माय डिअर आओ नियर' (नगीना), नाइंटीन फिफ्टी सिक्स, नाइंटीन फिफ्टी सेवेन, नाइंटीन फिफ्टी नाइन दुनिया का ढाँचा बदला दुनिया का साँचा बदला लाला हो कहाँ' (अनाड़ी), 'ओ बोम्बशेल बेबी ऑफ़ बाम्बे' और 'ओ मेरी बेबी डॉल' (एक फूल चार काँटे), 'अरांउड द वर्ल्ड इन एट डॉलर (अरांउड द वर्ल्ड इन एट डॉलर), 'बेटा वाओ वाओ वाओ मेरा कान मत खाओ' (मेम दीदी) विशेष तौर पर उल्लेखनीय हैं।

निरर्थक शब्दों के प्रयोग से अर्थवान गीतों को बना देना शैलेन्द्र की एक और बड़ी विशेषता रही है। उनके ऐसे अनेक फिल्मी गीत हैं, जिनमें निरर्थक शब्दों के संयोजन से गीत की प्रभविष्णुता बढ़ गई है। इनमें 'इल ले बेली ला, इल ले बेली

लाई ला इल ले बेली आ रे, इन हैं प्यारे-प्यारे' (काली घटा), 'तन्दाना तन्दाना तन्दाना तन्दाना, मुश्किल है प्यार छुपाना' (मयूर पंख), मिनी मिनी ची ची मिनी मिनी ची ची' (कठपुतली), 'चिनचन पपलू चिनचन पपलू चिनचन पपलू छुई मुई मैं छू न लेना मुझे छू न लेना (बागी सिपाही), 'लुस्का लुस्का लुई लु सा लुई लुई सा इसका उसका किसका लुई लुई सा, तू मेरा कॉपीराइट मैं तेरा कॉपीराइट' (शरारत), 'मैं हूँ मिस्टर चिक चिक बूम बूम' (अप्रदर्शित फिल्म बैंडमास्टर चिक चिक बूम बूम), 'अइयाइया करूँ में क्या सुकू सुकू खो गया दिल मेरा सुकू सुकू' और 'याहू चाहे कोई मुझे जंगली कहे' (जंगली) एवं नाच रे मन बड़कम्मा (राजकुमार) को विशेष तौर पर परिगणित किया जा सकता है।

शैलेन्द्र के अन्य लोकप्रिय फिल्मी गीतों में 'दम भर जो उधर मुँह फेरे' (आवारा), 'छोटी सी ये जिंदगानी' (आह), 'नखरेवाली देखने में देख लो' (न्यू दिल्ली), 'मंजिल वही है प्यार की राही बदल गए' (कठपुतली), 'नी बलिये रुत है बहार की' (कन्हैया), 'कहे झूम झूम रात ये सुहानी' (लव मैरिज), 'मुझको यारों माफ़ करना मैं नशे में हूँ' (मैं नशे में हूँ), 'जा जा जा रे मेरे बचपन' (जंगली), 'मेरा नाम राजू' (जिस देश में गंगा बहती है), 'ओ सनम तेरे हो गए हम' और 'आई मिलन की बेला' (आई मिलन की बेला), 'सबेरे वाली गाड़ी से चले जाएँगे' (लाट साहब), 'हर दिल जो प्यार करेगा' और 'ओ मेरे सनम ओ मेरे सनम' (संगम), 'हमने जफा न सीखी उनको वफ़ा न आई' (ज़िन्दगी), 'तुम्हे याद करते करते' (आम्रपाली), 'कोई मतवाला आए मेरे द्वारे' (लव इन टोक्यो), 'जोशे जवानी हाय रे हाय' (अराउंड द वर्ल्ड), 'रात के हमसफर थक के घर को चले' और 'दीवाने का नाम तो पूछो' (एन इवनिंग इन पेरिस), 'आजकल तेरे मेरे प्यार के चर्चे' (ब्रह्मचारी), 'ज़िन्दगी ख़्वाब है' (जागते रहो), 'जंगल में मोर नाचा', 'दिल तड़प तड़प के' (मधुमती) इत्यादि प्रमुख हैं।

शैलेन्द्र क्रांतिधर्मी कवि थे। देशवासियों की दुर्दशा में दुर्दिन से उनका कलेजा फटता था। इसके संकेत उनके अनेक गीतों में मिलते हैं। 'मेरी अभिलाभा' कविता से उनकी यह इच्छा प्रतिध्वनित होती है-

**सुनसान अँधेरी रातों में, जो घाव दिखाती है दुनिया**
**उन घावों को सहला जाऊँ, दुखते दिल को बहला जाऊँ, बस मेरी यह अभिलाषा है।**

**सुनसान ठिठुरती रातों में जो ताप तपाती है दुनिया**
**उस ईंधन के काम आ जाऊं, यों अपना आप मिटा जाऊँ, बस मेरी यह अभिलाषा है।**

शैलेन्द्र मनुष्यता के जीवन को विजयी होते देखने के पक्षपाती रहे हैं। 'तू जिंदा है तो...' कविता में वे इसी भावना को अभिव्यक्त करते हुए लिखते हैं-

**तू जिंदा है तो ज़िन्दगी की जीत में यकीन कर**
**अगर कहीं है स्वर्ग तो उतार ला ज़मीन पर।**
**ये सुबह-शाम के रंगे हुए गगन को चूमकर**
**तू सुन ज़मीन गा रही है कब से झूम-झूम कर**
**अगर कहीं है स्वर्ग तो उतार ला ज़मीन पर।**

आजकल हर धरना प्रदर्शन में एक नारा अवश्य लगता है, जिसके बोल होते हैं- 'हर ज़ोर जुल्म की टक्कर में संघर्ष हमारा नारा है' लेकिन बहुत कम लोगों को पता होगा कि यह गीत शैलेन्द्र ने लिखा था, जिसके बोल थे-

**हर ज़ोर जुल्म की टक्कर में हड़ताल हमारा नारा है**
**तुमने माँगें ठुकराई हैं तुमने तोड़ा है हर वादा**
**छीना हमसे सस्ता अनाज तुम छंटनी पर हो आमादा**
**तो अपनी भी तैयारी है तो हमने भी ललकारा है**
**हर ज़ोर जुल्म की टक्कर में हड़ताल हमारा नारा है**
**मत करो वहाने संकट है, मुद्रा प्रसार इन्फ्लेशन है**
**इन बनियों और लुटेरों को क्या सरकारी कन्सेशन है?**
**वगलें मत झांको दो जवाब, क्या यही स्वराज तुम्हारा है?**

यह और बात है कि सन् 1974 के लोकनायक जयप्रकाश नारायण के संपूर्ण क्रांति के आह्वान पर शुरू हुए आन्दोलन में फणीश्वरनाथ रेणु ने इस गीत में 'हड़ताल' शब्द की जगह 'संघर्ष' जोड़कर इस गीत को जन-जन का कंठहार बना दिया।

इस क्रांति को वे किसलिए और किस प्रकार करना चाहते थे, इसका सुन्दर चित्र उन्होंने 'क्रांति के लिए उठें कदम' कविता में उकेरा है, जिसका एक अंश अवलोकनीय है-

**क्रांति के लिए उठें कदम**
**क्रांति के लिए जली मशाल**

**रात के विरुद्ध प्रात के लिए**
**भूख के विरुद्ध भात के लिए**
**मेहनती गरीब जात के लिए**
**हम लड़ेंगे हमने ली कसम**
**क्रांति के लिए उठे कदम।**

वे भारतीयों की दुरव्यस्था के लिए खद्दरी सफ़ेदपोशों को जितना उत्तरदायी मानते हैं, उतना ही अंग्रेजों को भी दोषी मानते हुए 'गोरा परदेसी' कविता में कहते हैं-

**हमारी बगिया में आग लगाय गया गोरा परदेसी**
**हमारे हाड़-मांस सब खाय गया गोरा परदेसी**

× × × × × × × ×

**जब देखा अँगरेज़ ने आयी मौत नहीं टलने की**
**लदे जमाने ताज-तख़्त के दाल नहीं गलने की**
**नेताओं से समझौते कर राजपाट सब त्यागा**
**डर के लंदन का अन्यायी फिर लन्दन को भागा**
**आई मौत देख घबराय गया गोरा परदेशी**
**कैसे-कैसों की अकल भरमाय गया गोरा परदेशी।**

उन्होंने पंजाब, हैदराबाद, चीन, जापान इन सभी राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय विषयों पर लिखा और आज़ादी के पहले और बाद की दुरव्यवस्था को भी अपनी लेखनी से रेखांकित किया। 'जलता है पंजाब हमारा' कविता में वे पंजाब की हालत पर दु:ख प्रकट करते हुए लिखते हैं-

**जलता है जलता है पंजाब हमारा प्यारा**
**जलता है भगत सिंह की आँखों का तारा**
**किसने हमारे जलियाँवाले बाग़ में आग लगाई**
**किसने हमारे देश में फूट की ये ज्वाला धधकाई**
**किसने माता की अस्मत को बुरी नजर से ताका**
**धर्म और मजहब से अपनी बदनीयत को ढांका**
**कौन सुखाने चला है पाँचों नदियों की जलधारा**
**जलता है जलता है पंजाब हमारा प्यारा।**

उपर्युक्त कविता सन् 1947 में जब शैलेन्द्र एक कवि सम्मेलन के मंच पर सुना रहे थे, तब इससे प्रभावित होकर राज कपूर ने शैलेन्द्र को अपनी फिल्म 'आग' के गीत लिखने का उनसे अनुरोध किया था, किन्तु तब उन्होंने फिल्मों के लिए गीत लिखने से मना कर दिया था लेकिन राज कपूर की अगली ही फिल्म 'बरसात' में उन्हें अर्थाभाव के कारण गीत लिखने पड़े और उसके बाद सफलता की जो स्वर्णिम कहानी शुरू हुई, वह इतिहास के पन्नों में सदा-सर्वदा के लिए अमिट रूप से अंकित हो गई।

'कहानी सुनो' कविता में वे निजाम द्वारा हैदराबाद की निर्दोष जनता पर किए गए अमानवीय और बर्बर अत्याचारों की भर्त्सना करते हैं और भारतीय सेना द्वारा उनका परित्राण करने का स्वागत करते हैं तो 'हैदरावाद और यूएनओ' कविता में हैदराबाद के मसले को निजाम द्वारा संयुक्त राष्ट्रसंघ में ले जाने की भर्त्सना भी करते नजर आते हैं-

**पेरिस! रात 16 सितम्बर की,**
**संयुक्त राष्ट्रसंघ की सुरक्षा समिति**
**हैदराबाद का सवाल लेकर बैठी।**
**नवाब मुईन नवाज जंग ने अपील की-**
**दुहाई है रक्षा करो, घड़ी नहीं ढील की।**
**उठे रामास्वामी मुदलियार**
**ब्रिटिश सरकार के पुराने पेशकार**
**अब कांग्रेस के प्रतिनिधि देश के।**
**बोले: राष्ट्र संघ से, हक नहीं हैदराबाद का**
**अवसर मत दो फरियाद का!**

शैलेन्द्र का बचपन रावलपिंडी में गुजरा था और उनके पिता उन्हें लेकर मथुरा आ गए थे। ऐसे में विभाजन से रावलपिंडी का पाकिस्तान में चला जाना उन्हें टीस देता था। 'सुन भैया रहिमू पाकिस्तान के' कविता में वे बंटवारे के अपने इसी दर्द को आवाज़ देते हुए लिखते हैं-

**सुन भैया रहिमू पाकिस्तान के**
**भुलुआ पुकारे हिंदुस्तान से**
**भुलुआ जो था तेरे पड़ोस में**

**संग संग थे जब से आए होश में**
**सोना रूपी धरती की गोद में**
**खेले हम दो बेटे किसान के।**
**सुन भैया रहिमू पाकिस्तान के**

× × × ×

**परदेसी कैसी चाल चल गया**
**झूठे सपनों से हमको छल गया**
**डर के वह घर से तो निकल गया**
**दो आंगन कर गया मकान के**
**सुन भैया रहिमू पाकिस्तान के।**

वे साम्यवादी खूनी क्रांति के खिलाफ थे। तभी तो उन्होंने द्वितीय विश्वयुद्ध में अमेरिका द्वारा जापान पर किए एटम बम के इस्तेमाल का घोर विरोध किया और लिखा-

**चर्चिल मांगे खून मजूर किसानों का**
**टूमैन मांगे ताजा खून जवानों का।**
**च्यांग गिरा मुंह के बल, पूरब में तूफान**
**जुल्मों की छाती पर इस्पाती इंसान**
**गरज वक्त की राज करें मजदूर किसान,**
**बनियों पर आ बना, अकल इनकी हैरान**
**सिकुड़ चला बाज़ार आज धनवानों का।**

शैलेन्द्र ने फिल्मों में हास्य गीत भले परिमाण में कम लिखे हों किंतु परिणाम में ये अत्यंत लोकप्रिय और प्रभावशाली रहे हैं। 'गुमनाम' फिल्म का गीत 'हम काले हैं तो क्या हुआ दिलवाले हैं' उनकी ही लेखनी से निकलकर अमर हो गया है। 'जानवर' फिल्म के गीत 'लाल छड़ी मैदान खड़ी' तथा 'अराउंड द वर्ल्ड' फिल्म के गीत 'ये मूंग और मसूर की दाल वा रे वा मेरे बांकेलाल' और 'चील चील चिल्ला के कजरी सुनाए' (हाफ टिकट) में भी चपल हास्य है। 'जंगली' फिल्म का गीत 'अइ-अइ का करूँ में क्या सुकु सुकू खो गया दिल मेरा सुकू सुकू' खिलंदड़पन में ही जीवन के फलसफे को समझा देता है।

प्रश्नोत्तर शैली में गीत लिखकर सवाल-जवाब की मुकरी शैली को हिन्दी फिल्मों में स्थापित करने का श्रेय शैलेन्द्र को दिया जाना चाहिए। 'ससुराल' फिल्म का 'एक सवाल मैं करूँ एक सवाल तुम करो हर सवाल का सवाल ही जवाब हो' गीत या फिर 'संगम; फिल्म का 'मेरे मन की गंगा और तेरे मन की जमना का बोल राधा बोल संगम होगा कि नहीं' या 'कठपुतली' फिल्म का 'बोल री कठपुतली डोरी कौन संग बाँधी' या फिर 'जिस देश में गंगा बहती है' फिल्म का गीत 'हम भी हैं तुम भी हो दोनों हैं आमने सामने' इसके प्रमाण हैं।

शैलेन्द्र को लोकगीतों की पैनी समझ थी। उन्होंने देश भर के अनेक लोकगीतों को पढ़-सुन-गुन कर फिल्मों को ऐसे गीत दिए, जिन्हें हम आज भी यकायक गुनगुनाते हैं। एक बार शैलेन्द्र संगीतकार मित्र शंकर जयकिशन के साथ कहीं जा रहे थे। रास्त में उन्हें एक निर्माणाधीन इमारत में काम करते मजदूर दिखे, जो गा रहे थे 'रमैया वस्तावैया' और शैलेन्द्र के 'श्री 420' फिल्म के अमर गीत 'रमैया वस्तावैया, मैंने दिल तुझको दिया' ने जन्म ले लिया। 'बंदिनी' का सुविख्यात गीत 'मेरे साजन है उस पार' और 'गाइड' फिल्म का 'वहाँ कौन है तेरा' पूर्वी बंगाल की लोक धुनों से प्रभावित गीत हैं। 'तीसरी कसम' के 'सजनवा बैरी हो गए हमार', 'पान खाएँ सैंया हमारो', 'चलत मुसाफिर मोह लियो रे पिंजरे वाली मुनिया' और 'लाली लाली डोलिया में लाली रे दुल्हनिया' जैसे गीतों पर बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश के लोकगीतों की छाप है। 'मधुमती' फिल्म के 'जुल्मी संग आँख लड़ी', 'आ जा रे परदेसी मैं तो कब से खड़ी इस पार', 'चढ़ गयो पापी बिछुआ' और 'कंचा ले कंची ले लाजो' जैसे गीतों में अनेक प्रदेशों के लोकगीत जीवंत हो गए हैं।

अंतत: कहा जा सकता है कि शैलेन्द्र बहुआयामी प्रतिभा के धनी कवि-गीतकार थे, जिन्होंने मात्र 43 वर्ष की अल्पायु में ही अपने गीतों-कविताओं से दुनिया को चमत्कृत कर दिया। उनकी रचनाओं में जीवन के प्राय: सभी पक्ष आकर एकाकार हो जाते हैं। यह दुर्भाग्य की बात है कि एक साहित्य सृष्टा के रूप में उनका अभी तक निष्पक्ष मूल्यांकन नहीं किया गया है, जिससे साहित्याकाश में उन्हें जो स्थान मिलना चाहिए था, अब तक वे उससे वंचित रहे हैं। आज आवश्यकता है,

शैलेन्द्र के कृतित्व को नए सिरे से मूल्यांकित-नीर क्षीर विवेचित करने की ताकि इस महान रचनाकार को चिर काल से प्रतीक्षित साहित्यिक स्थान प्राप्त हो सके।

**संदर्भ स्रोत:**


1. रमा भारती, अंदर की आग, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2013
2. नलिन सराफ, सजन रे झूठ मत बोलो, जीवन प्रभात प्रकाशन मुंबई, प्रथम संस्करण,2014
3. इन्द्रजीत सिंह, धरती कहे पुकार के, वी॰के॰ ग्लोबल पब्लिकेशन्स प्राइवेट लिमिटेड, फरीदाबाद, प्रथम संस्करण, 2019
4. महाराष्ट्र के लोकप्रिय हिन्दी स्वर
5. www.hindeegeetmala.net
6. www.lyricsindia.net
7. nikhileiyer.wordpress.com.net
8. kavitakosh.org
9. songsofshailendra.com
10. शैलेन्द्र के सुपुत्र दिनेश शैलेन्द्र से हुई वार्त्ता
11. आर॰डी॰ एवं एस॰ए॰ डब्ल्यू॰ए॰ साइंस कॉलेज, अंधेरी मुम्बई में 15-16 फरवरी 2019 को 'मानवीय भावों के चितेरे शैलेन्द्र' विषय पर आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी।
12. प्रवासी कथाकार तेजेंद्र शर्मा से हुई वार्ता
13. सिने मर्मज्ञ प्रह्लाद अग्रवाल से हुई वार्ता
14. गीतकार डॉ॰ इरशाद कामिल से हुई वार्ता
15. फिल्म पटकथा लेखक कमलेश पाण्डे से हुई वार्ता
16. पार्श्वगायिका शारदा से हुई वार्ता
17. शैलेन्द्र मर्मज्ञ डॉ॰ इन्द्रजीत सिंह से हुई वार्त्ता।

# फिर भी शैलेन्द्र विस्मृत नहीं हो पाते...

*–सुनील मिश्र*

गीतकार शैलेन्द्र की याद किस रूप में करूँ यह सोच नहीं पाता हूँ ठीक से। मेरे जैसे भावुक व्यक्ति के लिए एक भावुक और संवेदनशील का स्मरण बहुत कुछ वेदना से भर देता है क्योंकि अक्सर मेरे मन में यह ख्याल आता है कि बहुत से गुणी लोगों, कोमल हृदय और संवेदनशीलों पर समय का ऐसा अचूक प्रहार होता है जहाँ पर थोड़ा सा भी कमजोर पड़ जाने या हार जाने-हताश हो जाने वालों के लिए इस दुनिया में ही रहना कठिन हो जाता है। मैं यहाँ ऐसे लोगों के नाम गिनाने नहीं जा रहा हूँ नहीं तो अवसाद अनुभूति की एक टाटपट्टी ही ऐसी बिछ जायेगी जिसमें अनेक विलक्षण लोग बैठे हमें दिख जाएँगे और हमारी आँखों के सामने चलचित्र की तरह उनकी छवियाँ आएँगी और चली जाएँगी। समय, समाज और लोग हश्र सभी का एक-सा ही करते हैं भूल जाने के मामले में फिर चाहे वह कोई भी हो। हम हृदयहीन इतना हो गए हैं कि बाद में याद करते भी याद नहीं आता कि कौन हमारी चेतना या प्रेरणा का हमारी दुनिया से इस तरह चला गया जिस तरह जाने के लिए वह कभी बना ही नहीं था।

शैलेन्द्र इसी तरह के इंसान थे जो समय के आगे हार गए अन्यथा उनकी क्षमताओं का कुछ भी नहीं बिगड़ा था और न ही गीतात्मक संवेदन सृजन प्रक्रिया का। सिनेमा की विफलता क्या गुरुदत्त और शैलेन्द्र जैसों के लिए जानलेवा हो सकती हैं यह प्रश्न इसी बात से कौंध उठता है। कहाँ एक समय वह था जब वे सिनेमा के प्रति नितांत उपेक्षा का भाव रखते थे। यह एक अजीब सी विरक्ति कही जाएगी जिसमें अचरज इस बात का भी भरा हुआ है कि आगे चलकर वे उसी सिनेमा का एक मनभावन लिरिकल हिस्सा भी बनते हैं। रावलपिण्डी में जन्में शैलेन्द्र का परिवार जब मथुरा आकर बस गया था उस समय कौटुम्बिक सरोकारों के कारण वे वहीं रह गए थे और अपनी पढ़ाई-लिखाई को भी वहीं अंजाम दिया था। साहित्य के बीच अपनी देह, मन और मस्तिष्क में अपनी फसल को एक तरह से सहेज रहे थे। यह शख्स वास्तव में कविताएँ, गीत और रचनाएँ लिखते हुए औरों की तरह काम नहीं कर रहा था बल्कि एक जमीन तैयार कर रहा था अपनी। विमल राय की अविस्मरणीय फिल्म दो बीघा जमीन में एक गाना है, धरती कहे पुकार के, बीज

बिछा ले प्यार के, मौसम बीता जाये, अपनी कहानी छोड़ जा, कुछ तो निशानी छोड़ जा, कौन कहे इस ओर, तू फिर आये न आये, मौसम बीता जाये...। इस तरह का गीत लिखते हुए एक रचनाकार भी अपने अल्पकालिक जीवन के आभासों या आगे चलकर आने वाली दुश्वारियों के बीच अपने भी आकस्मिक प्रस्थान की किसी भावभूमि से अवगत होगा, इसके बारे में हम क्या सोचते हैं...मुझे लगता है कि जीवन की क्षणभंगुरता को लेकर शैलेन्द्र के दार्शनिक मन्तव्य बहुत स्पष्ट या साफ होंगे जिसे जीना और गाना दोनों ही आसान नहीं है।

एक गीतकार है जो मथुरा में धौली प्याऊ की गली में रह रहा होगा। वहाँ से एक दिन रेलवे की नौकरी का स्थान्तरण इस गीतकार को मुम्बई की तरफ ले जाता है, वह मुम्बई जो खूब सारे सपने सजाकर ले जाने वाले का नेपथ्य ही विस्तृत कर देती है। मुम्बई जहाँ सफलता और विफलता के लाख सच्चे किस्से हैं। लोगों ने इस जगह पर फॉकामस्ती को भी अपनी क्षमताओं की हद तक जाकर महसूस किया है और पलायन भी किया है। लोगों ने इस जगह के वैभव और भाग्य तथा पुरुषार्थ के उन अपने में घटित होते समय को भी जिया है और उसमें मरे भी हैं। लेकिन मुम्बई तो मुम्बई है, उसमें यही खूबी भी है। भारतीय सिनेमा के सबसे बड़े शोमैन राज कपूर और शैलेन्द्र का रिश्ता जौहरी और हीरे का रिश्ता ही कहा जाएगा। यह रिश्ता साफगोई और साफबयानी के बीच ही तो बनकर चला आया जब सीधे और सधे हुए इस गीतकार को फिल्मी दुनिया के प्रति जरा सा भी आकर्षण न था। राज कपूर ने शैलेन्द्र को रचनापाठ करते हुए सुना था। हमारे लिए तो यह भी आश्चर्य का विषय ही होगा कि उस समय के प्रतिभाशाली युवा फिलमकार और नायक का साहित्य और लिरिकली ग्रेट के प्रति ऐसी कोई खोजबीन या हासिल की स्थितियाँ रहती होंगी। बहरहाल खरा सोना किसको, कब और कहाँ मिल जाते, कौन कब उसकी परख कर ले और कैसे उसके उत्कृष्ट को अपनी मान्यता के साथ जगत भी मान्यता बना दे, ऐसे उदाहरण राज कपूर ही थे जो अपने पिता को थिएटर के लिए देश-देश घूमते न केवल देखते थे बल्कि उनके साथ जाया करते थे। पृथ्वीराज कपूर के समकालीन इप्टा से जुड़े अनेक लेखक, कलाकार, रंगकर्मी पारस्परिक सानिध्य में रहा करते थे और सब तरह के संघर्ष में रचनात्मक एकजुटता के साथ प्रस्तुत होते थे। राज कपूर के मन में अपने पिता के साथ-साथ ऐसे लोगों के लिए भी बहुत

इज्जत रहा करती थी। यह जो रचनात्मक उदारता उनमें आई, उसी से उनको शैलेन्द्र, मुकेश, शंकर और जयकिशन जैसे लोग मिले जिन्होंने खुद राज कपूर की क्षमताओं को प्रकाशित करने में अपना बड़ा योगदान किया। शैलेन्द्र भी इप्टा के मंच की प्रतिभा थे।

राज कपूर जिस समय आग बना रहे थे उसी समय वे शैलेन्द्र से मिल चुके थे और वे चाहते भी थे कि शैलेन्द्र उनकी फिल्मों के लिए लिखें लेकिन वे किसी तरह अपने आपको फिल्मों से बचाये हुए थे। फिल्म आग के समय दोनों का परिचय हुआ था लेकिन एक दिन जरूरत ही शैलेन्द्र को राज कपूर के पास ले आई। यह और बाद का समय था और तब राज बरसात फिल्म बना रहे थे। एक तरफ राज, अब फिल्मों में सफलता के दरवाजे की तरफ जा रहे थे। यह संदर्भ कुछेक जगह लिखा है कि राज कपूर के घर जाने के लिए शैलेन्द्र निकले थे। उनके पास उनको देने के लिए कुछ गीत भी साथ थे, इस बीच रास्ते में पानी बरसने लगा। मुसलाधार बरसात में उनको मुखड़ा याद आया, बरसात में हम से मिले तुम सजन तुम से मिले हम, बरसात में। राज कपूर से मिलते हुए उन्होंने उनका यह मुखड़ा सुनाया और दोनों साथ हो गये। जो और गीत वे उनके लिए ले गये थे वे भी उन्होंने अपने पास रख लिए और उनको बरसात, श्री चार सौ बीस और आवारा में इस्तेमाल किया। यह राज कपूर की खूबी थी कि वे अपने साथ बहुत सकारात्मक ढंग से अपनी चाह की रचनाओं के लिए गीतकार में भी एक ही समय में हसरत जयपुरी और शैलेन्द्र में चयन कर सकते थे जिसका दोनों ही गीतकारों को कोई गुरेज नहीं रहा करता था, इसी प्रकार पार्श्व गायन में भी वे जानते थे कि कौन से गाने मुकेश से न गवा कर मन्ना डे या मोहम्मद रफी से गवाने हैं। एक साथ इतने श्रेष्ठ लोगों का सानिध्य भी राज कूपर ने प्राप्त किया लेकिन सभी के आपसी संबंधों की मधुरता वैसी ही रही, कोई स्पर्धा नहीं, किसी भी प्रकार का द्वेष नहीं।

गीतकार शैलेन्द्र का नाम नब्बे प्रतिशत राज कपूर, शंकर जयकिशन की टीम में बड़े फ्लो के साथ लिया जाता रहा है। इसका अर्थ यह नहीं कि इस टीम से बाहर शैलेन्द्र का सृजन आँका नहीं गया। उनके भीतर का सच्चा इंसान और गीतकार इतना सरल, सहज और संप्रेषणीय था कि उनकी रचनाओं को फिल्म में देखते सुनते मन स्वत: ही उसको ग्राह्य किए जाता था। वे विमल राय के भी पसंदीदा गीतकार थे

और सचिन देव बर्मन के भी, वे हृषिकेष मुखर्जी के भी पसंदीदा गीतकार थे और विजय आंनद के भी। गुरुदत्त के लिए भी उन्होंने लिखा और किशोर कुमार के लिए भी। विमल राय की फिल्म नौकरी का एक गीत जो किशोर कुमार पर फिल्माया गया है, छोटा सा घर होगा बादलों के छाँव में, आशा दीवानी मन में बंसरी बजाये। इसी गीत का पहला अंतरा, चांदी की कुर्सी में बैठे मेरे प्यारी बहना, सोने के सिंहासन में बैठे मेरी प्यारी माँ, मेरा क्या मैं पड़ा रहूँगा मम्मी जी के पाँव में, अपनी माँ और बहन के लिए देखे स्वप्न के साथ एक युवा अपने लिए क्या जगह सुरक्षित पाता है, मेरा क्या मैं पड़ा रहूँगा मम्मी जी के पाँव में। यही किशोर कुमार जब दूर गगन की छाँव में बनाते हैं तो उनको शैलेन्द्र की याद आती है। वे शैलेन्द्र को फोन करके बड़े आदर के साथ अपने घर में खाना खाने के लिए आमंत्रित करते हैं, शैलेन्द्र पूछते हैं कि और क्या बात है, तो किशोर बतलाते हैं कि एक फिल्म बना रहा हूँ दूर गगन की छाँव में। मन में है कि उसके गीत आप लिखें। तब शैलेन्द्र, किशोर से कहते हैं कि यह बात समुद्र किनारे टहलते हुए करना ज्यादा सार्थक होगा। दोनों मिलते हैं। किशोर बताते हैं कि एक फौजी की कहानी है जो अपने गाँव लौटता है तो अपना घर तहस नहस पाता है, पत्नी मर चुकी है, बेटा गूँगा हो गया है। शैलेन्द्र सुनते ही गुनगुना उठते हैं, कोई लौटा दे मेरे बीते हुए दिन, बीते हुए दिन वो मेरे प्यारे पलछिन। और किशोर कुमार उनको गले लगा लेते हैं। इस तरह शैलेन्द्र, किशोर कुमार के भी प्रिय हुए।

शैलेन्द्र की पहचान, उनका स्मरण और उनके अवदान को सचमुच कबीर, रहीम और रैदास के स्मरण के साथ याद किया जाना चाहिए। विमल राय के साथ उनकी फिल्मों की बड़ी श्रृंखला है। दो बीघा जमीन से हमने बात शुरू की थी। आगे मधुमति, परख, नौकरी से बन्दिनी तक गीतों का समुद्र अनुभूतियों का अथाह है सचमुच। प्रेम को लेकर, विरह को लेकर, स्थितियों को लेकर, संबंधों और रिश्ते-नातों को लेकर वे जिस तरह से विचार करते हैं, वह हमारे मन के कोने-कोने को जाकर छूता है और अपनी इच्छित जगह पर जाकर बैठ जाता है। बन्दिनी के गीत बरबस याद आ जाते हैं, मेरे साजन हैं उस पार... बर्मन दा ने जिस तरह इसको कंठ और आत्मा से गाया है, गहरे विचलन से भर देने वाली रचना, मन की किताब से तुम मेरा नाम ही मिटा देना, गुन तो न था कोई भी अवगुन मेरे भुला देना। कितने सादे सच्चे स्वीकार हैं। इसी फिल्म में बन्दिनियों के बीच का गाना, अब के बरस

भेज भैया को बाबुल, बैरन जवानी ने छीने खिलौने, और मेरी गुड़िया चुरायी, बीते रे जुग, कोई चिठिया न पाती, न कोई नैहर से आये रे...किसकी आँख भर न आयेगी, इसे सुनकर। शैलेन्द्र ऐसे गीतकार थे जिनको आम आदमी के जीवन और सपनों के साथ सीधा जोड़ा जा सकता है। उनके गीत कम से कम तीन पीढ़ियों की चेतना और धरोहर हैं। सचिन देव बर्मन और साहिर की जोड़ी जब टूटी थी तो सबसे बड़ा सहारा बने थे बर्मन का शैलेन्द्र और जब शैलेन्द्र नहीं रहे तो बर्मन एकदम टूट गए थे। जीवन दर्शन को लेकर जो गहरा बोध शैलेन्द्र के पास था, उसको और गहराई देकर अपनी आवाज से समृद्ध करना बर्मन दा को बहुत अच्छा लगता था। बन्दिनी में उनका गाया गीत मेरे साजन हैं उस पार के बाद विजय आनंद निर्देशित गाइड में वहाँ कौन है तेरा मुसाफिर जायेगा कहाँ... में उसी जीवन-मरण, उसी क्षणभंगुरता की बात कही गई है, कहते हैं ज्ञानी, दुनिया है फानी, पानी पे लिखी लिखाई, है सबकी देखी, है सबकी जानी, हाथ किसी के न आई, कुछ तेरा न मेरा, मुसाफिर जाएगा कहाँ...।

शैलेन्द्र प्रकृति के प्रति असीम अनुराग के गीतकार थे, सुहाना सफर और ये मौसम हँसी। इसी तरह अभावों में सपने तजे नहीं जाते, इस बात को बूट पॉलिश के इस गीत में, चली कौन से देस, गुजरिया तू सज धज के। इस गीत को गाया तलत महमूद ने है पर दिलचस्प कि परदे पर यह गीत फिल्माया शैलेन्द्र पर गया है। शैलेन्द्र जिन्होंने मित्रता में कुछ भूमिकाएँ भी निभाईं, बूट पॉलिश के अलावा नया घर, मुसाफिर आदि में।

क्या तीसरी कसम त्रासदी के जिक्र के बिना शैलेन्द्र पर बात पूरी न होगी, बड़ा कठिन लगता है, हालाँकि बहुत से लोगों ने अपनी टिप्पणी में यह बात कही होगी। हमारे सिनेमा के इतिहास में क्या वह बात है जब यह निष्ठुर समाज किसी के प्राण पखेरू उड़ जाने के बाद संवेदनशील हो उठता है। पाकीजा को सफल होना था मीना कुमारी के न रहने के बाद। प्यासा और कागज के फूल की क्लैसिकी और उत्कृष्टता की चर्चा होनी थी, गुरुदत्त के चले जाने के बाद। इसी तरह शैलेन्द्र भी जब मन और आत्मा लगाकर तीसरी कसम बनाकर सबके सामने लाये तो उसको सफलता न मिली। उनके न रहने के बाद आज तक जानकार तीसरी कसम की चर्चा किए बिना अघाते नहीं हैं। एक फिल्मकार रवीन्द्र धर्मराज की चक्र भी उनके नहीं रहने

के बाद प्रदर्शित और चर्चित हुई। तीसरी कसम में निर्देशक का परिश्रम है, अभिनय की श्रेष्ठता है, कहानी अनमोल है, फिल्मांकन कमाल का है, एक-एक गीत में जीवन दर्शन व्याप्त है, गायन और संगीत रचना अविस्मरणीय है। इसके बाद भी उस समय 1966 में यह ग्राह्य न हुई और शैलेन्द्र के अवसाद में जाने, बीमार हो जाने, कर्ज में डूब जाने और अंततः नहीं रहने के बाद से आज तक हर संजीदा और गंभीर जानकार से लेकर दर्शक तक इसकी प्रशंसा किए बिना नहीं थकता। हमें इस पूरी मनःस्थिति पर दरअसल विचार करने की जरूरत है, शैलेन्द्र और उन जैसे प्रतिभाशाली, प्रतिभासंपन्न सर्जकों का स्मरण करते हुए जिनका अवसान बाद में एक सामाजिक प्रायश्चित की तरह भी याद आता है और हमारे पास इस बात को स्वीकार करने के अलावा कोई रास्ता नहीं होता कि दरअसल हम सब लंबे समय से निरंतर चले आ रहे संवेदनहीन समय का ही हिस्सा हैं।

# शैलेन्द्र : इप्टा के गीतकार

*–रमेश चौबे*

शैलेन्द्र जी मेरे लिए मेरे बड़े भाई स्वर्गीय शालीग्राम चौबे से जुड़ा नाम कहे जा सकते हैं जो कि शैलेन्द्र के बड़े साले बी०के०राव के साथ झांसी में रेलवे में गार्ड थे। रेल कर्मचारी होने के नाते और रेल कर्मचारियों की ट्रेड यूनियन के आंदोलनों से भी जुड़े होने के कारण मेरे भैया और शैलेन्द्र के घरेलू संबंध थे। शैलेन्द्र के ससुर भजनलाल जी झांसी में रेलवे स्टेशन मास्टर थे। वह दर्शन व अध्यात्म के विद्वान थे। उनकी शहर में प्रतिष्ठा थी। उनसे भी मेरे बड़े भाई के अच्छे संबंध थे।

मुझे याद है, मैं अपने बड़े भाई के साथ शैलेन्द्र की ससुराल मसीहागंज गया था। मसीहागंज, झांसी शहर के सीपरी बाज़ार क्षेत्र का एक मुहल्ला है। उन दिनों शैलेन्द्र की ख्याति प्रगतिशील जनगीतकार के नाते इप्टा के माध्यम से हो रही थी। देश-विदेश के जन आंदोलनों से भी मान्यता मिलने से उनके बारे में देश-विदेश की पत्र-पत्रिकाओं में लिखा जाने लगा था। उन्हें कुछ पुरस्कार भी मिल चुके थे। इस नाते खासतौर पर देश के बुद्धिजीवियों का एक वर्ग उनका आदर करता था। शैलेन्द्र 'इण्डियन पीपुल्स थिएटर एसोसिएशन' के प्रमुख गीतकार थे।

**'हर जोर जुल्म की टक्कर में हड़ताल हमारा नारा है।''** शैलेन्द्र का ही दिया हुआ नारा है।

प्रगतिशील लेखक संघ के गठन और विकास में उनका विशिष्ट योगदान रहा। भैया ने उनसे मेरा परिचय यह कहते हुए कराया था– ''यह मेरा छोटा भाई तो है ही, पार्टी में जूनियर साथी भी है। इसे इलाहाबाद जेल से ही हाईस्कूल परीक्षा देनी पड़ी थी।''

उन दिनों शैलेन्द्र रेलवे में चार्जमैन नियुक्त हो चुके थे। बम्बई में उन्हें न तो रेलवे का कोई आवास मिल सका था और न ही किराये पर खोली मिल पा रही थी। उनकी पत्नी श्रीमती शकुन्तला देवी के पत्र मायके झांसी से पहुंच रहे थे कि अपने पास बम्बई ले जाएं। पत्नी सहित रहने के लिए कम-से-कम एक खोली की जरूरत और खोली के लिए पगड़ी चाहिए थी। पगड़ी देने की हैसियत उनकी नहीं थी। उन्होंने भावुक होकर पत्नी को काव्यमय पत्र लिखा। जिसकी दो पंक्तियां थीं–

''यहां पगड़ी भी हज़ार की, दो हजार की हम क्या देंगे, जिनकी ज़िंदगानी उधार की''

शैलेन्द्र के लिए मेरा ठेका था कि जब वे झांसी आएं तो मैं उनके सम्मान में गोष्ठियां कराऊं। एक गोष्ठी के बाद भैया ने शैलेन्द्र से कहा– ''अरे भई शैलेन्द्र, यह रमेश भी बम्बई जाना चाहता है।''

बम्बई के मायने जाहिर था, फिल्म से संबंधित बात। शैलेन्द्र मुस्कराये और मुझसे बोले– ''मुझे उस दुनिया में पहुंच जाने दो, फिर तुम्हें भी बुला लूंगा– फिर रुके और बोले– ''हो सकता है, मैं दो-चार महीने में पहुंच जाऊं और आप लोग इस संबंध में पढ़ो-सुनो, क्योंकि मुझे राजकपूर की पहली फिल्म 'आग' के गीत लेखन का अनुबंध मिल रहा है। लेकिन अभी मैं निश्चित नहीं हूं।''

शैलेन्द्र ने बाद में झांसी की मुलाकातों में बताया कि उन्होंने 'आग' का अनुबंध अस्वीकार कर दिया था। किन्तु अपने साथियों से परामर्श के बाद वे राजकपूर की दूसरी फिल्म 'बरसात' से लेकर अंतिम समय तक जुड़े रहे और प्रगतिशील लेखक संघ के शंकर शैलेन्द्र, शैलेन्द्र के नाम से जाने गये।

कवियों के सहयोग से झांसी से प्रकाशित काव्य संकलन 'गाये अनगाये स्वर' भवानी प्रसाद मित्र और मेरे सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ था जिसमें शैलेन्द्र की पांच मौलिक रचनाएं थीं और उन्होंने सौ रुपये का मनीऑर्डर भेजकर सहयोग दिया था। शैलेन्द्र जी चाहते थे कि बुन्देलखंड के कवियों के इस पहले संकलन का बम्बई में भी प्रसार हो और फिल्म वाले भी साहित्यिक रचनाओं का लाभ उठायें, जिसमें नये कवि राष्ट्रीय मानचित्र पर उभर सकें।

राहुल सांकृत्यायन रोग शैया पर थे। देश भर से उनके लिए आर्थिक सेवा जुटाई जा रही थी। इसी संदर्भ में प्रगतिशील लेखक संघ, झांसी ने भी एक कवि सम्मेलन का आयोजन किया था। शैलेन्द्र मुख्य कवि थे। शैलेन्द्र जी की स्वीकृति मुझे मिल गई थी। जिस दिन कवि सम्मेलन था, उसी रोज वे फाइव डाउन बम्बई-फिरोज़पुर पंजाब मेल से झांसी पधारे। कार्यक्रम की व्यवस्था के कारण (और, इसलिए भी कि झांसी में उनकी ससुराल थी, काफी लोग उन्हें स्टेशन लेने पहुंच रहे थे)। शैलेन्द्र जी को स्टेशन से लेने की औपचारिकता मैं स्वयं नहीं निभा सका। मुझे

मैंने संकोच से स्पष्टीकरण दिया, ''कार की व्यवस्था की तो थी, परंतु आपकी तरफ से विलम्ब हुआ तो कार वाले चले गये। अब तीन तांगे लाया हूं।''

यह सुनकर उनके साथियों ने मुंह बिदकाया। पर शैलेन्द्र जी यह कहते हुए तैयार हो गये कि भई तांगे में घोड़े तो बढ़िया होंगे। इस प्रकार मैं उन्हें लेकर कवि सम्मेलन में जा पाया।

शैलेन्द्र जी रात दो बजे तक कवि सम्मेलन में छाये रहे। यह शैलेन्द्र जी का ऐसा समय था, जब वे सिने जगत में प्रमुख गीतकार के नाते सर्वत्र छाये हुए थे। श्रोता उनसे लोकप्रिय सिने गीतों की मांग करते रहे किन्तु उनका यह तादात्म्य ही था कि उन्होंने राहुल जी के स्वास्थ्य कामना के कवि सम्मेलन में सामयिक प्रबुद्ध कविताएं सुनाकर श्रोताओं को मनमुग्ध कर लिया।

मैं उनकी लोकप्रियता के शिखर काल में बम्बई पहुंचा। मेरे साथ मेरे बड़े भाई के एक रेलकर्मी साथी थे। मुझे लग रहा था कि शैलेन्द्र जी मुझे पहचानेंगे कैसे। कई साल बीत चुके हैं। खार स्थित 'रिमझिम' नामक कोठी के ग्राउण्ड फ्लोर पर उन दिनों शैलेन्द्र का निवास था। कमरे में जैसे ही पहुंचा तो एक व्यक्ति सोफे पर बैठा था। मैंने सहमते हुए कहा, ''शैलेन्द्र जी से मिलना है।'' मुझे देखकर वह व्यक्ति उठा और बोला– ''मैं ही शैलेन्द्र हूं, आप कहां से आये हैं?''

शैलेन्द्र को सामने पाकर में हत प्रभ था कि मैं उन्हें नहीं पहचान पाया।

मैंने दीन भाव प्रदर्शित करते हुए कहा, ''मैं झांसी से आया हूं, रमेश चौबे ...।

बस, इसके आगे मैं कुछ कहूं, शैलेन्द्र जी ने आगे बढ़कर मुझे अंक में भर लिया और गदगद भाव से बोले– ''अरे रमेश भाई, बहुत सालों बाद मिले। तुम्हारी याद आई। आगरा से राजेन्द्र सिंह रघुवंशी द्वारा सम्पादित 'अभिनय' में तुम्हारा गीत 'कब तक पश्चिम के डाकू पूरब की लाली लूटेंगे' पढ़ने को मिला।

शैलेन्द्र द्वारा इस तरह मेरे गीत की पंक्तियों के माध्यम से मिलने पर मेरा मनोबल बढ़ गया और मैं बैठ गया। शिकायत करने लगे कि दूसरी जगह क्यों ठहरे हो। साहित्य, इप्टा, सिनेमा में हिन्दी गीतों के स्कोप आदि पर चर्चा की। उन्होंने

अपनी नई रचनाएं सुनाई। मुझसे सुनीं। पाब्लो नेरूदा के रिकॉर्ड सुनाए। यह तय हुआ कि अगले दिन साहिर और मजरूह को बुलाकर एक गोष्ठी रखी जाएगी।

उन्होंने बताया कि उन्हें एक प्रोड्यूसर व संगीत निर्देशक का इंतजार था। मैंने उचित समझा कि अब उनसे विदा ली जाये। वे हमें कार से खार स्टेशन छोड़ने को तैयार हुए। हमने उन्हें रोका कि आपका कॉमर्शियल एप्वाइंटमेंट है तो हुमककर बोले, ''अरे भई हम आपके पुराने कामरेड हैं। पुराने साथी हैं। हम आपको स्टेशन तक छोड़ने जाएंगे, बाद में उन्हें देखेंगे।''

अगले दिन गोष्ठी के बाद मैं और शैलेन्द्र रह गये तो मैंने पूछ लिया– 'शैलेन्द्र जी, आपको याद है, जब झांसी स्थित डॉ० वृन्दावनलाल वर्मा के स्वाधीन प्रेस की कवि गोष्ठी से हम लोग वापस आ रहे थे तो आपने चाय की फरमाइश की थी। होटल पर बैठकर हम चाय पी रहे थे तो रेडियो पर अचानक गीत थिरका था.... 'पतली कमर है, तिरछी नज़र है'।

आपने बड़े संकोची भाव से कहा था, 'फोरच्यूनेटली ऑर अनफोरच्यूनेटली.... आई हैव कम्पोज्ड दिस सांग।.... किन्तु अब लोकप्रियता के शिखर पर पहुंचकर आपकी मनः स्थिति क्या है?''

शैलेन्द्र जी ने तमककर जवाब दिया था, ''आय एम रादर प्राउड बीइंग ए लिरिसिस्ट।''

ज्ञातव्य है कि फिल्म 'बरसात' के लिए उनका पहला अनुबंध था। पहले दो गीतों ने ही धूम मचा दी थी। 'बरसात में हमसे मिले तुम सजन...' गीत लोगों की जुबान पर चढ़ गया था। जिसकी लोकप्रियता के आधार पर शंकर शैलेन्द्र, शैलेन्द्र बने। ('समहुत' पत्रिका, अक्टूबर, 2019 से साभार)

[कथाकार ब्रजमोहन जी (मो॰9415614552) द्वारा श्री चौबे जी से बातचीत पर आधारित लेख]

# लोकसिद्ध कवि : गीतकार शैलेन्द्र

*– डॉ० ब्रज भूषण तिवारी*

किसी रचना के उत्कृष्ट होने के लिए उसका 'सामान्य जन के बारे में' होना जितना जरूरी है उतना 'सामान्य जन के लिए' होना नहीं। साहित्य 'शिक्षित जन' के लिए होता है और इस शिक्षित का अर्थ भी महज स्कूली होना नहीं है। 'वह तोड़ती पत्थर' के श्रम-बिन्दुओं वाली मज़दूरनी के लिए निराला की वह कविता नहीं है, उस कविता के करुण आक्रोश से उसको कोई लेना-देना नहीं है। वह उस कविता में है लेकिन उसके लिए वह कविता नहीं है। 'राम की शक्ति पूजा' के राम का हार-हार जाने वाला और दैन्य दुर्बलता का नाम तक नहीं जानने वाला मन भी सामान्य जन का ही है, 'गोदान' के होरी का ही है; लेकिन 'राम की शक्ति पूजा' कविता न सामान्य जन की ही है, न सामान्य शिक्षित के लिए ही। लेकिन इस तथ्य से इन रचनाओं की मूल्यवत्ता नहीं घटती। इसके विपरीत 'साढ़े तीन बजे मुन्नी जरूर मिलना' गीत शुद्ध विलास की निकृष्टतम कामुकता के तमाम छिछलेपन और भौंडेपन के बावजूद हलवाहे-चरवाहे-रिक्शेवाले– सबका कण्ठहार बना हुआ है। इस गीत के असाधारण प्रचार-प्रसार के बावजूद (ध्यान रहे कि 'साढ़े तीन बजे' टुकड़े को अमिताभ बच्चन की एक फिल्म के गीत में भी इस्तेमाल किया गया है।) इसकी कोई मूल्यवत्ता नहीं बनती है। ऐसी स्थिति में यदि कोई रचना सामने आती है जो न सिर्फ आम आदमी की पीड़ाओं, संघर्षों, इच्छाओं के 'बारे में' है बल्कि साथ ही वह उनके 'लिए' भी है, स्वयं में उनके लिए जगह बनाती है और उनमें अपने लिए जगह बना लेती है तो यह रचना, उस रचनाकार की बहुत बड़ी उपलब्धि है और इस रचना-पराक्रम को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

शंकर शैलेन्द्र इसीलिए बड़े रचनाकार हैं कि वे अपनी रचनाओं में हिन्दुस्तान के आम आदमी के बारे में उस आदमी से ही बात करने में समर्थ हैं। इस संदर्भ में शंकर शैलेन्द्र और उनके कवि-कर्म पर संवाद करना इसलिए तो और भी प्रासंगिक है कि आज पाठक और रचनाकार के बीच की दूरी निरंतर बढ़ती जा रही है। इस प्रकार की चर्चा शुरू हो चुकी है कि साहित्य अगर विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में न होता तो उसका धड़कना कब का बंद हो चुका होता। आखिर वे कौन से तत्व हैं जो कवि और कविता को पन्नों से उठाकर लोगों के घर-चौपाल तक लिए जाते हैं?

इसके उत्तर के लिए हमें तुलसी और कबीर तक बार-बार जाना होगा और शंकर शैलेन्द्र जैसे गीतकारों को भुलाने का प्रमाद दुबारा नहीं होने देना होगा।

शैलेन्द्र एक ऐसे रचनाकार हैं जिन्हें प्राध्यापकीय व्याख्याओं, सूत्र, टीका आदि की जरूरत ही नहीं रही है। उनकी उपेक्षा का एक प्रमुख कारण यह भी है कि उनके कहने में कोई ऐसी गुत्थी नहीं है जिसे सुलझाकर दिग्गज आलोचक अपनी प्रज्ञाललाट के पसीने पोंछते हुए उठें। जो सहज ही समझ में आ जाता हो उसके बारे में बात करने में कौन अपनी मेधा खर्चता फिरे? मुक्तिबोध जैसे कवि आलोचकों को जगह देते हैं, शैलेन्द्र के दरवाजे पर उन्हें अपनी पूछ होती नहीं लगती। मुक्तिबोध या अज्ञेय की कविताओं पर बात करके समीक्षक गुरु-गौरव से भर सकता है, शैलेन्द्र पर बात करके कोई कौन-सा तीर मार लेगा? 'गहि न जाइ अस अद्‌भुत बानी' वालों के गुणग्राही तो मिल जाते हैं, 'जिमि मुख मुकुर मुकुर निज पानी' और 'भाखा बहता नीर' वालों को कौन पूछता है! वस्तुतः शंकर शैलेन्द्र उन रचनाकारों में से हैं जिनकी रचनाएं पाठकों से सीधे संवाद कर लेती हैं। बीच में किसी अध्यापक की, किसी बिचौलिये की जरूरत नहीं होती। लेकिन आलोचक के लिए फिर भी जग है, यदि वह आलोचना को महज अध्यापन ही नहीं मानता। रचना और पाठक के सीधे संवाद की आवश्यक शर्तें और संप्रेषण के खतरों से जूझने की कला शैलेन्द्र जैसे रचनाकारों से ही सीखी-सिखाई जा सकती है।

शैलेन्द्र के गीतों में विषय के प्रति उनकी निष्ठा निरंतर बनी रहती है। वे जन-जीवन के प्रति सहानुभूति-मात्र, मनुष्य और मनुष्यता की अंतिम विजय के प्रति आस्था और विश्वास-मात्र, शोषकों-पूंजिपतियों के प्रति अपार घृणा-मात्र रखने वाले गीतकार नहीं है। उनके गीतों के पात्र अपने जीवन के संपूर्ण दुख-सुख, दिन-रात के साथ उनके गीतों में आते हैं, मात्र आंदोलन के ही आलोड़न-विलोड़न के साथ नहीं:

**नई-नई शादी है लेकिन**
**बटुए-सी दुल्हन को लेकर**
**सिर्फ चार दिन साथ रह सका**
**छुट्टी कम थी, काम अधिक है**
**फिर सर्विस भी सरकारी है!**

अपने छोटे परिवार की चिंता से शुरू होकर भी शैलेन्द्र अक्सर बड़े परिवार की चिंता से जुड़ जाते हैं। 'नंगे घुटने घिसने' और 'अधभूखे सोने' की स्थिति में केवल तभी तक नहीं रहना है जब तक मकान नहीं बन 'जाता', तब तक रहना है जब तक मकान नहीं बन 'जाते', यह बहुवचन महत्वपूर्ण हैः

**तब तक यों ही पिसना होगा**
**नंगे घुटने घिसना होगा**
**अधभूखे ही सोना होगा**
**शादी तो हो गयी**
**बनेंगे जब मकान तब गौना होगा!**

शंकर शैलेन्द्र की एक विशेषता यह है कि वे व्यंग्य को बहुधा मूर्त्तन और गोचरता के माध्यम से प्रखर करते हैं। उनके व्यंग्य तक पहुंचने में कठिनाई नहीं होती। 'देशभक्ति के लिए आज भी सजा मिलेगी फांसी की' जैसी विडम्बना की जब वे बात करते हैं तो कुछ शाश्वत किस्म की सर्व सामान्य टिप्पणियां भर करके नहीं रह जाते बल्कि 'कॉमनवेल्थ कुटुम्ब देश को खींच रहा है मंतर से' जैसे प्रत्यक्ष तथ्यों का उपयोग करते हैं। यहां 'कुटुम्ब' के प्रयोग से 'कॉमनवेल्थ' का न सिर्फ हिन्दीकरण बल्कि हिन्दुस्तानीकरण कर दिया गया है और इस तरह गीत में इसे सहज ही खपा लिया गया है। फिर इस अभिधात्मक उक्ति को 'मंतर' शब्द साधारणीकरण की असाधारण शक्ति के साथ 'व्यंग्य' बनाता है। ओझा-गुनियों के माया-प्रपंच में घाव की तरह पका भारतीय जनमानस इस 'मंतर' का अर्थ खूब समझता है। यह मंतर कॉमनवेल्थ के प्रति भारतीय शासनतंत्र के आकर्षण को प्रत्यक्ष कर देता है। इस कॉमनवेल्थ की खबर अपने दूसरे गीत में भी शंकर शैलेन्द्र खूब लेते हैं—

**बोली बदल गयी है बात वही है सारी**
**हिज मैजस्टी छठे जॉर्ज की लंबरदारी**
**कॉमनवेल्थ कुटुम्ब वही चर्चिल की यारी**
**परदेशी का माल सुदेशी पहरेदारी!**

**या**

**उनका कॉमनवेल्थ कि जैसे दो धारी तलवार**
**एक वार में हमें जिलावें करें एक से ठार**
**घटे पौण्ड की पूँछ पकड़कर रुपया मांगे भीख**
**आग उगलती तोप कहीं पर कहीं शुद्ध व्यापार**

मजदूर आंदोलनों का सर्वाधिक लोकप्रिय नारा 'हर जोर-जुल्म की टक्कर में हड़ताल हमारा नारा है' शंकर शैलेन्द्र का एक गीत है। इस तथ्य से आज के उन मजूदरों में से शायद ही कुछ लोग अवगत हों जो इस नारे के साथ अपने मनोबल को निरंतर ऊंचा उठाए रखते हैं। यही वह जगह है जहां 'हम नहीं बोलेंगे बात बोलेगी' जैसी स्थितियों का साक्षात होता है। यही वह जगह है जहां से कोई गीत लोकगीत बनने की तरफ मुड़ जाता है, वह लोकगीत जिस पर किसी एक व्यक्ति का दावा नहीं होता, पूरे लोक का होता है। यही वह जगह है जहां 'छापक पेड़ छिउलिया' जैसे गीत होते हैं, उनको गाते हुए कंठ होते हैं, उन गीतों का शब्दकार नहीं होता।

शंकर शैलेन्द्र की मुख्य काव्य-वस्तु गरीब, शोषित, उत्पीड़ित और जीवन के लिए संघर्ष करता हुआ मजदूर है। वे स्वयं एक मजदूर थे—अपने अधिकारों के लिए संघर्षशील मजदूर। उनकी जीवन-स्थितियों पर ध्यान दें तो उनका जीवन उनकी कविताओं-गीतों के साथ अनुस्यूत मिलेगा। कह सकते हैं कि उनकी कविताएं सबसे पहले खुद उनके बारे में हैं लेकिन उनमें आत्मग्रस्तता नहीं है, आत्मविस्तार है। उन्हें उनका स्वान्तः सुख हासिल होता है उन लोगों के सुख में, उन लोगों के दुख और उनकी संघर्षशीलता को वाणी देने में जिनके बीच वह थे, जिनके दुख, जिनकी समस्याएं उनकी अपनी थीं। यही कारण है कि उन्हें उस लोकप्रियता का एक भरपूर हिस्सा मिला जो लोकसिद्ध कवियों को हासिल होता है।

यह ध्यातव्य है कि शंकर शैलेन्द्र की कविता में किसान अनुपस्थित हैं और हैं भी तो नाम ही भर केः

**चर्चिल मांगे खून मजूर किसानों का**

इसी तरह गांव और गांव से जुड़ी तमाम समस्याओं से शंकर शैलेन्द्र का काव्य-संसार वंचित है। लेकिन सच पूछिए तो अभिव्यक्ति की यही ईमानदारी उन्हें एक विश्वसनीय कवि बनाती है। किसान-जीवन का अनुभव उन्हें नहीं था और ऐसी स्थितियों को यदि उन्होंने अपनी काव्य-वस्तु नहीं बनाया तो यह उसकी सच्ची और खरी ईमानदारी ही कही जाएगी। प्रगतिशील कवि अक्सर गरीबों-मजलूमों का मसीहा बनने के चक्कर में ऐसी गलती कर जाते हैं। हाथ लगती है निष्प्राण गर्जन और प्रलाप तत्व से भरी हुई हास्यास्पद रचनाएं।

शैलेन्द्र की काव्य-वस्तु को ठीक-ठाक पकड़ने के लिए उनकी काव्य-प्रेरणा को समझना जरूरी है। उनके काव्य की प्रेरणा है– ''कोटि-कोटि कंठों की व्याकुल विकल पुकारें' और 'अम्बर की छाती बिदारनेवाली नवयुग की ललकारें'। उनकी कविता मे जो करुणा है, जो व्यथा है, उनके गीतों में वह इन्हें 'कोटि-कोटि कंठों की व्याकुल विकल पुकारें' सुन सकने के सामर्थ्य के चलते। उनकी कविता में जो आशा, विश्वास, संजीवनी शक्ति, उत्साह और मस्ती है वह इन्हीं 'नवयुग की ललकारों' को सुन सकने के सामर्थ्य के चलते। वे साफ-साफ दूर भागते दुश्मनों को देख रहे हैं। दुश्मनों को दूर भागने का विश्वास उनकी कविता में व्यंग्य की धार देता है। जीत के विश्वास के बिना व्यंग्य नहीं किया जा सकता; विश्वास के अभाव में तो व्यंग्य एक असमर्थ रुदन की शक्ल अख्यितार कर लेता है।

उनकी कविताओं पर सरसरी निगाह डालते ही साफ हो जाता है कि भूख, गरीबी, रोटी, कपड़ा, मकान, बेरोजगारी, हड़ताल, आंदोलन, मांग, बोनस, पगार, महंगाई, नारे, संघर्ष, समझौते, मौकापरस्ती, एकता, परिवर्तन, शोषण, सरकार, नेता, साथी, पत्नी, रूस, चीन, ब्रिटेन, अमेरिका, तेलंगाना विद्रोह, गांधी, नेहरू, लेनिन, चर्चिल, स्तालिन, आजादी जैसे सभी चीजें, स्थितियां, स्थान और लोग उनकी कविता के विषय बने हैं।

शंकर शैलेन्द्र के फिल्मी गीतों के विषय भी कुछ व्यापकता और कलात्मकता के साथ मूलतः और मुख्यतः यही हैं। बेघरबार उत्पीड़ित लेकिन स्वाभिमानी, मस्त और फक्कड़, कुलगोत्र हीन और आवारा लेकिन हंसने और उससे भी ज्यादा हंसानेवाले पात्र उनके गीतों में अधिक लोकस्मरणीय होकर उभरे हैं। रिक्शेवाले और जूता पॉलिश करने वाले वहां भी हैं। उनके फिल्मी गीतों में मनुष्य और उसका अंतरंग संपूर्णता के साथ अधिक प्रत्यक्ष हुआ है। उसकी धर्म-भावना, उसका प्रेम, उसकी इच्छाएं और शिकायतें, उसका उत्साह और रह-रहकर पराजयबोध– मानवीयता के अनेक पक्ष उनके फिल्मी गीतों में अपेक्षाकृत अधिक विश्वसनीयता के साथ उभरे हैं। लेकिन सर्वत्र प्रगतिशीलता की एक ठेठ भारतीय धारा प्रवाहित है। यह 'मेरा जूता है जापानी... लेकिन दिल है हिन्दुस्तानी' जैसे दिलो-दिमाग दोनों को छू लेने वाले अंतर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि प्राप्त गीतों से ज्यादा स्पष्ट है। प्रेम फिल्मों का सबसे प्यारा, पुराना और प्रगल्भ विषय रहा है। शैलेन्द्र ने भी प्रेम

को लेकर सबसे अधिक गीत लिखे हैं और उनमें से कुछ तो उन्हें लिखने पड़े भी हैं। लेकिन अधिकांशतः प्रेम के जिन विभावानुभावव्यभिचारियों की वे चर्चा करते हैं या वैसे प्रसंगों की उद्भावना करते हैं उससे जीवन में प्रेम की अनवरत अनिवार्यता का बोध होता है, उत्तेजना के क्षणिक उन्माद का नहीं।

शिल्प के धरातल पर शैलेन्द्र मुख्य रूप से उसकी चिंता करते हैं जिस पर उन्हें अपनी बात पहुंचानी होती है। काव्यवस्तु की जटिलताओं में उतरने के बावजूद वे इसीलिए संप्रेषण सहज बनाए रख पाते हैं। उत्कृष्ट कविता की पहचान इसी काव्यवस्तु की जटिलता और संप्रेषण की सहजता का समन्वय है।

शंकर शैलेन्द्र के रचना-संसार में 'न्यौता और चुनौती' कविता-संग्रह के अतिरिक्त लगभग 800 फिल्मी गीत हैं जिनका कोई संग्रह नहीं है। शंकर शैलेन्द्र मूलतः गीतकार थे और 'न्यौता और चुनौती' की भी अधिकांश रचनाएं गीत ही हैं। गीत और नाटक जैसे साहित्य-रूप जन-जुड़ाव की तीव्र रचनात्मक आकांक्षा से ही जन्म लेते हैं। काव्यशास्त्रीय शब्दावली में इसे काव्यहेतु कह सकते हैं। जनता से जुड़ने की इच्छा हेतु है और उसके भावों और विचारों का परिष्कार करना प्रयोजन। नुक्कड़ नाटक तो इस हेतु और प्रयोजन के साक्षात् उदाहरण हैं ही लेकिन जैसा कि डॉ० मैनेजर पाण्डेय कहते हैं, ''आधुनिक हिंदी कविता का इतिहास गवाह है कि जब-जब जन-आंदोलन तेज हुए हैं और कविता आंदोलनों की ओर मुड़ी है तब-तब गीत रचना की गति में तेजी आयी है। जन-आंदोलन गीत-रचना की उर्वर भूमि होते हैं।''

कहना यह है कि साहित्य का हेतु और प्रयोजन जब जनता से, खासकर के संघर्षरत जनता से सीधे जुड़ा होता है तब रचनाकार जिस काव्य-रूप को उपलब्ध करता है वह वस्तुतः उसकी उपलब्धि नहीं उस संघर्ष की उपलब्धि होता है, संघर्ष के पक्ष और विपक्ष, उत्साह और त्रास की उपलब्धि होता है। इस तथ्य से शंकर शैलेन्द्र का रचना-कर्म जुड़ता तो है ही, औरों के लिए उदाहरण भी बनता है। डॉ० मैनेजर पाण्डेय के शब्दों में, ''जन-आंदोलन से गीत के आत्मीय संबंध का बहुत अच्छा उदाहरण शंकर शैलेन्द्र के गीत हैं। शैलेन्द्र के गीत तेलंगाना आंदोलन की देन हैं..... आज हिंदी में किसान जीवन के गीतकार अनेक हैं, लेकिन मजदूरों के

संघर्ष और आंदोलन का शैलेन्द्र से बेहतर गीतकार आज भी कोई दूसरा दिखाई नहीं देता।''

बहुजन समाज की दुख, दुख से उसके दैनिक युद्ध, युद्ध में जय या पराजय, उसकी अदम्य जिजीविषा और मुट्ठी भर लोगों की बलिवेदी पर उनका नित्य नरमेध रचनाकार को किस हद तक सर्जनशील करता है यह उसकी रचना में विपक्ष के प्रति आक्रोश की तीव्रता से स्पष्ट होता है। शंकर शैलेन्द्र के ही शब्दों में, ''गरीबी मेरे देश के नाम के साथ जोंक की तरह चिपटी है। नतीजा, हम सब एक हो गए– कवि, मैं और मेरे गीत और विद्रोह के स्वर गूंजने लगे– पचास-पचास हजार की भीड़ के बीच। सभाओं और जुलूसों में गाए हुए इस काल के गीत और 'नया-साहित्य' और 'हंस' में छपी इस काल की कविताएं अति उग्रवादी अवश्य थीं लेकिन इनके माध्यम से जन-जीवन और रुचि को समझने का अवसर मिला और जन-जीवन के पास रहने की आदत पड़ी...।''

देखना यह होगा कि यह आक्रोश शब्दों से सम्बद्ध है या अनुभव और अनुभूति से? यह सिर्फ वाचा है, सिर्फ मनसा वाचा या मनसा कर्मणा? यह भी देखना होगा कि कवि अपने आक्रोश को शब्द-गुम्फन, उत्कट समास-योजना, श्रुतिकटुता आदि के शास्त्रीय सहारे से अभिव्यक्त करने की कोशिश करता है कि उसके आक्रोश में वही तद्भव और तद्देशीयता है, वही भाषा और लहजा है जो उनका है जिनके पक्ष में कवि खड़ा है। शंकर शैलेन्द्र का जीवन-वृत्त भी यह सिद्ध करता है कि मजदूरों के लिए गीत वे उनके साथ सड़क पर उतर कर लिखते हैं। 'हर जोर जुल्म की टक्कर में हड़ताल हमारा नारा है' जैसी गीत-पंक्तियों में सत्य और संकल्प की शक्ति है; खून की नदियां बहा देने, लाशों का अम्बार लगा देने, ईंट-से-ईंट बजा देने जैसे शब्द-कथन नहीं। शैलेन्द्र का आक्रोश शाब्दिक नहीं हैं, इसका प्रमाण उनकी गीत-पंक्तियों का आज भी मजदूर-आंदोलनों में उसी शक्ति-संपन्नता के साथ प्रयुक्त होना भी है। निश्चय ही नागार्जुन की तरह शैलेन्द्र के कवि का स्थायी भाव प्रतिहिंसा ही है और वे इस प्रतिहिंसा को निरंतर जीवित रखते हैं।

शंकर शैलेन्द्र के गीत मजदूर-हित में कालजयी प्रमाणित अवश्य हुए लेकिन निश्चय ही उनकी रचना तात्कालिकता की मांग के रूप में हुई थी। वह पृष्ठों

पर सुरक्षित रहने के लिए प्रायः लिखी ही नहीं गयी थी। उसका उद्देश्य अपने में लय उत्पन्न करना उतना नहीं था जितना उनके जीवन में, उनके संघर्ष में लय उत्पन्न करना जिनके लिए उसकी प्रस्तुति हुई। ऐसी स्थिति में कलात्मक रचाव की संभावना कविता-गीतों में बहुत कम होती है। समय नहीं होता है कि स्थितियों को पचाकर प्रतीकों और फन्तासियों में ढाला जाए। किसी भी कला-रचना का मूल्यांकन उसके हेतु, प्रयोजन और परिवेश से काटकर नहीं किया जा सकता। कबीर, दादू और रैदास आदि तमाम संत कवियों के लिए और शंकर शैलेन्द्र जैसे जन-संघर्षों से सीधे जुड़े रचनाकारों के लिए, कहना चाहिए कि तमाम जन प्रतिबद्ध कवियों के लिए शास्त्रीय निकष उपयुक्त नहीं है। उनके लिए अलग से, उन रचनाओं के भीतर से और उनकी विषय-वस्तु अर्थात् जन-जीवन के भीतर से नये सौन्दर्यशास्त्र की खोज आवश्यक है। ऐसा न हो तो जैसे रामचन्द्र शुक्ल को कबीर दोयम दर्जे के कवि लगे वैसे ही शास्त्रीय रुचि वाले आलोचकों को शंकर शैलेन्द्र, संभव है, कवि ही न लगें।

यही सही है कि शंकर शैलेन्द्र जैसे कवियों की कविताओं में जीवन का वैविध्य नहीं है। डॉ० नामवर सिंह ने लिखा है, ''सामजिक यथार्थ का दूसरा स्तर नरेन्द्र शर्मा, दिनकर, सुमन, भवानी प्रासद मिश्र, रांगेय राघव, नेपाली, शंकर शैलेन्द्र आदि कवियों में अभिव्यक्त हुआ है। इन कवियों ने थोड़ा-बहुत अतिरेक के साथ उत्साह और उद्बोधन का बढ़ा-चढ़ा रूप दिखाया। इन्होंने जीवन की मर्म छवियों के चित्रण में समय न लगाकर आविष्ट भाषण सुलभ ओजपूर्ण शैली में अनेक उत्तेजक कविताएं लिखी हैं।''

वस्तुतः शंकर शैलेन्द्र की कविताएं आविष्ट नहीं, आवेश और उत्साह उनकी कविता का धर्म या गुण है। डॉ० रामविलास शर्मा के शब्दों में कहें तो, ''क्या बिना आवेश और उत्साह के कलात्मक वैदग्ध्य उत्पन्न हो सकता है? क्या सामाजिक यथार्थ से आंदोलित हुए बिना किसी भी कलाकार के लिए यह संभव है कि वह मार्मिक सौन्दर्य की सृष्टि कर सकें। साहित्य का इतिहास बताता है कि आज तक ऐसा नहीं हुआ। जो इस शुद्ध सौन्दर्य के पीछे दौड़े और मनुष्यता के तकाजे को भूल गये— वे कागज का रंगीन फूल बनाने में तो जरूर समर्थ हुए परंतु उनकी कला में गंभीरता और व्यापकता न आ पायी, पानी में खिले हुए कमल की खुशबू वे न पैदा कर सके।'' अपने अधिकार के लिए संघर्ष करता हुआ मजदूर किसी क्षणिक

आवेश की उत्तेजना में नहीं होता। भूख का संबंध 'करो या मरो' के संकल्प से है, उन्माद से नहीं। ये मजदूर होकर मजदूर की तरफ से लिखी गयी कविताएं हैं न कि मजदूर के मुखातिब होकर लिखी गयी कविताएं। उनका जो ''न्यौता'' है वह स्पष्ट रूप से नेताओं के लिए हैं और 'चुनौती' भी मजदूरों की तरफ से ही है। शंकर शैलेन्द्र का कविकर्म सर्वत्र 'हम मजदूर' की समवेत शक्ति के ऊर्जस्वित है, उसमें कहीं भी 'हमारे मजदूर' का शब्दिक सहानुभूति का विलास नहीं।

शंकर शैलेन्द्र यदि उत्साह के अतिरेक और उद्‌बोधन के ही कवि हैं तो उनकी कविता में व्यंग्य की कोई जगह नहीं होनी चाहिए, लेकिन सच तो यह है कि प्रगतिशीन कवियों में नागार्जुन के बाद कदाचित शैलेन्द्र सर्वाधिक सफल व्यंग्यकार हैं। नागार्जुन की तरह ही उनका व्यंग्य भी बड़ा तीखा और तिलमिला देने वाला है। यह व्यंग्य समकालीन कविता की अत्यंत महत्वपूर्ण विशेषता है। पता नहीं 'नेता जी परनाम तुम्हें हम मजदूरों का', नयी नयी शादी है लेकिन/बटुए सी दुल्हन को लेकर/सिर्फ चार दिन साथ रह सका। छुट्टी कम थी काम अधिक है। फिर सर्विस भी सरकारी है'', 'रक्तहीन क्रांति के नेताओं का काम तमाम हो चुका/खत्म हो गये 'करतब' उनके/अब तो बस कर्तव्य रह गये हैं जनता के'—जैसी भीतर तक चुभ जाने वाली करुणा पर आधारित व्यंग्य-उक्तियों को उत्साह, अतिरेक और उद्‌बोधन से कैसे सम्बद्ध किया जा सकता है? अपनी व्यंग्य-प्रतिभा के साथ शंकर शैलेन्द्र का मूल्यांकन कबीर और निराला को याद करते हुए नागार्जुन के साथ किया जा सकता है।

मूल्यांकन के एक और महत्वपूर्ण निकष के रूप में जीवन की मर्म छवियों के चित्रण को अपनाया जा सकता है। शंकर शैलेन्द्र के रचनाकर्म में ये मर्म छवियां उनके जीवन-संघर्ष की अनुगूंज के रूप में दिखाई पड़ती है। जो बात उनकी जिंदगी में थी वही उनके गीतों में भी। उनके गीतों में सिर्फ करुणा नहीं, जूझने का संकेत भी था और वह प्रक्रिया भी मौजूद थी जिसके तहत अपनी मंजिल तक पहुंचा जाता है। हिंदी कविता में जितना प्रेम पर लिखा गया उसका अधिकांश प्रेमिकाओं-परकीयाओं को समर्पित है। पत्नी को उसका बहुत कम हिस्सा प्राप्त हो सका है। कविता में पत्नी पहले भी कम थी और आज भी इस दावे के सत्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि, और जैसा कि डॉ० नामवर सिंह कहते हैं, ''संपूर्ण प्रयोगवादी कविता में...

सिन्दूर तिलकित भाल'' की शुचिता के दर्शन नहीं हो सकते।'' शंकर शैलेन्द्र के फिल्मी गीतों में भी पत्नी है, बच्चे हैं, परिवार और कविताओं में वे इनसे कटकर क्रांति या परिवर्तन की किसी महादशा में नहीं जीतेः

**सोचा था, 'ढूढूंगा कहीं मकान**
**नहीं–बस, एक कोठरी**
**एक कोठरी ही काफी है**
**दोनों सुख से साथ रहेंगे**
**जैसे किसी घोंसले में कपोत की जोड़ी!**
**साथ रहेंगे तो जीवन की परेशानियां**
**आधी आधी बंट जावेंगी**
**और अकेलेपन की हर मौसम की**
**यह दमघोंट धुएं सी काली बदली**
**उस दिन छंट जावेगी**
**जिस दिन प्यारी बीबी की मुस्कान**
**अंधेरा और उजाला एक करेगी। (नई नई शादी है)**

× × ×

**टुकुर-टुकुर ताकेंगे तुमको बच्चे सारे–**
**शंकर, लीला, मधुकर, धोंडू राम पगारे**
**जुम्मन का नाती करीम, नज्मा बुद्धन की**
**अस्सी बरसी गुस्सेवर बुढ़िया अच्छन की। (नेताओं को न्यौता)**

और 'ऐसा करना तुम पगार के दिन आ जाना' जैसे स्थिति-चित्रणों में जीवन अपने तमाम रंग-रूप, रस-गंध के साथ अंगड़ाइयां लेता है। जीवन के गूढ़तम संदर्भों को दिल में उतर जाने वाली जुबान में सहज ही कह देना शैलेन्द्र का ही काम है।

शंकर शैलेन्द्र के रचनाकर्म का मूल्य भावुकतापूर्ण और विचारधारात्मक बयानबाजी से बचते हुए सहजता, रागात्मकता, सामूहिकता और लोकप्रियता जैसे गुणों की रक्षा से संबद्ध है। निश्चय ही भावुकता से बचते हुए भाव-संपन्नता की योजना, विचारधारात्मक बयानबाजी से बचकर भी दृष्टिसंपन्नता तथा सरलीकरण से मुक्त सहजता, भीड़ के भेड़ियाधसान से मुक्त सामूहिकता और छिछलेपन से

मुक्त लोकप्रियता की साधना असाधारण काव्य-सामर्थ्य की मांग करती है। 'तू जिंदा है तो जिन्दगी की जीत में यकीन कर' और 'सजनवा बैरी हो गये हमार' जैसे भावप्रवण गीत, 'हर जोर जुल्म की टक्कर में हड़ताल हमारा नारा है' और 'मुट्ठी में है तकदीर हमारी' जैसी कर्म-सौन्दर्य से निर्धारित विचार-संपदा, 'दिल का हाल सुने दिलवाला, सीधी सी बात न मिर्च मसाला' तथा 'इस गांव में दर्द की छांव में प्यार के नाम से ही धड़कते हैं दिल' और 'जीवन के शत संघर्षों में रत रहकर भी याद आ ही जाती है बिखरी हुई दुख भरी कहानी' जैसी राग-झंकृति के साथ ही शंकर शैलेन्द्र उस लोकप्रियता को अर्जित कर पाते हैं जो चित्त को मात्र आकर्षित न कर उसके उन्नयन और उत्कर्षण से संबद्ध है। इसी रूप में उनका रचनाकर्म अपनी समग्रता में उदात्त कोटि का है। शंकर शैलेन्द्र के गीतों की लोकप्रियता का अन्दाज वही कर सकता है जो जन-आंदोलनों से जुड़ा हुआ है। संघर्ष में आस्था जगाने वाले ये गीत मजदूर आंदोलनों के समान किसान आंदोलनों के लिए भी प्रेरणादायक हैं। शैलेन्द्र के गीत साबित करते हैं कि आंदोलन से उपजी कला भी स्थायी होती है बशर्ते कि उसमें जीवन के संघर्ष का संगीत हो।

शंकर शैलेन्द्र के कविकर्म के मूल्यांकन के क्रम में सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि वे राजनीतिक कविता के खतरों से किस हद तक लड़ और उबर पाते हैं। दृष्टिहीनता और कविता के कविता नहीं पद्य-भर रह जाने की स्थिति राजनीतिक कविताओं के साथ अकसर आ जाया करती है। शंकर शैलेन्द्र की राजनीतिक सोच मार्क्सवाद से प्रभावित है और उनकी कविता इस सोच से दिशा पाती है, इस सोच को पद्यबद्ध करने मात्र का कार्य नहीं करती। उनकी कविताएं राजनीति के सिद्धांतों से नहीं, उसके व्यवहार और व्यवहार के प्रभाव-परिणामों से संबद्ध हैं। इस प्रकार वे जीवन-स्थितियों और जीवन संघर्षों को शब्द देते हैं न कि विधि-निषेध का हवामहल तैयार करते हैं। उनकी कविताएं प्रचार से नहीं आचार से संबद्ध होती हैं। उनकी कविताओं की शक्ति व्यंग्य, करुणा, क्रोध, घृणा, आशा, विश्वास जैसे मानवीय भाव हैं, तर्क की आगमन-निगमन जैसी पद्धतियाँ नहीं।

शंकर शैलेन्द्र की राजनीतिक कविताओं में संघर्ष की गरिमा, उसकी कठिनाइयां, इनके साथ आस्था, उल्लास, उमंग और व्यंग्य का सधा हुआ स्वर भी है। इसके साथ ही शैलेन्द्र के शिल्प में कविता और गीतों को जनता की जुबान पर

चढ़ा देने का सामर्थ्य है जिसे वे लोकजीवन एवं लोकगीतों की लय, धुन, शब्दाबली और लहजे से उपलब्ध करते हैं। यह उपलब्धि उन्हें जन-आंदोलनों से सीधे जुड़ाव से उपलब्ध होती है और यहां आकर शंकर शैलेन्द्र उस काम को आगे बढ़ाते हैं जिसे नरेन्द्र शर्मा ने अपने 'लाल निशान' के गीतों में अंजाम दिया था। उत्तर छायावादी प्रेम और सौन्दर्य के गीतकार नरेन्द्र शर्मा ने 1942-44 के दौर में ऐसे गीत रचे जो जन आंदोलनों से प्रेरित तो हैं ही, सीधे मजदूरों के लिए लिखे गये हैं। उनकी 'यकुम मई', 'नवयुग का हलकारा', 'नया चीन' आदि कविताएं राजनीतिक कविता के इतिहास में अपना एक अलग महत्व रखती हैं और उनका महत्व है स्वयं मजदूरों के कंठ में उतर जाने का उनका गुण। इन कविताओं का महत्व-मूल्यांकन करते हुए डॉ० रामविलास शर्मा ने लिखा है– ''आज की परिस्थिति में ऐसी कविता कितनी उपयोगी हो सकती है, यह समझना कठिन नहीं है। लेकिन इसका उपयोग वहीं करेंगे जो मजदूरों को अपना पिछलगुआ नहीं, वर्गचेतन सर्वहारा क्रांतिकारी बनाना चाहेंगे।''

इसी स्वर को शंकर शैलेन्द्र ने आगे बढ़ाया। वे इसे आगे बढ़ाने में इसलिए भी सफल हो सके क्योंकि वे स्वयं एक मजदूर थे, मजदूर यूनियन के कार्यकर्ता थे जबकि नरेन्द्र शर्मा स्वयं मजदूर नहीं थे।

मजदूर-समाज की दिशा और दशा निर्धारित करने में राजनीति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अधिकारों के शोषण और अधिकार प्राप्ति के लिए संघर्ष राजनीतिक व्यवस्था से ही संबद्ध है। लेखक का व्यक्तित्व समाज के संघर्ष में ही विकसित होकर पुष्ट होता है। इस तरह का व्यक्तित्व समाज के लिए साहित्य रचने से मुंह नहीं चुराता। अंतर्द्वन्द्वों की बात करके इस उत्तरदायित्व से वही लेखक बचने की कोशिश करते हैं जो संघर्ष की आंच लगते ही 'लाज से छुई-मुई-सी म्लान' हो जाते हैं। यह कहना गलत नहीं होगा कि शंकर शैलेन्द्र का व्यक्तित्व और रचनाकर्म, चाहे वह राजनीति से ही संबद्ध हो, समाज से अलग नहीं है। अपनी राजनीतिक रचनाओं और राजनीतिक समझ के साथ शंकर शैलेन्द्र नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, नरेन्द्र शर्मा जैसे रचनाकारों के साथ खड़े होते हैं।

आजादी जिस रूप में और जिस तरीके से हमें मिली, उसने आजादी की कीमत घटा दी। इस तथ्य को न सिर्फ शंकर शैलेन्द्र ने बल्कि माखनलाल चतुर्वेदी से लेकर कई दृष्टिसम्पन्न रचनाकारों ने अनुभव किया है और इस पीड़ा को वाणी दी है। इस मुफ्त में हासिल हो गयी-सी आजादी ने यह भी याद नहीं रहने दिया कि इसकी पृष्ठभूमि झांसी की रानी और भगतसिंह जैसे शहीदों ने प्राणों के मूल्य से तैयार की थीः 'भगतसिंह इस बार न लेना काया भारतवासी की/देशभक्ति के लिए आज भी सजा मिलेगी फांसी की'। ऐसी आजादी किसे मिली? महाजनों को, महाजनों से! दलित शोषित जनता तक क्या यह आजादी पहुंच पायी? उसके कंधों पर तो पहले से भी ज्यादा बोझ आ पड़ाः

**अब तो इस 'आजाद' मुल्क में**
**सबके सर जिमेवारी है आजादी की**
**खून बहाये बिना मिली जो महाजनों को**
**शुभ चिंतक उदार गोरों से।**
**सदियों के गुलाम भारत के कंधे टूटे**
**लेकिन बोझ अब पहले से भी भारी है**
**सबके सर जिम्मेवारी है**

स्वतंत्रता संग्राम के बहुचर्चित बहुसम्मानित नेताओं पर ऐसी कड़ी नजर बहुत कम रचनाकार डाल पाये हैंः

**खद्दरधारी आजादी पर मरने वाले**
**गोरों की फौजों से जरा न डरने वाले**
**वे नेता जो सदा जेल में ही सड़ते थे**
**लेकिन जुल्मों के खिलाफ फिर भी लड़ते थे!**
**वे नेता जिनके एक इशारे-भर से-**
**कटकर गिर सकते थे शीश अलग हो धड़ से**
**जिनकी एक पुकार खून से रंगती धरती**
*लाशों ही लाशों से पट जाती यह धरती!*
**शासन की बागडोर जिनके हाथों में**
**है जनता का भाग्य आज जिनके हाथों में!**

लेकिन ऐसा नहीं कि जनता इस बात को समझ नहीं रही, समझने लगी है और अपनी समझ को वाणी भी देने लगी है:

**उनका कहना है : यह कैसी आजादी है**
**वही ढाक के तीन पात हैं बरबादी है**
**तुम किसान मजदूरों पर गोली चलवाओ**
**और पहन लो खद्दर देशभक्त कहलाओ**

शंकर शैलेन्द्र भारत की आजादी, चाहे वह जैसे भी मिली हो, के महत्व को भी स्वीकार करते हैं और आजाद भारत के अर्थ का महाजनों और नेताओं के बीच से उठाकर जन-जन तक पहुंचाने की कोशिश करते हैं:

**ये चमन हमारा अपना है**
***इस देश पे अपना राज है***
**मत कहो कि सिर पे टोपी है**
**कहो कि सर पे हमारे ताज है**

इस आजादी को यथार्थ बनाने के लिए वे परिवर्तन को आवश्यक मानते हैं और उनकी दृष्टि में इसके लिए मार्क्सवाद एक उचित साधन है। इस संदर्भ में रूस और चीन की समाज-व्यवस्था के प्रति प्रशंसा से भरी उनकी कुछ कविताएं महत्वपूर्ण हैं।

राजनीति की उल्टी धार गरीब को आर्थिक, सामाजिक-हर स्तर पर मारती है। वह नौकरशाही और बड़े लोगों के हित से जुड़कर पंडित के पाखण्ड को पांच चवन्नी का हकदार बनाती है, बूट पॉलिशवाले की मेहनत को एक इकन्नी का। वह न सिर्फ पेट पर बल्कि प्रेम पर पहरे लगाती है। शैलेन्द्र ने इन स्थितियों को अपने अनेक कविता-गीतों का विषय बनाया है।

इस तरह शंकर शैलेन्द्र के कविकर्म ने परिवर्तनकामी संघर्षशील, शोषित, उत्पीड़ित जनता को प्रेरित करने और बल देने में अपनी प्रत्यक्ष भूमिका निभाई है। उनके गीत नारों में तब्दील हुए और भारत के बाहर भी भारत की पहचान बनकर गूंजे। शैलेन्द्र के गीतों को कोटि-कोटि कंठों ने मूल्यांकित किया है— घर में जीवन को भरपूर जीते हुए, सड़क पर अपने अधिकार की लड़ाई लड़ते हुए और इस तरह उनकी रचनाओं का न सिर्फ साहित्यिक बल्कि सामाजिक मूल्य भी स्थापित होता है।

शंकर शैलेन्द्र ने अपनी इस मूल्यवत्ता का मूल्य भी चुकाया है— साहित्य-समीक्षकों द्वारा निरंतर उपेक्षित रहकर। हिन्दी क्षेत्रों में यह खुशफहमी हमेशा बनी रही या बनाई रखी गयी कि सिनेमा से जुड़ा जो कुछ भी है वह घटिया है। हमारा तथाकथित संभ्रान्त समाज हर काम छुपाकर करने की प्रवृत्ति को तहजीब मानकर सिनेमा पर चर्चा करना, उसके महत्व को आंकना गैर-जरूरी मानता रहा है। इसलिए, सिनेमा के दुष्परिणाम ही हमारे सामने आ सके। उसकी असाधारण क्षमता का रचनात्मक उपयोग नहीं हुआ। बीसवीं शताब्दी में कला का यह माध्यम इतनी प्रखरता से जनव्यापी हुआ कि अन्य रूप धूमिल पड़ गये। इसकी उपेक्षा कर देना हमारा तुच्छ अहंकार ही रहेगा। शायद यही कारण है कि शैलेन्द्र के कृतित्व का हिंदी साहित्य में कोई मूल्यांकन नहीं हुआ। उनके गीत उत्कृष्ट काव्य के उदाहरण हैं लेकिन वे सदैव उपेक्षित रहे, हमेशा 'फिल्म गीतकार' ही रहे।

लेकिन इधर शंकर शैलेन्द्र के कविकर्म की तरफ साहित्य में समाज-चिंता के साथ पांव रखने वाले अनेक नये समीक्षकों का ध्यान गया है। जो भी जनता से जुड़ने के सैद्धांतिक मुहावरे को व्यवहार के स्तर पर घटित करने की समस्या से जुझेगा शंकर शैलेन्द्र जैसे कवियों की उपेक्षा नहीं कर सकेगा। सस्ते रोमैंटिक उपन्यासों, छिछली मंचीय कविताओं और व्यस्क फिल्मों की दुर्निवार और बढ़ती जा रही है अमानवीय लोकप्रियता से लोहा लेने के लिए उन तत्वों की तलाश शुरू हो गयी है जो रचना को एक साथ उत्कृष्ट और सहज, मूल्यवान और लोकप्रिय दोनों बनाते हैं। इस क्रम में डॉ० मैनेजर पाण्डेय पाते हैं कि ''शैलेन्द्र के गीतों' की लोकप्रियता के मूल में गंभीर भावों और विचारों को सहज-सरल रूप में रचने की उनकी कला है। भाषा, छन्द, लय और गति पर अद्‌भुत अधिकार के साथ वे जटिल बात को भी सहज बनाकर गीतों में अचूक भाव की शक्ति पैदा करते हैं।''

शंकर शैलेन्द्र की रचनाएं शोषित, दलित, पीड़ित जनता के लिए साहस-संबल का काम करती हैं तो शोषकों-आततायियों के लिए चुनौती का। यह चुनौती हर रचनाकार को अपनी रचना में चुनौती पैदा करने की भी चुनौती देती है। शैलेन्द्र का गीत 'उठे कदम'— 'भूख के विरुद्ध भात के लिए मेहनती गरीब जात के लिए' इस तरह के कई गीत लिखे जिसने आम जनता को झकझोर दिया और चेतना की नयी ऊर्जा जगाई। ये गीत मजदूरों और किसानों के कंठ में बस गये और इन्हें

गाते हुए मार्च भी किया गया। इन गीतों से संघर्ष तथा शोषण के विरुद्ध प्रतिरोध की परिस्थितियां पैदा हुई।

राजकपूर के अनुसार शैलेन्द्र की रचना में उत्कृष्टता और सहजता का यह दुर्लभ संयोग उनके व्यक्तित्व में निहित 'दृढ़ता और आत्मविश्वास' से संबद्ध है साथ ही 'उनके गीतों में ऊँचा दर्शन था सीधी भाषा'। कविन्द्र विक्रम ने 'उनके संयम, मर्यादा, अपने काम, अपने समाज और अपने देश से बेपनाह मुहब्बत' को रेखांकित किया है। निश्चय ही रचनात्मक उत्कृष्टता का संबंध रचनाकार के अपने व्यक्तित्व-चरित्र की ऊँचाई से भी है। आज यदि कोई अच्छी लगने वाली रचना भी प्रभाव नहीं उत्पन्न कर पाती तो उसका कारण रचनाकार के अपने व्यक्तित्व-चरित्र से भी संबद्ध हो सकता है। महत्वपूर्ण सिर्फ यह नहीं है कि देश और दुनिया जैसी बड़ी चीजों की चिंता से जुड़ा जाए, महत्वपूर्ण यह भी है कि इन बड़ी चिंताओं में अपने व्यक्तित्व और चरित्र जैसी छोटी चीजें घुला न दी जाएं।

डॉ० रणजीत शंकर शैलेन्द्र के रचनाकर्म में 'अभिव्यक्ति की सहजता', 'व्यंग्य की वक्रता', 'सामाजिक चेतना की प्रखरता', 'जिंदगी की प्रगति और विजय में उनके अटूट विश्वास', 'दुनिया को हसीन बनाने की उनकी उत्कट अभिलाषा', फक्कड़ाना ऊंचाई और छन्द और लय की प्रबलता', हृदय को छू लेने वाले' और 'मन के साथ तन को भी एक अदम्य प्रेरणा से भर देने वाले' तत्व के रूप में पाते हैं।

यह 'मन' को ही नहीं 'तन' को भी छू लेने वाली बात शंकर शैलेन्द्र जैसे रचनाकारों की सफलता और लोकप्रियता का एक अत्यंत महत्वपूर्ण तत्व है। सिर्फ मन के स्तर पर ही नहीं तन के स्तर पर भी अर्थात् कर्म के स्तर पर भी पाठक-श्रोता को सक्रिय करने वाला रचना-सामर्थ्य बहुत कम रचनाकारों में पाया जाता है। प्रगतिशील रचनाकार सिर्फ 'मन के डोलने' तक ही नहीं सीमित रहता, वह 'मन और तन दोनों के डोलने' की बात करता है।

शैलेन्द्र के कविकर्म में सहजता और उत्कृष्टता के दुर्लभ संयोग की बात उन पर बात करने वाले प्रायः हर समीक्षक ने उठाई है। प्रहलाद अग्रवाल के अनुसार, ''शैलेन्द्र गूढ़तम भावों को सरलतम शब्दों में अभिव्यक्त कर देने वाले

गीतकार थे। उनके गीतों में इतनी तीक्ष्ण संवेदना होती कि वे दिल की गहराइयों में उतर जाते और इतने सहज भी कि करोड़ों जुबानों पर आसानी से चढ़कर गुनगुनाए जाने लगे।.... जीवन के गूढ़तम संदर्भों को दिल में उतर जाने वाली जुबान में सहज ही कह देना शैलेन्द्र का ही काम है।''

ऐसा नहीं कि शंकर शैलेन्द्र के रचनाकर्म में सहजता और उत्कृष्टता का यह संयोग अनायास घटित हो गया हो। काफी सोच समझ के साथ, प्रयत्नपूर्वक वे इसे साधते हैं। ईश्वरीय वरदान के रूप में नहीं कवि प्रयत्न से ही यह सिद्ध होता है। उनका दृढ़ मन्तव्य था कि ''जनता को मूर्ख या सस्ती रुचि का समझने वाले कलाकार या तो जनता को नहीं समझते या अच्छा और खूबसूरत पैदा करने की क्षमता उनमें नहीं है। हाँ, वह अच्छा मेरी नजरों में बेकार है जिसे केवल गिने-चुने लोग ही समझ सकते हैं। इसी विश्वास से रचे हुए मेरे गीत बेहद लोकप्रिय हुए हैं।''

कुल मिलाकर शंकर शैलेन्द्र के महत्व-मूल्यांकन के संदर्भ में हम नागार्जुन के ही शब्दों को दुहराना चाहेंगेः

**अपने युग की व्यथा कथा ही कड़ियों में ढलती जाती थी**
**जाने कितना नेह भरा था, वाती थी जलती जाती थी**
**गीत तुम्हारे गूंज रहे हैं अव भी लाख-लाख कानों में**
**होंठ तुम्हारे फड़क रहे हैं छाया-छवि की मुस्कानों में**
**सच बतलाऊं, तुम प्रतिभा के ज्योतिपुत्र थे, छाया क्या थी**
**भली-भांति देखा था मैंने, दिल ही दिल थे, काया क्या थी**
**जहां कहीं भी अंतर मन से ऋतुओं की सरगम सुनते थे**
**ताजे कोमल शब्दों में तुम रेशम की जाली बुनते थे**
**जन मन जब हुलसित होता था, वह थिरकन भी पढ़ते थे तुम**
**युग की अनुगुंजित पीड़ा ही घोर घन-घटा-सी गहराई,**
**प्रिय भाई शैलेन्द्र, तुम्हारी पंक्ति-पंक्ति नभ में लहराई।**

# अनगिनत बार मिलकर भी शायद कभी नहीं मिल सका शैलेन्द्र से

*–किशन शर्मा*

मैं उस समय खुरजा में पढ़ रहा था और मंच कार्यक्रमों में काफी लोकप्रिय हो गया था। उज्जैन के पास एक छोटा-सा नगर है, नागदा। मैं वहां अपनी मुंहबोली बहन के घर गया था। उससे पहचान अजमेर में हुई थी, जहां मेरे बड़े जीजा जी पुरुषोत्तम दास कुदाल जी के पास ही कुछ वर्ष तक रहा था। उनके विशाल कुदाल हाउस में कई किरायेदार बरसों से रहते थे, जिनमें से एक परिवार की सदस्य मेरी मुंहबोली बहन थी। शादी के बाद वह नागदा में रहने लगी थी, जहां उसके पति बिरला जी की मिल में किसी तकनीकी पद पर कार्य करते थे। उसके रिश्तेदार थे, गीतकार शैलेन्द्र। मैं नागदा रेलवे स्टेशन पर उतरा, तब मेरी मुंहबोली बहन सरोज भक्ता और उसके पति मुझे लेने आये हुए थे। उनके साथ एक अन्य व्यक्ति भी थे, जो गंभीर और खामोश खड़े थे। सरोज ने उनसे परिचय कराते हुए कहा, ''भैया, आपके बारे में तो इन्हें सब कुछ बता दिया है, अब आप इनसे मिलिए। ये हैं मेरे मामा शैलेन्द्र जी, मुंबई में रहते हैं और फिल्मों में गीत लिखतें है।'' मैंने न केवल गीतकार शैलेन्द्र का नाम सुन रखा था, बल्कि उनके लिखे फिल्मी और गैर फिल्मी गीत में मंच कार्यक्रमों में गाया करता था। मैंने कभी सोचा भी नहीं था कि इतने बड़े गीतकार से इस तरह सादगीपूर्ण और आसान भेंट हो जाएगी। मुझे कुछ सूझा हीं नहीं और मूर्खतापूर्ण प्रश्न कर बैठा, ''आप इस छोटी-सी जगह पर क्या कर रहे हैं?'' वे बोले, ''कुछ महत्वपूर्ण गीत लिखने थे और उसके लिए शांत जगह की आवश्यकता थी, इसलिए यहां आ गया। यहां कोई परेशान नहीं करता तो अच्छे से लिखना भी हो जाता है और सरोज की शादी में नहीं पहुंच पाया था, तो इन सबसे मिलना भी हो गया है।'' मैंने पूछा, ''लेकिन आपने स्टेशन आने की तकलीफ क्यों की?'' तो बोले, ''लिखते-लिखते थक भी गया था और बोर भी हो गया था। आपकी इतनी तारीफ कर दी थी इन लोगों ने कि मैंने ही कह दिया कि मैं भी चलता हूं। थोड़ा परिवर्तन भी हो गया और आपसे भेंट भी हो गयी।'' मुझसे उम्र में, स्तर में, विद्वता में, लोकप्रियता में इतने बड़े व्यक्ति का मुझे बार-बार आप कहना अजीब लग रहा था। मैंने कहा, ''आप सरोज के मामा हैं तो मेरे भी मामा हुए न, तो

कृपया मुझे मेरे नाम से पुकारिए और आप की जगह तुम कहिए। मुझे अच्छा लगेगा।'' बिना देर किये उन्होंने कहा, ''किशन, तुम कहां और क्या कर रहे हो?'' मैंने बताया कि मैं मेकेनिकल इंजीनियरिंग का डिप्लोमा खुरजा के जटिया पॉलीटेक्निक से कर रहा हूं, तो तुरंत मुझसे हाथ मिलाते हुए बोले, ''वाह भांजे जी। मैं भी मेकेनिकल इंजीनियरिंग का डिप्लोमा ले चुका था और रेल के कारखाने में नौकरी करता था। सब छोड़-छाड़कर गीत लिखने लगा हूं। तुम भी तो कविताएं लिखते हो, गाते हो; यह सरोज ने बताया। यह निश्चित समझ लो कि तुम भी मेकेनिकल इंजीनियरिंग का डिप्लोमा ले भी लोगे, तो भी बनोगे तो गीतकार, गायक या कोई न कोई कलाकार। तुम खुरजा के हो, तो नरेंद्र शर्मा जी को अवश्य पहचानते होंगे। बहुत विद्वान व्यक्ति हैं।''मैंने उन्हें बताया कि नरेन्द्र शर्मा साहब मेरे पिता जी से छोटे और मेरे बड़े भाई साहब से बड़े हैं। वे उन दोनों को तो अच्छी तरह जानते हैं, परंतु मुझे अंताक्षरी और वाद-विवाद प्रतियोगिताओं के कारण ही थोड़ा-थोड़ा जानते हैं। रात के खाने के बाद बातचीत के दौरान मैंने शैलेन्द्र जी का लिखा हुआ गैर फिल्मी राष्ट्रभक्ति गीत गाकर सुनाया, 'प्यारी जन्मभूमि मेरी प्यारी जन्मभूमि'; तो वे बहुत खुश भी हुए और आश्चर्यचकित भी हुए। बोले, 'अरे ये गाना तो किसी को याद भी नहीं है, तो तुम्हारी प्रशंसा भी करनी पड़ेगी और कुछ-न-कुछ इनाम भी देना पड़ेगा।'' उन्होंने एक सौ रुपये का नोट निकालकर भक्ता जी को दिया और बोले, ''जाओ मेरी ओर से एक सेर शुद्ध घी की मिठाई और सबके लिए बढ़िया पान लेकर आओ।'' भक्ता जी ने कहा कि यह तो बहुत ज्यादा है। मुश्किल से 20 या 25 रुपये लगेंगे। इतना बड़ा नोट मत दीजिए, तो शैलेन्द्र जी ने कहा, ''अब सौ का नोट दे दिया, सो दे दिया। जब तक रुपये रहें, तब तक मेरी ओर से मिठाई और पान खाते रहो और किशन भैया को धन्यवाद देते रहो।''

1964 में मुझे आकाशवाणी के उद्घोषक के रूप में चुन लिया गया। शैलेन्द्र जी का कथन सत्य हुआ। मैं मेकेनिकल इंजीनियरिंग की पढ़ाई बीच में ही छोड़कर आकाशवाणी का उद्घोषक बन गया। रेडियो पर शैलेन्द्र जी के लिखे गीतों को प्रसारित करने के अवसर मिलते ही रहे। एक दिन मुझे ''प्यारी जन्मभूमि' गीत याद आया, तो लाइब्रेरी के रजिस्टर में उसे ढूंढ़ने लगा। यह गीत दो कलाकारों के

नाम के साथ लिखा था, लक्ष्मी शंकर और मन्नाडे। मैंने दोनों रिकॉर्ड निकाले और स्टूडियों में सुनता रहा। मेरे मस्तिष्क में एक खुराफात सूझी। संगीत और ताल का अच्छा ज्ञान होने के कारण मैं एक अलग प्रयोग करने में सक्षम था। बार-बार दोनों रिकॉर्ड बजाकर अपने प्रयोग के प्रस्तुतीकरण की तैयारी करता रहा और अंत में बात बन गयी।

शायद किसी को भी मेरी चालाकी एकाएक समझ में नहीं आयी, लेकिन मैं अपने प्रस्तुतीकरण से बहुत प्रसन्न और संतुष्ट था। एक ही सुर से, एक ही धुन में निबद्ध गीत दो कलाकारों ने अलग-अलग गाया था। गीत का मुखड़ा दोनों ने एक जैसा गया था, परंतु अंतरे में थोड़ा अंतर था। मन्नाडे के गाये गीत का अंतरा जोशीला था। मैंने गीत का प्रारंभिक मुखड़ा लक्ष्मीशंकर की आवाज में बजाया और अंतरा मन्नाडे की आवाज में बजाने के बाद फिर से मुखड़ा लक्ष्मीशंकर की आवाज में बजा दिया। दोनों रिकॉर्ड अलग-अलग मशीनों पर एक साथ चल रहे थे, मैं केवल प्रसारण के लिए उनको इस कुशलता के साथ जोड़ता और काटता रहा कि किसी को भी कुछ भी मालूम ही नहीं पड़ा। अंत में मैंने मुखड़ा दोनों कलाकारों की आवाजों में एक साथ बजा दिया। उस समय प्रसिद्ध साहित्यकार दुष्यंत कुमार त्यागी भोपाल में आकाशवाणी के हिंदी विभाग के प्रमुख थे। संगीत के एक अन्य विद्वान रमेश भट्ट उस समय ड्यूटी ऑफिसर थे। उन तीनों को कहीं भी कुछ भी अस्वाभाविक नहीं लगा, लेकिन तीनों आपस में यह चर्चा करने लगे कि पहले कभी तो इस तरह से यह गीत रेडियों पर सुना नहीं। मैं जब अपना कार्यक्रम समाप्त करके स्टूडियो से ड्यूटीरूम में आया, तो दुष्यंत कुमार त्यागी जी ने मेरे हाथ से सारे रिकॉर्ड ले लिये और उनका विवरण देखने लगे लक्ष्मीशंकर की आवाज में कोई रिकॉर्ड नहीं था। रमेश भट्ट जी ने मुझ से कहा, ''यार, तुम ये सब गड़बड़ क्यों करते रहते हो। सीधे-सीधे क्यों नहीं गीत बजाते हो। सबको मुश्किल में डाल दोगे किसी दिन।'' दुष्यंत कुमार त्यागी जी और रमेश नाडकर्णी जी ने रमेश भट्ट जी से कहा कि ट्रांसमीशन रिपोर्ट में इस बात का जिक्र जरूर कर दें, वरना बाद में किसी ने शिकायत कर दी तो मुश्किल आ जाएगी। रमेश भट्ट जी रिपोर्ट लिख ही रहे थे कि फोन की घंटी बजी। घंटी की आवाज से यह समझ में आ गया कि कहीं बाहर से फोन आया है। रमेश भट्ट जी रिपोर्ट लिख रहे थे, इसलिए दुष्यंत कुमार त्यागी जी ने फोन

उठा लिया। दूसरी आरे से ऑपरेटर की आवाज आयी, ''आकाशवाणी? हां जी, ट्रंक कॉल है नागदा से।''

दुष्यंत कुमार त्यागी जी ने बात करवाने के लिए ऑपरेटर से कहा। शायद दूसरी ओर से बात करने वाले ने पूछा होगा कि कौन बोल रहे हैं, इसलिए त्यागी जी ने कहा, ''हिंदी विभाग का प्रोड्यूसर दुष्यंत कुमार त्यागी बोल रहा हूं।'' मुझे दूसरी ओर से बोलने वाले की आवाज तो सुनाई नहीं दे रही थी, लेकिन त्यागी जी की बात सुन रहा था। वे बोले, ''हां भाई, मैं कवि-गीतकार दुष्यंत कुमार त्यागी ही बोल रहा हूं। आप भी तो अपना नाम बताइए। आप कौन बोल रहे हैं?'' उधर से उत्तर मिला उसे सुनकर त्यागी जी उछल पड़े और बोले, ''अरे शैलेन्द्र साहब, आप? लेकिन ये फोन तो नागदा से आया है।'' फोन पर हाथ रखकर त्यागी जी ने मुझसे तुरंत कहा, ''किशन प्यारे, तुम्हारी नौकरी गयी। शैलेन्द्र जी का फोन है। शायद तुम्हारी शिकायत करने के लिए फोन किया है।'' मैं वास्तव में घबरा गया। लेकिन कुछ ही क्षणों में मालूम पड़ा कि शैलेन्द्र जी बीमारी के कारण और निराशा के कारण आराम करने के लिए नागदा आये हुए थे, और रेडियो पर प्रसारित अपने गीत के अद्‌भुत प्रस्तुतिकरण की प्रशंसा करके यह पूछ रहे थे कि अनाउंसर कौन था। दुष्यंत कुमार त्यागी जी ने हंसते हुए कहा, ''शैलेन्द्र साहब! अनाउंसर का नाम है किशन शर्मा। नया लड़का है लेकिन बहुत टेलेंटेड है। लीजिए आप उसी से बात कीजिए।''

लंबे समय के बाद शैलेन्द्र जी से बात करने का अवसर आया था। मैंने उन्हें बताया कि मैं वही किशन शर्मा हूं जिसके बारे में आने बहुत पहले कह दिया था कि मेकेनिकल इंजीनियरिंग छोड़कर कलाकार बनेगा। उन्हें पुरानी घटना याद आ गयी। मुझसे बोले, ''अब तो पास में ही हो, तो एक दिन नागदा आ जाओ।'' रमेश भट्ट जी ने जो रिपोर्ट मेरे विरुद्ध लिखनी शुरू की थी, उसे शैलेन्द्र जी के फोन के उल्लेख के साथ मेरे प्रस्तुतीकरण की प्रशंसा में बदल दिया। गीतकार शैलेन्द्र मुझे जानते हैं, यह बात सभी को आश्चर्यजनक लगी। बाद में दुष्यंत कुमार त्यागी जी, रमेश नाडकर्णी जी, रमेश भट्‌ट जी तथा कई अन्य गुणी लोग मुझे अपना मित्र मानने लगे और इसलिए सभी लोग रेडियो सुनते ही थे। मैं शैलेन्द्र जी से नागदा में फिर से मिला, लेकिन कमजोर और बीमार शैलेन्द्र से मिलकर मुझे प्रसन्नता नहीं हुई। बल्कि चिंता होने लगी। उन्होंने अपनी परेशानी का कारण बताया कि वे एक फिल्म

बना रहे हैं और अब उन्हें लग रहा है कि वे बहुत बड़ी गलती कर बैठे हैं। उसी के कारण बीमार और कमजोर हो गए हैं। हम बात कर रहे थे कि एक फोन आया। शैलेन्द्र जी ने फोन पर कहा, ''अरे मेरे भाई शंकर पहलवान; लोकधुन पर मैंने गीत लिखा है– 'चलत मुसाफिर मोह लिया रे पिंजरे वाली मुनिया', इस गीत को केवल मन्ना बाबू से गवाओ। मेरी इच्छा है कि वे ही इस गीत को गायें।'' तब पता चला कि शैलेन्द्र जी, संगीत निर्देशकों की जोड़ी शंकर-जयकिशन के शंकर जी से बात कर रहे थे। मैंने बताया कि शंकर-जयकिशन जी का बहुत बड़ा प्रशंसक हूं, तो शैलेन्द्र जी बोले, ''बंबई आओगे तो मिलवा दूंगा। तुम्हें शायद मालूम न हो मेरा असली नाम भी शंकर ही है। शैलेन्द्र तो मेरा उपनाम है, और इसलिए शंकर की मेरे साथ बहुत अच्छी जमती है। हम दोनों लड़ते भी खूब हैं। कभी-कभी मारपीट की नौबत भी आ जाती है, लेकिन साथ में काम करने का मजा हम दोनों को आता है। एक मजेदार घटना सुनाता हूं। 'श्री 420' फिल्म के लिए गीत तैयार हो रहे थे। एक गीत था– 'प्यार हुआ इकरार हुआ'। इस में एक पंक्ति थी– 'रातें दसों दिशाओं से कहेंगी अपनी कहानियां'। शंकर ने कहा, ''किस गधे ने यह गीत लिखा है। दिशाएं चार होती हैं, दस कहां से हो गयीं?'' मैंने भी शंकर से कहा, ''अरे गैंडे, तू क्या जाने इन बातों को। किस अनपढ़ को म्यूजिक डायरेक्टर बना दिया है राज साहब ने।'' उसने गधा कहा, मैंने गैंडा कहा। बात बढ़ती गयी और शंकर मुझे मारने के लिए आगे बढ़ा। जयकिशन और बाकी लोगों ने बीच बचाव किया, लेकिन वो चार दिशा पकड़कर बैठा था, और मैं दस में से एक भी कम करने को तैयार नहीं था। अंततः राजकपूर साहब को बताया गया। वे आये और सारी बात सुनकर बोले, ''अभी तक तो मैं भी यही सोचता था कि दिशाएं चार होती हैं, लेकिन शैलेन्द्र अगर कह रहा है कि दिशाएं दस होती हैं, तो मैं मान लेता हूं। अगर यह बात गलत रही तो सब लोग गीतकार शैलेन्द्र को मूर्ख कहेंगे। संगीत निर्देशक को अपनी धुन पर ध्यान देना चाहिए। अगर संगीत निर्देशक गीत के बोल की गलती निकालेगा तो गीतकार धुन की आलोचना करने लगेगा। आप दोनों अपना-अपना काम कीजिए और एक-दूसरे के काम में टांग मत अड़ाइए।'' तब कहीं जाकर उस गीत का काम पूरा हुआ। बोल वही रहे और आज तक किसी ने इस बारे में कोई आपत्ति नहीं दर्ज करायी है''।

शैलेन्द्र जी बात करते-करते भी थक जाते थे, लेकिन मुझसे मिलकर और बात करके उनहें अच्छा लग रहा था। उन्होंने मुझे बताया, ''प्रोग्रेसिव राइटर्स की इंडियन पीपुल्स थिएटर एसोसिएशन यानी इप्टा के मुंबई में संस्थापक सदस्य बनकर मेरे साथ बलराज साहनी जैसे लोग जुड़ गये थे। मैं कवि सम्मेलनों में जाता रहता था। एक जगह पापा जी पृथ्वीराज कपूर जी ने मुझे सुना और बहुत पसंद किया। उन्होंने मुझे अपने पुत्र राजकपूर से मिलवाया जो उस समय 'आग' फिल्म बना रहे थे। पापा जी ने प्रशंसा की और मिलाया तो राजकपूर ने पूछा, ''मेरी फिल्म में गीत लिखेगे, कितने रुपये लोगे?'' मैंने साफ शब्दों में कह दिया कि मैं अपने गीत बेचता नहीं हूं। राजकपूर को 'ना' सुनना पसंद नहीं था। फिर भी उन्होंने मुझसे कहा कि जब भी जरूरत हो तो मेरे पास आ जाना। ट्रेड युनियन की लीडरी में नौकरी चली गयी। परिस्थिति ऐसी हो गयी कि तुरंतु रुपयों के लिए गीत लिखने के अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग नहीं रह गया था। ऐसे में राजकपूर की बात याद आयी। झिझकते हुए मैं राजकपूर के पास गया। 'बरसात' फिल्म के गीत हसरत जयपुरी लिख चुके थे और वो सारे गाने रिकॉर्ड भी हो गये थे। राजकपूर ने मेरी कथा सुनी और एक लिफाफे में रुपये रखकर मुझे देने लगे, लेकिन मैं भी खुददार था। रुपयों की जरूरत जरूर थी, लेकिन दान या भीख नहीं चाहिए थी। मैंने कहा कि गीत लिखकर ही रुपये लूंगा। राजकपूर ने कहा कि 'बरसात' के गीत हसरत जी लिख चुके हैं और अगली फिल्म कम-से-कम दो साल बाद बन पाएगी। हम तुमसे अगली फिल्म के गीत लिखवायेंगे, लेकिन तुम अपनी जरूरत के लिए रुपये अभी ले लो। मैं नहीं माना। संगीत निर्देशक शंकर ने राजकपूर से कहा कि इसे बरसात पर गीत लिखने के लिए कहिए। उसे फिल्म में रखना या नहीं रखना, यह हम बाद में देख लेंगे। यह गीत लिखकर लाएगा और रुपये ले जाएगा। यह बात सबको ठीक लगी। दूसरे दिन मैं एक गीत लेकर राजकपूर से मिला। मैंने गाकर गीत सुनाया जिसके बाले थे– 'बरसात में हमसे मिले तुम सजन तुमसे मिले हम बरसात में'। शंकर ने बैठे-बैठे धुन भी बना दी। सबको गीत बहुत पसंद आया। मुझे रुपयों से भरा लिफाफा दिया गया और मैंने भी ले लिया। जब गीत रिकॉर्ड हुआ तो मुझे भी बुलाया गया। इतनी सुन्दर धुन, संगीत, और लता मंगेशकर जी की गायकी सुनकर मैं समझ ही नहीं पाया कि यह मेरा ही लिखा हुआ गीत है। वहीं से शंकर से मेरी

दोस्ती एकदम पक्की हो गयी। आज भी वह क्षण याद आता है तो आंखे भर आती हैं।''

इप्टा के दौर में ही एक राष्ट्रभक्ति गीत शैलेन्द्र ने लिखा था, 'मत रो माता लाल तेरे बहुतेरे', जो बाद में फिलम 'बंदिनी' में प्रयुक्त हुआ। 'परख' फिल्म के संवाद भी शैलेन्द्र ने लिखे। बस एक ही गलत कदम उठा दिया, 'तीसरी कसम' फिल्म के निर्माता बनकर। मध्यप्रदेश में उस फिल्म की शूटिंग के दौरान प्रसिद्ध गीतकार, समाजसेवी और मध्यप्रदेश के मंत्री विट्ठल भाई पटेल और उनके व्यवसायी छोटे भाई राजू भाई पटेल (राधेश्याम पटेल) ने शैलेन्द्र को बहुत सहयोग दिया था। उस फिल्म का एक महत्वपूर्ण गीत 'दुनिया बनाने वाले क्या तेरे मन में समाई, काहे को दुनिया बनायी' शैलेन्द्र लिख नहीं पा रहे थे। गीत लिखते-लिखते इतने भावुक हो जाते कि गीत लिखने की बजाय आंखों में आंसू भरकर कुछ सोचते ही रहते थे। ऐसी अवस्था में पहली फिल्म से लेकर उनके वर्षों के साथी गीतकार हसरत जयपुरी ने यह गीत पूरा लिखकर अपने प्रिय साथी की दोस्ती का हक अदा किया। शैलेन्द्र जी अपने दुख तथा अपनी चिंता के बारे में न घर में किसी से कुछ कहते थे, न बाहर। राजकपूर साहब ने भी मेरे तथा कुछ अन्य लोगों के समक्ष यह कहा था कि शैलेन्द्र जी ने अपनी परेशानियों के बारे में उनसे भी कभी कुछ नहीं कहा। राजकपूर साहब की फिल्म 'मेरा नाम जोकर' के लिए वे एक गीत लिख रहे थे, 'जीना यहां, मरना यहां इसके सिवा जाना कहां'। बस मुखड़ा ही पूरा लिख पाये थे कि 14 दिसम्बर, 1966 को राजकपूर जी के जन्म दिवस पर सूचना मिली कि शैलेन्द्र जी का स्वर्गवास हो गया। राजकपूर जी ने अपने जन्मदिन की पार्टी सारी तैयारी हो जाने के बावजूद रद्द कर दी। 'जीना यहां मरना यहां' गीत बाद में शैलेन्द्र जी के गीतकार पुत्र शैली शैलेन्द्र ने पूरा किया। अब तो शैली शैलेन्द्र भी इस दुनिया में नहीं रहे। सच तो यह है कि शैलेन्द्र जी खामोश, चिंतित, गंभीर और खोये-खोये ही अधिकतर रहे, जीवंत तो वे बहुत कम समय ही रहे। लगभग पांच वर्षों में यूं तो मैं अनगिनत बार शैलेन्द्र जी से मिला, परंतु सच में लगता यही है कि मैं बहुत ही कम मिला, बल्कि शायद मिल ही नहीं सका गीतकार शैलेन्द्र के भीतर छुपे एकाकी इंसान शैलेन्द्र से।

# शैलेन्द्र: सरल सहज साहित्यिक सृजन

*–डॉ॰ राजीव श्रीवास्तव*

अपने गीतों में आध्यात्म पिरो कर उसे जिस सहजता से शैलेन्द्र हमारे मध्य परोस दिया करते थे वह आज भी लोगों के लिए कौतुहल का विषय बना हुआ है। शैलेन्द्र जो कुछ भी लिख कर गए हैं उसमें अधिकांशत: फिल्मों से जुड़े उनके गीत ही हैं फिर भी उनके लगभग सभी गीत फिल्मी-गैरफिल्मी की परिधि के पार पूरी मानवता से सरोकार रखने वाले हैं। ऐसे बड़े ही कम व्यक्तित्व इस जगत में हुए हैं जिसके कृतित्व को देख कर यह भान होता है कि यदि ये इस क्षेत्र विशेष में न होकर अन्य किसी दूसरे कार्य क्षेत्र में होते तब भी उनकी प्रतिभा अपने चरम पर ही होती। शैलेन्द्र इस संसार के ऐसे ही कुछ विशिष्ट व्यक्तियों में से एक थे। यदि हम मात्र सिनेमाई गीतकारों के परिप्रेक्ष्य में उनकी प्रतिभा का आंकलन करें तो नि:संदेह वो ही एकमात्र ऐसे कवि-गीतकार कहे जाएंगे जो अपने गीतों में प्राण फूंकने की कला में आश्चर्यजनक रूप से पारंगत थे।

शैलेन्द्र की सबसे बड़ी पूंजी थी उनकी सरलता और अपनी बात को सहज रूप से लोगों के समक्ष रखने का उनका अपूर्व कौशल। इतिहास अपने आपको यदि बारंबर नहीं तो कभी-कभी अवश्य ही दोहराता है। शैलेन्द्र के इस एक कालजयी गीत की पंक्तियों को यूँ तो सभी ने न जाने कितनी बार सुना होगा और गुनगुनाया भी होगा- 'सजन रे झूठ मत बोलो, खुदा के पास जाना है, न हाथी है न घोड़ा है, वहाँ पैदल ही जाना है'। एक बार पुन: इस गीत पर यदि चिन्तन-मनन करें तो आप पाएँगे कि अपनी बात सहज रूप में कह देने का यह शिल्प तो कबीर जैसा है। एक सीख, कर्तव्य-बोध, नैतिक मापदंड, आध्यात्म की घुट्टी सभी कुछ क्या वैसा ही नहीं है जैसा कबीर से पूर्व में गढ़ चुके हैं? 'तुम्हारे महल चौबारे, यहीं रह जाएंगे सारे', 'लड़कपन खेल में खोया, जवानी नींद भर सोया', अथवा, 'भला कीजे भला होगा, बुरा कीजे, बुरा होगा, बही लिख लिख के क्या होगा' जैसी पंक्तियाँ कबीर की बानी की ही अनुगूंज है पर मेरा यह मत है कि शैलेन्द्र कबीर नहीं थे बल्कि कबीर उनमें समाहित थे। एक और बात संभवत: आपके मन में कभी किसी ऐसे अतीत के किसी व्यक्तित्व के संबंध में यह ध्यान आया होगा कि यदि अमुक व्यक्ति वर्तमान में होते तो क्या कुछ करते या कहते या फिर अपने काम को किस रूप में

प्रस्तुत करते? संरार के रंगंच पर पात्र दोहराए नहीं जाते पर कई बार ऐसे पात्रों का पदार्पण इस मंच पर अवश्य होता है जो अपने किसी पूर्ववर्ती पात्र की अगली कड़ी होने का आभास करा जाते हैं। मान लीजिए कि वर्तमान में यदि कबीर होते तो वे क्या और किस तरह की बाते कहते? विश्व बंधुत्व की परिकल्पना को ध्वनित करता राष्ट्र प्रेम की भावना से ओत-प्रोत शैलेन्द्र ने जब 'मेरा जूता है जापानी' लिखते हुए 'फिर भी दिल है हिंदुस्तानी' की बात कही तो अकस्मात् यह किसी संत की वाणी का सहज की आभास करा गई। कोई ये माने या न माने मगर इस तरह का दर्शन किसी की लेखनी से सदियों में कभी कभार ही फूटता है। इसी तरह 'सब कुछ सीखा हमने, न सीखी होशियारी' में बड़ी सच्चाई और भोलेपन से यह स्वीकारना कि 'हम हैं अनाड़ी' सादगी का अद्‌भुत उदाहरण है। इसी सरलता का शिल्प शैलेन्द्र ने 'आवारा हूँ या गर्दिश में हूँ आसमान का तारा हूँ' जैसे अपने कई गीतों में प्रस्तुत किया है। क्या इसे आप आधुनिक कबीर की बानी नहीं कहेंगे? जी हाँ, वर्तमान में यदि कबीर होते तो उनकी वाणी कुछ ऐसी ही होती। अर्थात् इस युग में कबीर की अगली कड़ी हैं शैलेन्द्र।

अपने जीवन काल में ही शैलेन्द्र ने स्वयं को मात्र श्रेष्ठ ही सिद्ध नहीं किया अपितु गूढ़तम भावों को अभिव्यक्त करने की उनकी सरलतम् उक्ति से लोग बारंबर अचरच में पड़े रह गए। किसी भी फिल्म का शीर्षक गीत उसके कथानाक का केन्द्र बिंदु होता है और फिल्म के उस बिंदु को साधने में शैलेन्द्र बेजोड़ थे। बरसात, आवारा, श्री 420, अनाड़ी, गाइड, संगम, जंगली, जिस देश में गंगा बहती है जैसी ढेरों फिल्मों के शीर्षक गीत शैलेन्द्र की लेखनी की विशिष्टता की कथा स्वयं ही कहते हैं। राज कपूर के साथ जोड़ी बना कर भी शैलेन्द्र ने दूसरों के साथ भी बड़ी तन्मयता से अपनी लेखनी चलाई है। फिल्म संगीत का स्वर्णिम युग कहा जाने वाला पचास और साठ का दशक जिन अनेक कारणों से आज भी कर्णप्रिय बना हुआ है उसकी एक विशेष बात शैलेन्द्र के लिखे गीत ही हैं। साहित्य और सिनेमा का संबंध हिंदुस्तानी फिल्मों में भले ही सहज न रहा हो पर अपने गीतों में शैलेन्द्र ने साहित्य की जो संजीवनी परोसी है वह इस प्रकार सधी हुई थी कि कहीं से भी वह अनचाहा तत्त्व नहीं लगता था बल्कि उससे गीत का सौंदर्य और भी खिल कर सामने आया है। अपने गीतों में साहित्य के रूप में शैलेन्द्र ने हिन्दी और उर्दू के उन्हीं शब्दों

का प्रयोग किया जो भारी भरकम न होकर हृदय में वैसी ही टीस जगाते हैं जिसके लिए शैलेन्द्र पहले ही अपने गीत में कह चुके हैं- 'आज फिर जीने की तमन्ना है, आज फिर मरने का इरादा है।' जीवन की जीवन्त जड़ी-बूटी हैं शैलेन्द्र के गीत।

शंकर-जयकिशन के अतिरिक्त जिनके संग शैलेन्द्र की सरगम उत्कृष्ट रूप से सजी-सँवरी है उनमें सचिन देव बर्मन, सलिल चौधरी सहित किशोर कुमार और राहुल देव बर्मन सहित तब के नये-नये संगीताकार भी सम्मिलित थे। सचिन देव उन गुणी संगीतकारों में थे जो कलात्मक गीतों के रसिया और उसके सुरीले प्रस्तुतीकरण के अद्‌भुत प्रणेता थे। 'मन की किताब से तुम मेरा नाम ही मिटा देना, मैं सगंनी पिया की मैं बंदिनी हूँ साजन की' में स्वयं सचिन देव बर्मन के स्वर का आलाप जब 'रुला के गया सपना मेरा' की उदासी को चीरता हुआ 'दिन ढल जाये हाय, रात न जाये' के आग्रह के साथ अन्त में उद्‌घाटित करते हुए बताता है- 'पूछो न कैसे माने रैन बितायी, एक पल जैसे एक युग बीता।' इसी तरह बेटे राहुल देव को भी शैलेन्द्र रस का स्वाद कुछ ऐसा लगा कि अपनी पहली फिल्म में ही उन्होंने शैलेन्द्र के ही शब्दों पर अपने सुर का ताना-बाना रचा। फिल्म 'छोटे नवाब' के सारे गीत शैलेन्द्र के थे और राहुल देव के संगीत में सजा इसका एक गीत सुरों की बरसात में भीगते सभी संगीत रसिकों को जैसे कह रहा था- 'घर आजा घिर आये बदरा साँवरिया'। गायक किशोर कुमार निर्देशित और उन्हें के संगीत रसिकों को जैसे कह रहा था- 'घर आजा घिर आये बदरा साँवरिया'। गायक किशोर कुमार निर्देशित और उन्हीं के संगीत निर्देशन की फिल्म 'दूर गगन की छाँव में' के सारे गीत शैलेन्द्र के थे। गायिका शारदा को रातों रात सफलता का स्वाद चखाने वाला गीत था- 'तितली उड़ी उड़ जो चली, फूल ने कहा आजा मेरे पास' इसी फिल्म में शारदा का ही गाया एक और गीत शैलेन्द्र का प्रेम के प्रगटीकरण का आकर्षक उपहार- 'देखो मेरा दिल मचल गया, तुम्हें देखा और बदल गया'। 'जंगली' फिल्म में शम्मी कपूर के 'याहू' चीत्कार में शब्दों की लड़ी टांकने की धुन में शैलेन्द्र सारी वर्जनाओं को तोड़ते हुए लिख गये 'चाहे कोई मुझे जंगली कहे, कहने दो जी कहता रहे'। इसी के संग चुप-चुप सी चाहत को उतावलेपन की मन:स्थिति में उसे सँवारते हुए शब्दों की व्यग्र कसमसाहट को इस बीत में शैलेन्द्र ने बड़ी ही सहजता से जीवंत किया है-

'जा जा जा, मेरे बचपन, कहीं जा के छुप नादां, ये सफर है अब मुश्किल, आने को है तूफां।

'सुहाना सफर और ये मौसम हसीं' के साथ 'दिल तड़प-तड़प के कह रहा है आ भी जा' के साथ 'आजा रे परदेसी' की पीर के मध्य 'चढ़ गयो पापी बिछुआ' की जलन को अपने संगीत से और भी दहकाने वाले संगीतकार सलिल चौधरी के साथ शैलेन्द्र का संग खूब फला-फूला। शशि कपूर की अभिनेता के रूप में पहली फिल्म 'चार दीवारी' में शैलेन्द्र के गीत 'कैसे मनाऊँ पियवा, गुन मेरे एकहू नाहीं' को सलिल ने अपने संगीत का जो भावनात्मक स्पर्श दिया है उसे मुकेश ने अपनी वाणी से किसी चित्रकार की तूलिका सदृश्य सरगम के पटल पर क्या खूबी से उकेरा है। इसी क्रम में 'मुसाफिर' फिल्म में 'मुन्ना बड़ा प्यारा, अम्मी का दुलारा' को सलिल ने बालपन के भोलेपन और अठखेलियों की तरंगों से भिगों कर सींचा है। सलिल चौधरी जितने कुशल संगीतकार थे उतने ही वो मजे हुए कवि भी थे। उनके कई बांग्ला गीतों को शैलेन्द्र ने उसी भावभंगिमा में जिस तरह से लिखा है उस पर सलिल तो मोहित ते ही साथ में यह इस बात को भी उद्घाटित करते हैं कि शैलेन्द्र की पैठ बांग्ला साहित्य और गीतों में भी खूब थी। मूल बांग्ला गीत में प्रयुक्त कई शब्दों को ज्यों का त्यों हिन्दी रूपांतरित गीत में इस तरह से प्रयोग में होना कि वो बिल्कुल मौखिक लगें, ऐसा शिल्प तो बस शैलेन्द्र के ही बूते की बात थी। 1960 में प्रदर्शित बिमल रॉय निदेर्शित फिल्म 'परख' की कहानी स्वयं इसके संगीतकार सलिल चौधरी ने लिखी थी और इसके संवाद तथा समस्त गीत शैलेन्द्र के थे। किस तरह सलिल अपने बांग्ला गीतों को शैलेन्द्र से हिन्दी में लिखवाते थे उसका एक उदाहरण इस फिल्म का वो प्यारा गीत है जो सावन की रिमझिम में तन-मन के पोर-पोर को भिगो जाता है- 'ओ सजना, बरखा बहार आई, रस की फुहार लाई, अँखियों में प्यार लाई'। मूल बांग्ला गीत का मौलिक हिन्दी संस्करण यूँ तो सलिल चौधरी के संगीत से सजी कई और हिन्दी फिल्मों में देखने को मिलता है जिसमें 'कैसे मनाऊँ पियवा' एवं 'आजा रे परदेसी' सहित शैलेन्द्र के कई सदैव जीवन्त गीत सम्मिलित हैं। तब के वरिष्ठ वयोवृद्ध संगीतकार अनिल बिस्वास की अंतिम दो-एक फिल्मों में शैलेन्द्र ने उनके लिए गीत लिखे थे। सन् 2003 में अपनी मृत्यु के कुछ माह पूर्व एक बातचीत में जब मैंने अनिल 'दा से उनके साथ काम किए हुए

सर्वश्रेष्ठ गीतकारों के बारे में जानना चाहा तो उन्होंने मुझसे कहा था कि शैलेन्द्र से बेहतर गीतकार अब तक कोई नहीं हुआ। मोतीलाल की अंतिम फिल्म 'छोटी-छोटी बातें' का संगीत अनिल बिस्वास ने दिया था और इसके सभी गीत शैलेन्द्र ने लिखे थे। इस फिल्म में शैलेन्द्र का एक गीत मुकेश के स्वर में अत्यंत ही मार्मिक बन पड़ा है- 'जिंदगी ख्वाब है, था हमें भी पता, पर जिंदगी से हमें, बहुत प्यार था।' यह गीत आज श्रद्धांजलि के रूप में मोतीलाल, शैलेन्द्र, मुकेश और अनिल बिस्वास के लिए स्मरण किया जाता है।

व्यक्ति यदि गुणी हो और अति विशिष्ट प्रतिभा का धनी हो तो किस प्रकार हर कोई उसका सन्निध्य पाने को उतावला होता है इसकी बानगी कवि शैलेन्द्र के साथ सहज ही देने को मिलती है। अपने सितार से शास्त्रीय रंगत की तरंग बिखेरने वाले अपूर्व संगीतकार पण्डित रविशंकर ने जब 'अनुराधा' का संगीत रचा तो उसके सभी गीतों के रचयिता थे शैलेन्द्र। पं॰ रविशंकर की शास्त्रीय अठखेलियों पर सहज रूप में यौवन की आँख मिचौली को अपने सपनीले शब्दों से आलिंगनबद्ध करते हुए शैलेन्द्र एक ओर जहाँ 'जाने कैसे सपनो में खो गई अंखियां' की बानगी बाँधते हैं वहीं दूसरी ओर 'हाय रे वो दिन क्यूँ न आए' को परे धकेलते हुए 'साँवरे काहे मोसे करे जोरा जोरी' की झिड़की देते प्यार के मनुहार को 'कैसे दिन बीते कैसे बीती रतियाँ पिया जाने न' के प्रश्न में उलझा के रख देते हैं। इसी तरह कुछ और संगीतकारों की संगत में शैलेन्द्र के शब्दों का बाँवरापन आज भी संगीत रसिकों की स्मृतियों को झकझोरता है। रोशन के संगीत में फिल्म 'नव बहार' के गीतों के साथ-साथ 'सूरत और सीरत' का लाजवाब गीत 'बहुत दिया देने वाले ने तुझको, आंचल ही न समाये तो क्या कीजे' तो वास्तव में अनमोल है। इसी सूची में एस॰एन॰ त्रिपाठी के संगीत से सजी फिल्म 'संगीत सम्राट तानसेन' का शास्त्रीय संगीत रंगत लिए शैलेन्द्र का गीत 'झूमती चली वहा, याद आ गया कोई' मुकेश के स्वर में भावों का अद्‌भुत उद्‌गार है। शैलेन्द्र हिन्दी के महारथी तो थे ही पर उर्दू भाषा के भी बो कितने बड़े शिल्पी थे उसे फिल्म 'अनारकली' के गीतों में देखा जा सकता है। सी॰ रामचन्द्र के संगीत से सँवरा शैलेन्द्र की शायरी 'दुआ कर ग़मे दिल, ख़ुदा से दुआ कर' और 'आ जा, अब तो आ जा, मेरे किस्मत के खरीदार अब तो आ जा' में अपने संपूर्ण यौवन पर दिखी है। संगीतकार चित्रगुप्त के संग शैलेन्द्र का

साथ उनकी एक और कौशल को उद्‌घाटित करते हैं। हिन्दी, उर्दू के अतिरिक्त भोजपुरी भाषा पर भी शैलेन्द्र की प्रभावी पकड़ थी। संभवत: कुछ ही लोगों को यह ज्ञात होगा कि शैलेन्द्र मूलत: बिहार के थे। रावल पिण्डी (पाकिस्तान) में अपने जन्म से लेकर आगरा, मथुरा, मुम्बई में अपने जीवन के महत्त्वपूर्ण वर्ष व्यतीत करते हुए शैलेन्द्र अपनी मिट्टी को कभी नहीं भूले। भोजपुरी की सोंधी महक यूँ तो उनके तमान गीतों में रह-रह-कर निखरती थी पर जब 1962 में प्रदर्शित भारत की प्रथम भोजपुरी फिल्म 'गंगा मईया तोहे पियरी चढ़इबो' प्रदर्शित हुई तब इसमें लिखे शैलेन्द्र के समस्त गीतों ने लोकप्रियता का एक नूतन अध्याय रचा। भोजपुरी की दो-चार शीर्ष सफल फिल्मों में से एक यह फिल्म संगीतकार चित्रगुप्त के लिए अत्यधिक शुभ सिद्ध हुई। इसी के बाद भोजपुरी फिल्मों में चित्रगुप्त का संगीत स्थायी हो गया। भोजपुरी साहित्य अतीत में किस प्रकार अपनी कलात्मक विशिष्टता का धनी था इसकी बानगी इस फिल्म में शैलेन्द्र के गीतों में सहज ही देखी जा सकती है। फिल्म का शीर्षक गीत 'हे गंगा मइया तोहे पियरी चढ़इबो, सैंया से कर दे मिलनवा हो राम' में आध्यात्म का पुट संजोकर शैलेन्द्र ने शब्दों की अपनी कलात्मकता से इसे एक साहित्यिक गीत के रूप में प्रतिष्ठित किया है। इसी फिल्म के दो और गीत 'सोनवा के पिंजरा में बंद भईल हाय राम, चिरई के जियरा उदास' एवं 'काहे बंसुरिया बजउले सुध बिसरउले, गईल सुख चैन हमार' आज भी स्मरण किए जाते हैं। भोजपुरी फिल्मों की सूची में शैलन्द्र के गीतों से सजी पाँच और फिल्में थी- गंगा (1965), मितवा (1966), नैहर छूटल जाए (1964), सैंया से नेहा लगइबे (1965), विधना नाच नचावे (1968)। साहित्यिक पृष्ठभूमि पर बनी फणीश्वर नाथ 'रेणु' की कहानी 'मारे गए गुलफाम' पर आधारित शैलेन्द्र की प्रस्तुति 'तीसरी कसम' सिनेमा के इतिहास में मील का पत्थर है। गीत, संगीत और अभिनय की उत्कृष्ट त्रिवेणी ने 'तीसरी कसम' के धरातल पर जिस तीर्थ की स्थापना की है उस पर नतमस्तक होने के लिए युग-युगांतर तक सिने प्रेमियों का मेला लगता रहेगा। एक साथ जिन अनेक लोगों के अप्रतिम योगदान के लिए यह फिल्म स्मरण की जाएगी उनमें शैलेन्द्र के साथ-साथ रेणु, मुकेश, शंकर-जयकिशन, राजकपूर और वहीदा रहमान विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

बदलते देर नहीं लगेगी। देश में समाजवाद आ जाएगा। लिहाजा वे उन्हीं का आह्वान करते हुए लिखते हैं, "*उनका कहना है: यह कैसे आजादी है/वही ढाक के तीन पात हैं, बरवादी है/तुम किसान-मजदूरों पर गोली चलवाओ/और पहन लो खद्दर, देशभक्त कहलाओ!/तुम सेठों के संग पेट जनता का काटो/तिस पर आजादी की सौ-सौ बातें छांटो।/हमें न छल पायेगी यह कोरी आजादी/उठ री, उठ, मजदूर किसानों की आबादी!*" ('नेताओं को न्यौता!' कविता संग्रह 'न्यौता और चुनौती') वामपंथी विचारधारा से जुड़े तमाम बुद्धिजीवियों की तरह शैलेन्द्र का भी मानना था कि देश को जो आजादी मिली है, वह अधूरी है। कहने को देश में सत्ता बदल गई है, लेकिन उसका वर्ग चरित्र वही है। सामंतों और पूंजीपतियों ने सत्ता का अपहरण कर लिया है। जब तक किसान और मजदूर पूंजीवादी ढांचे से आजाद नहीं होंगे, तब तक देश सही मायने में आजाद नहीं होगा। "*ढोल बजे एलान हुआ, आजादी आई/खून बहाये बिना लीडरों ने दिलवाई/खुश होकर अंगरेजों ने दी नेताओं को/सत्य अंहिसावादी वीर विजेताओं को!/....'वही नवाब, वही राजे, कुहराम वही है/पदवी बदल गई हैं, किंतु निजाम वही है/थका पिसा मजदूर वही, दहकान वही है!/कहने को भारत, पर हिंदुस्तान वही है!/बोली बदल गई है, बात वही है सारी/हिज मैजेस्टी छटे जार्ज की लंबरदारी/कॉमनवैल्थ कुटुम्ब, वही चर्चिल की यारी/परदेशी का माल सुदेशी पहरेदारी!/...आज खून से रंगी ध्वजा सबसे आगे है/क्रांति शांति की लाल ध्वजा सबसे आगे है/अपनी किस्मत का नूतन निर्माण चला है/क्रूर मौत से भीषण रंण संग्राम चला है!/अंदर की आग एक दिन भड़केगी ही/नई गुलामी की बेड़ी भी तड़केगी ही!*" ('अंदर की यह आग' कविता संग्रह 'न्यौता और चुनौती')

26 जनवरी 1950 देश में नया संविधान बना और इस संविधान से सभी को समान अधिकार मिले। लेकिन यह संविधान भी देश के सभी नागरिकों के अधिकारों का संरक्षण नहीं कर पाया। रोजी, रोटी और मकान जैसे बुनियादी अधिकारों को पाने के लिए जनता को सड़कों पर आना पड़ा। जो सत्ता में बैठा, अपने संवैधानिक कर्तव्य भूल गया। दमन उसका हथियार बन गया। शैलेन्द्र ने भारतीय लोकतंत्र की इन विसंगतियों का पर्दाफाश करते हुए लिखा, "*मुझ जैसे ये लाखों हैं जो मांग रहे हैं/रोजी, रोटी, कपड़ा, बोनस औ, महंगाई/मांग रहे हैं जीने*

*का अधिकार स्वदेशी सरकारों से!/किंतु सुना है, जीने का अधिकार मांगना अब गुनाह है/गद्दारी है!/गद्दारी के लिए जेल, गोलीबारी है!*" ('नई-नई शादी है...' कविता संग्रह 'न्यौता और चुनौती') हुक्मरान, सत्ता का किस तरह से गलत इस्तेमाल करते हैं, शैलेन्द्र इन प्रवृत्तियों पर तंज करते हुए लिखते हैं, "*भगतसिंह! इस बार न लेना काया भारतवासी की/देश भक्ति के लिए आज भी सजा मिलेगी फांसी की!/यदि जनता की बात करोगे, तुम गद्दार कहलाओगे/बंब संब की छोड़ो, भाषण दिया कि पकड़े जाओगे!/निकला है कानून नया, चुटकी बजते बंध जाओगे/न्याय अदालत की मत पूछो, सीधे मुक्ति पाओगे/कांग्रेस का हुक्म, जरूरत क्या वारंट तलाशी की!*" ('भगतसिंह से' कविता संग्रह 'न्यौता और चुनौती') शैलेन्द्र ने यह गीत साल 1948 में लिखा था। इस गीत को लिखे 72 साल हो गए, लेकिन सत्ता का चरित्र नहीं बदला। सरकारें बदल गईं, चरित्र वही है। अंग्रेजों का बनाया देशद्रोह कानून आज भी सत्ताधारियों का प्रमुख हथियार बना हुआ है। जो कोई भी सरकारी नीतियों का विरोध करता है, उसे देशद्रोह कानून के अंतर्गत जेल में डाल दिया जाता है।

शैलेन्द्र अपने गीतों में सिर्फ सरमायेदारी और साम्राज्यवाद का विरोध ही नहीं करते, बल्कि अपने गीतों में इसका एक विकल्प भी देते हैं। उनका मानना है कि समाजवाद में ही किसानों, मजदूरों और आम आदमियों के अधिकार सुरक्षित होंगे। उन्हें वास्तविक इंसाफ मिलेगा। लिहाजा वे इकट्ठा होकर सरमायेदारी के खिलाफ निर्णायक लड़ाई लड़ें। "*धनवानों की दीवाली की रात ढल गई/अब गरीब का दिन है, दिल का उजियाला है! लोगों ने की सभा, फैसला कर डाला है-/एक साथ हम सब रावण पर वार करेंगे/अपनी दुनिया का हम खुद उद्धार करेंगे!/अन्नपूर्णा लक्ष्मी को आजाद करेंगे/स्वर्ग इसी धरती पर हम आबाद करेंगे!*" ('दीवाली के बाद' कविता संग्रह 'न्यौता और चुनौती') शैलेन्द्र की समाजवाद में गहन आस्था थी। सोवियत रूस और चीन की साम्यवादी क्रांति के बारे में उन्होंने काफी कुछ पढ़ा था और उन्हें लगता था कि भारत में भी कमोबेश ऐसे ही हालात हैं। देश का सर्वहारा वर्ग यदि एक हो जाए, तो हालात बदलते देर नहीं लगेगी। यहाँ भी वास्तविक क्रांति हो जाएगी। "*क्रांति के लिए उठे कदम/क्रांति के लिए जली मशाल!/भूख के विरुद्ध भात के लिए/रात के विरुद्ध प्रात के लिए/मेहनती गरीब जात के लिए/हम लड़ेंगे,*

*हमने ली कसम!"*.... *"तय है जय मजूर की, किसान की/देश की, जहान की, अवाम की/खून से रंगे हुए निशान की/लिख गई है मार्क्स की कलम!"* ('उठे कदम' कविता संग्रह 'न्यौता और चुनौती')

शैलेन्द्र की समाजवाद में आस्था यूं ही नहीं है, बल्कि इस विचारधारा के वे इसलिए कायल हो गए कि इस विचारधारा ने लोगों में जाति, वर्ण और धर्म के सारे भेद मिटा दिए। सब को समान अधिकार दिए हैं। *"सौ सलाम उस कार्ल मार्क्स को जिसने मुक्तमार्ग दिखलाया/मिट्टी के पुतलों को जिसने फौलादी इंसान बनाया!/'दुनिया के मजदूर एक हो जाओ', एका अस्त्र हमारा/महामंत्र बन गया आज एंगेल्स और मार्क्स का नारा!/बदल गये इतिहास फलसफे, बदला शास्त्र पुराण पुराना/पलट चली धारा विचार की, करवट लेने लगा जमाना!/जाति वर्ण की, धर्म-कर्म की, बदलीं परिभाषाएं सारी/सर के बल थे, पैरों पर हो गये खड़े निर्धन नर-नारी।"* ('पेरिस कम्यून' कविता संग्रह 'न्यौता और चुनौती') सोवियत संघ के बाद चीन दूसरा देश था, जहाँ समाजवाद कामयाबी से आया। किसानों और कामगारों की संयुक्त क्रांति से वहाँ पूंजीवाद का विनाश हुआ। शैलेन्द्र इस बदलाव का स्वागत करते हुए लिखते हैं, *"अंतिम बंधन तोड़ रहा है नया चीन, एक नया चीन! /सदियों बाद किसान जमीं से मेहनत के फल उगा रहा है/पहले पहल मजूर चीन का मालिक बन मिल चला रहा है/खोद रहा है अपनी खानें, नई बस्तियां बसा रहा है/तोड़ राह की चट्टानों को, युग की धारा मोड़ रहा है!/नया चीन, एक नया चीन!"* ('नया चीन' कविता संग्रह 'न्यौता और चुनौती')

शैलेन्द्र अपने गीतों में पूंजीवाद के साथ-साथ साम्राज्यवाद का भी विरोध करते हैं। उनके मुताबिक साम्राज्यवादी देशों की पूंजीवादी और साम्राज्यवादी नीतियों से दुनिया में जंग का साया छाया हुआ है। अपने हितों को पूरा करने के लिए वे किसी भी हद तक चले जाते हैं, *"चर्चिल माँगे खून मजूर किसानों का/ट्रूमन मांगे ताजा खून जवानों का!"* दुनिया में एक तरफ साम्राज्यवादी देशों का यह पूंजीवाद का नंगा नाच है, तो दूसरी ओर सोवियत संघ जैसे देश भी हैं, जो अपने यहां विकास की नई इबारत लिख रहे हैं। शैलेन्द्र इन बातों को अपने इसी गीत में रेखांकित करते हुए लिखते हैं, *"रूस देश संघर्षों का, कुर्बानी का/खून पसीने की अनकही कहानी का/वहाँ क्रांति की जीत, तुम्हारी पहली हार/हमने अपनी हस्ती*

*जानी पहली बार/रूस ख्वाब के, इंकलाब के गानों का!/वहाँ सुतार लुहार हुए मिल मैनेजर/राजा नहीं, रंक बैठा सिंहासन पर/जिनका खून पसीना, उनका राज बना/स्वर्ग इसी धरती पर, नया समाज बना/हुआ रूस में सच सपना इंसानों का!"* ('चुनौती' कविता संग्रह 'न्यौता और चुनौती') जाहिर है कि सोवियत संघ, वंचितों और शोषितों के लिए एक यूटोपिया है। शैलेन्द्र की चाहत है कि सोवियत संघ की तरह भारत भी एक आदर्श राज्य बने। मेहनतकशों का देश में राज हो।

कविता संग्रह 'न्यौता और चुनौती' के अपने सभी गीतों में शैलेन्द्र, देशवासियों को जहाँ नई चुनौतियों से अवगत कराते हैं, तो वहीं उन्हें न्यौता देते हैं, क्रांति के लिए। समाज और राजव्यवस्था में बदलाव के लिए। सामाजिक, आर्थिक क्रांति जो अभी तलक स्थगित है। 'अंदर भी आग जला', 'इस बार', 'प्रभात की ज्वाला' आदि गीतों में भी शैलेन्द्र के क्रांतिकारी तेवरों की झलक दिखलाई देती है। शैलेन्द्र के गीतों में गजब की लय और भाषा की रवानी है। आमफहम भाषा में वे बड़ी-बड़ी बातें कह जाते हैं। इन गीतों में कहीं-कहीं ऐसा व्यंग्य है, जो उनके गीतों को धारदार बनाता है। डॉ॰ रणजीत अपनी किताब 'हिन्दी के प्रगतिशील कवि' में शैलेन्द्र के गीतों की इस खासियत को यू बयां करते हैं, *"प्रगतिशील कवियों में नागार्जुन के बाद कदाचित शैलेन्द्र सर्वाधिक सफल व्यंग्यकार हैं। नागार्जुन की तरह ही उनका व्यंग्य भी बड़ा तीखा और तिलमिला देने वाला है।"* शैलेन्द्र अपनी गीतों में घुमा फिराकर नहीं, सीधे-सीधे बात करते हैं। इस साफगोई से कहीं-कहीं उनकी भाषा और भी ज्यादा तल्ख हो जाती है। मसलन *"लीडर जी, परनाम तुम्हें हम मजदूरों का/हो न्यौता स्वीकार तुम्हें हम मजदूरों का/एक बार इन गंदी गलियों में भी आओ/घूमे दिल्ली-शिमला, घूम यहाँ भी जाओ!"* ('नेताओं को न्यौता!' कविता संग्रह 'न्यौता और चुनौती')

शैलेन्द्र अपने गीतों में जनसाधारण के दुःख-दर्द, भावों को आसानी से कैसे अभिव्यक्त कर देते थे? इसके मुतआल्लिक उनका कहना था, *"कलाकार कोई आसमान से टपका हुआ जीव नहीं है, बल्कि साधारण इंसान है। यदि वह साधारण इंसान नहीं है तो जनसाधारण के मनमानस के दुख-सुख को कैसे समझेगा और उसकी अभिव्यक्ति कैसे करेगा?"* शैलेन्द्र को जिंदगानी का बड़ा तजुर्बा था और अपने इस तजुर्बे से ही उन्होंने कई नायाब गीत लिखे। सहज, सरल भाषा में

अनोखी बात कह देने की उनमें एक कला थी। यही वजह है कि उनके गीत खूब लोकप्रिय हुए। शैलेन्द्र के गीतों की तारीफ करते हुए, वरिष्ठ आलोचक मैनेजर पाण्डेय अपने लेख 'जन आन्दोलन और जनवादी गीत' में लिखते हैं, "*शंकर शैलेन्द्र के गीतों की लोकप्रियता का अंदाज वही कर सकता है, जो जन आंदोलनों से जुड़ा हुआ है। संघर्ष में आस्था जगाने वाले ये गीत मजदूर आंदोलनों के समान किसान आंदोलनों के भी प्रेरणादायक हैं।... शैलेन्द्र के गीत साबित करते हैं कि आंदोलन से उपजी कला भी स्थायी होती है, बशर्ते कि उसमें जीवन के संघर्ष का संगीत हो!*" जाहिर है कि शैलेन्द्र ने अपने संघर्षों से बहुत कुछ सीखा था। संघर्ष ही उनके गुरु थे। संघर्षों में ही तपकर वे कुंदन बने।

शैलेन्द्र बेहद संवेदनशील, भावुक इंसान थे। फिल्मी दुनिया में गलाकाट माहौल में भी वे अपनी संवेदनशीलता को बचाए रहे। छोटी से छोटी बात उन्हें प्रभावित कर देती थी। वे जार-जार रोने लगते थे। शैलेन्द्र की संवेदनशीलता का जिक्र अपने संस्मरणों की किताब 'ऋणजल-धनजल' में करते हुए, प्रसिद्ध साहित्यकार पणीश्वरनाथ रेणु लिखते हैं, "*तीसरी कसम की शूटिंग के दिनों शैलेन्द्र जी मुझसे 'महुआ घटवारिन' की ऑरिजनल गीत-कथा सुनना चाहते थे, ताकि उसके आधार पर गीत लिख सकें। एक दिन हम 'पवई लेक' के किनारे एक पेड़ के नीचे जाकर बैठे। 'महुआ घटवारिन' का गीत मुझे याद नहीं था इसलिए मैंने एक छोटी सी भूमिका के साथ 'सावन भादों' का गीत अपनी भौंडी और मोटी आवाज में भरे गले से सुना दिया। गीत शुरु होते ही शैलेन्द्र की बड़ी-बड़ी आँखें छलछला आईं और गीत समाप्त होते-होते फूट-फूटकर रोने लगे। गीत गाते समय ही मेरे मन के बांध में दरारें पड़ चुकी थीं। शैलेन्द्र के आंसुओं ने उसे एक दम तोड़ दिया। हम दोनों गले लगकर रोने लगे!*" नागार्जुन, रेणु जैसे शैलेन्द्र के दोस्त जब भी बिहार से मुंबई जाते, उनके घर पर ही रुकते।

फिल्मकार राज कपूर से शैलेन्द्र की मुलाकात कैसे हुई और वे फिल्मों में किस तरह से आए? इसका किस्सा मुख्तसर में यूं है। मुंबई में इप्टा के एक कवि सम्मेलन आयोजित किया था, उसमें शैलेन्द्र अपना गीत 'जलता है पंजाब साथियो...' पढ़ रहे थे। श्रोताओं में मशहूर निर्माता-निर्देशक राज कपूर भी शामिल थे। उन्होंने जब ये गीत सुना, तो उन्हें ये बेहद पसंद आया। सम्मेलन के बाद राज

कपूर, शैलेन्द्र से मिले और उन्हें अपनी फिल्म में गाने लिखने की पेशकश की। लेकिन शैलेन्द्र ने इस पेशकश को यह कहकर ठुकरा दिया कि *"मैं पैसे के लिए नहीं लिखता। कोई ऐसी बात नहीं है, जो मुझे आपकी फिल्म में गाना लिखने के लिए प्रेरणा दे।"* बहरहाल एक वक्त ऐसा भी आया, जब शैलेन्द्र को पारिवारिक मजबूरियों के चलते पैसे की बेहद जरूरत आन पड़ी और वे मदद के लिए राज कपूर के पास पहुँचे। फिल्म में गाने लिखने की उनकी पेशकश को उन्होंने मंजूर कर लिया। राज कपूर उस वक्त अपनी फिल्म 'बरसात' बना रहे थे। फिल्म के छह गीत हसरत जयपुरी लिख चुके थे, दो गानों की और जरूरत थी। जिन्हें शैलेन्द्र ने लिखा। एक तो फिल्म का शीर्षक गीत 'बरसात में हम से मिले तुम' और दूसरा 'पतली कमर है, तिरछी नजर है'। साल 1949 में आई फिल्म 'बरसात' के इन दो गीतों ने उन्हें रातों-रात देश भर में मकबूल बना दिया। कलाकार, निर्देशक राज कपूर और शैलेन्द्र की जोड़ी ने आगे चलकर फिल्मी दुनिया में एक नया इतिहास रचा। उनकी जोड़ी ने एक साथ कई सुपर हिट फिल्में दीं। मसलन 'आवारा', 'अनाड़ी', 'आह', 'बूट पॉलिश', 'श्री 420', 'जागते रहो', 'अब दिल्ली दूर नहीं', 'जिस देश में गंगा बहती है', 'संगम' और 'मेरा नाम जोकर'। आरके बैनर के अलावा राज कपूर की ज्यादातर फिल्मों 'चोरी-चोरी', 'कन्हैया', 'आशिक', 'तीसरी कसम', 'अराउण्ड द वर्ल्ड', 'सपनों का सौदागर' आदि में भी शैलेन्द्र ने ही उनके लिए गीत लिखे। राज कूपर और शैलेन्द्र के बीच एक अलग ही रिश्ता था। राज कपूर उन्हें पुश्किन या कविराज के नाम से संबोधित करते थे।

फिल्मों में मशरुफियतों के चलते शैलेन्द्र अदबी काम ज्यादा नहीं कर पाए, लेकिन उनके जो फिल्मी गीत हैं, उन्हें भी कमतर नहीं माना जा सकता। शैलेन्द्र के इन गीतों में भी काव्यात्मक भाषा और आम आदमी से जुड़े उनके सरोकार साफ दिखलाई देते हैं। अपने इन फिल्मी गीतों में उन्होंने किसी भी स्तर का समझौता नहीं किया। गीतकार शैलेन्द्र के बारे में कहानीकार भीष्म साहनी का कहना था कि, *"शैलेन्द्र के आ जाने पर (फिल्मी दुनिया में) एक नई आवाज सुनाई पड़ने लगी थी। यह आजादी के मिल जाने पर, भारत के नए शासकों को संबोधित करने वाली आवाज थी। इसके तेवर ही कुछ अलग थे। बड़ी बेबाक, चुनौती भरी आवाज थी। इसमें दृढ़ता थी। जुझारुपन था। पर साथ ही इसमें अपने देश और देश की जनता के*

*प्रति अगाध प्रेमभाव था... पर साथ ही साथ शासकों से दो टूक पूछा भी गया था, 'लीडरो न गाओ गीत राम राज का/इस स्वराज का क्या हुआ किसान, कामगार राज का!'* शैलेन्द्र का दिल वाकई गरीबों के दु:ख-दर्द और उनकी परेशानियों में बसता था। उनकी रोजी-रोटी के सवाल वे अक्सर अपने फिल्मी गीतों में उठाते थे। फिल्म 'उजाला' में उनका एक गीत है, "*सूरज जरा आ पास आ, आज सपनों की रोटी पकाएंगें हम/ऐ आस्मां तू बड़ा मेहरबां, आज तुझको भी दावत खिलाएंगे हम!*" वहीं फिल्म मुसाफिर में वे फिर अपने एक गीत में रोटियों की बात करते हुए कहते हैं, "*क्यों न रोटियों का पेड़ हम लगा लें/रोटी तोड़े, आम तोड़े, रोटी-आम खा लें!*" दरअसल शैलेन्द्र ने भी अपनी जिंदगी में भूख और गरीबी को करीब से देखा था। वे जानते थे कि आदमी के लिए उसके पेट का सवाल कितना बड़ा है। रोजी-रोटी का सवाल पूरा होने तक जिंदगी के सारे रंग, उसके लिए बदरंग हैं। फिल्मों में शैलेन्द्र ने 800 से ज्यादा गीत लिखे, लेकिन इन गीतों में भी भाषा और विचारों की एक उत्कृष्टता है। अपने गीतों से उन्होंने हमेशा अवाम की सोच को परिष्कृत किया। वे जनता की नब्ज को पहचानने वाले गीतकार थे। अपने गीतों की लोकप्रियता के बारे में उनका कहना था कि "*इन सोलह वर्षों के हर दिन ने मेरे गीतकार को कुछ न कुछ सिखाया है।, एक बात तो दृढ़ता से मेरे मन में विश्वास बनकर बैठ गई है कि जनता को मूर्ख या सस्ती रुचि का समझने वाले कलाकार या तो जनता को नहीं समझते या अच्छा और खूबसूरत पैदा करने की क्षमता उनमें नहीं है। हाँ, वह अच्छा मेरी  नजरों में बेकार है, जिसे केवल गिने-चुने लोग ही समझ सकते हैं। इसी विश्वास से रचे हुए मेरे कई गीत बेहद लोकप्रिय हुए!*"

फिल्मी दुनिया के अपने छोटे से कैरियर यानी सिर्फ सत्रह साल में शैलेन्द्र ने कई फिल्मों में सुपर हिट गीत दिए। इनमें किन फिल्मों का नाम लें और किन को छोड़ दें। आवारा, अनाड़ी, बसंत बहार, दो बीघा जमीन, मुनीमजी, मधुमति, यहूदी, छोटी बहन, बन्दिनी, जंगली, जानवर, गाइड, आह, दिल अपना और प्रीत पराई, काला बाजार, सीमा, पतिता, छोटी-छोटी बातें, अब दिल्ली दूर नहीं आदि फिल्मों में उनके कभी न भुलाए जाने वाले गीत हैं। प्रहलाद अग्रवाल जिन्होंने राज कपूर पर एक बहुत अच्छी किताब 'राज कपूर: आधी हकीकत आधा फसाना' लिखी है, वे शैलेन्द्र के गीतों की जुबान की तारीफ करते हुए लिखते हैं, "जीवन के

गूढ़तम संदर्भों को दिल में उतर जाने वाली जुबान में सहज ही कह देना शैलेन्द्र का ही काम है।" उनकी यह बात सही भी है। शैलेन्द्र की जुबान का जादू यदि देखना है, तो इन गीतों पर नजर डालिये, 'आवारा हूँ या गर्दिश में' (आवारा), 'मेरा जूता है जापानी' (श्री 420), 'सब कुछ सीखा हमने न सीखी होशियारी' (अनाड़ी), 'तू प्यार का सागर है' (सीमा), 'सूरज जरा आ पास आ' (उजाला), 'दिल का हाल सुने दिलवाला' (श्री 420), 'मेरा नाम राजू घराना अनाम' (जिस देश में गंगा बहती है)। अपने मधुर गीतों के लिए शैलेन्द्र को अनेक अवार्डों से नवाजा गया। 'ये मेरा दीवानापन है' (यहूदी, 1958), 'सब कुछ सीखा हमने, न सीखी होशियारी' (अनाड़ी, 1959), 'मैं गाऊं तुम सो जाओ' (ब्रह्मचारी, 1968) गीतों के लिए उन्हें तीन बार सर्वश्रेष्ठ गीतकार का फिल्मफेयर अवार्ड मिला।

फिल्म के गीत लिखने की शैलेन्द्र की रचना प्रक्रिया भी अजब थी। लिखने के लिए वे सुबह-सवेरे कोई चार-पांच बजे के बीच उठकर समंदर के किनारे बैठ जाते थे। चूंकि वे कागज लेकर नहीं निकलते थे, लिहाजा सिगरेट की डिब्बी या उसकी पन्नी ही उनका कागज होता। उनके कई शानदार गीत इसी तरह से लिखे गए हैं। शैलेन्द्र ज्यादातर धुन पर गीत लिखते थे। संगीतकार पहले उन्हें धुन सुनाते और उसके बाद वे उस पर गीत लिख देते। हालांकि यह काम काफी मुश्किल है, लेकिन उन्हें कभी परेशानी पेश नहीं आई। शैलेन्द्र ने अपनी फिल्मी जीवन में कुल मिलाकर 28 अलग-अलग संगीतकारों के साथ काम किया। उसमें सबसे ज्यादा 91 फिल्में शंकर-जयकिशन के साथ कीं। 'बरसात' (साल 1949) से लेकर 'मेरा नाम जोकर' (साल 1970) तक राज कपूर द्वारा बनाई गई सभी फिल्मों के शीर्षक गीत उन्होंने लिखे, जो खूब लोकप्रिय हुए। राज कपूर, शैलेन्द्र की काफी इज्जत करते थे और यह इज्जत थी, शैलेन्द्र की बेज़ोड़ शख्सियत और उनके आमफहम गीतों की। शैलेन्द्र की मौत के बाद दिए गए एक इंटरव्यू में राज कपूर ने उनके बारे में कहा था कि *"शैलेन्द्र की रचना में उत्कृष्टता और सहजनता का यह दुर्लभ संयोग उनके व्यक्तित्व में निहित दृढ़ता और आत्मविश्वास से संबद्ध है। साथ ही उनके गीतों में ऊंचा दर्शन था, सीधी भाषा।"* यह बात बहुत कम लोगों को मालूम होगी कि फिल्म 'आवारा' का शीर्षक गीत शैलेन्द्र ने कहानी सुने बिना ही लिख दिया। गाना राज कपूर को सुनाया, तो उन्होंने इसे नामंजूर कर दिया। फिल्म जब पूरी बन गई, तो एक

बार फिर राज कपूर ने यह गीत सुना और ख्वाजा अहमद अब्बास को भी सुनाया। गाना सुनने के बाद अब्बास साहब की राय थी कि यह तो फिल्म का मुख्य गीत होना चाहिए। यह बात अब इतिहास है कि फिल्म जब रिलीज हुई, तो यह गीत देश की तमाम सीमाएं लांघकर दुनिया भर में मकबूल हुआ। राज कपूर जब भी रूस जाते, लोग उनसे इसी गीत की फरमाइश करते।

शैलेन्द्र, फिल्मों में देश की गरीब अवाम के जज्बात को अल्फाजों में पिरोते थे। यही वजह है कि उनके गाने आम आदमियों में काफी लोकप्रिय हुए। आम आदमी को लगता था कि कोई तो है, जो उनके दुख-दर्द को अपनी आवाज देता है। शैलेन्द्र के गीतों के बारे में मशहूर संगीत समीक्षक एम॰ देसाई की राय थी कि *"शैलेन्द्र चाहते थे कि उनके गीत सबकी समझ में आएं और उन्हें एक अनपढ़ कुली भी उसी मस्ती में गुनगुना सके, जिस अंदाज में कोई पढ़ा लिखा शहरी।"* वहीं निर्देशक विमल राय और बासु भट्टाचार्य की पत्नी रिंकी भट्टाचार्य शैलेन्द्र के गीतों के बारे में कहती हैं कि *"वो गरीबी का महिमा मंडन नहीं करते थे, न ही दर्द को सहानुभूति पाने के लिए बढ़ा-चढ़ाकर जताते थे। उनके गीतों में घोर निराशा भरे अंधकार में भी जीने की ललक दिखती थी। जैसे उनका गीत 'तू जिंदा है तो जिंदगी की जीत पर यकीन कर...।"*

साहित्यकार फणीश्वरनाथ रेणु की चर्चित कहानी 'तीसरी कसम उर्फ मारे गए गुलफाम' पर शैलेन्द्र ने एक फिल्म 'तीसरी कसम' भी बनाई। उस दौर के लिहाज से ये शानदार फिल्म थी, जिसे बाद में राष्ट्रीय पुरस्कार मिला। बंगाल फिल्म जर्नलिस्ट एसोसिएशन की तरफ से इस फिल्म को ग्यारह पुरस्कारों से नवाजा गया। मास्को फिल्म फेस्टिवल में भी यह फिल्म पुरस्कृत हुई। ख्वाजा अहमद अब्बास ने इसे सेल्यूलाइड पर लिखी कविता कहा। लेकिन व्यावसायिक तौर पर यह फिल्म नाकाम रही। फिल्म की नाकामी शैलेन्द्र बर्दाशत नहीं कर पाए। 14 दिसंबर 1966 को महज 43 साल की उम्र में शैलेन्द्र ने यह दुनिया छोड़ दी। ख्वाजा अहमद अब्बास और राजिन्दर सिंह बेदी ने फिल्मी दुनिया के शोषकों और दर्शकों को शैलेन्द्र की जान लेने का गुनहगार बतलाया, जिन्होंने 'तीसरी कसम' के साथ इंसाफ नहीं किया। अपने जिगरी दोस्त शैलेन्द्र की असमय मौत से राज कपूर को बड़ा झटका लगा। शैलेन्द्र के योगदान को रेखांकित करते हुए उन्होंने कहा, *"मैं ही नहीं भारत*

*की पूरी जनता इस महान कलाकार को कभी नहीं भुला पाएगी। क्योंकि यह उनका प्रतिनिधि था। उनका कवि था।"* कवि नागार्जुन ने अपने एक गीत से शैलेन्द्र को श्रद्धांजलि देते हुए लिखा,

> ***"गीतों के जादूगर का मैं छन्दों से तर्पण करता हूँ***
> **...जन मन जब हुलसित होता था, वह थिरकन भी पढ़ते थे तुम**
> **साथी थे, मजदूर-पुत्र थे, झंडा लेकर बढ़ते थे तुम**
> **युग की अनुगूंजित पीड़ा ही घोर घन-घटा सी गहराई**
> **प्रिय भाई शैलेन्द्र, तुम्हारी पंक्ति-पंक्ति नभ में लहराई।"**

शैलेन्द्र को इस दुनिया से गए, एक लंबा अरसा बीत गया, लेकिन उनके गीतों की एक-एक पंक्ति अब भी फिजां में लहरा रही है और अवाम को प्रेरणा दे रही है कि *"तू जिंदा है तो जिंदगी की जीत पर यकीन कर/अगर कहीं है स्वर्ग, तो उतार ला जमीन पर।"*

# 'तीसरी कसम', शैलेन्द्र और सुब्रत मित्र

*– जयनारायण प्रसाद*

'तीसरी कसम' और शैलेन्द्र का जिक्र जब भी होगा, इसके छायाकार सुब्रत मित्र हमसाए की तरह दिखेंगे। असल में भारतीय सिनेमा जगत में सुब्रत मित्र एक ऐसा नाम हैं, जिनका फिल्म के साथ जुड़ना ही उस फिल्म की कामयाबी में चार चाँद लगा देता था।

सुब्रत मित्र को यह कामयाबी सत्यजित राय की अनूठी बांग्ला फिल्म 'पथेर पांचाली' (1955) से मिली थी। सुब्रत मित्र इस फिल्म के कैमरामैन थे। भारत में बाऊंस लाइटिंग की तकनीक में सुब्रत मित्र को महारथ हासिल थी। विश्वभर में 'पथेर पांचाली' की सफलता ने सुब्रत मित्र के कद को और ऊँचा कर दिया था। शायद यही पहली वजह रही होगी कि शैलेन्द्र ने उन्हें अपनी टीम में शामिल किया और कैमरामैन के रूप में रखा। तब सत्यजित राय के साथ-साथ सुब्रत मित्र को भी देश-विदेश में पहचान मिलने लगी थी।

'तीसरी कसम' का जिक्र होते ही शैलेन्द्र के साथ बासु भट्टाचार्य का नाम भी आता है, क्योंकि बासु भट्टाचार्य 'तीसरी कसम' के निर्देशक थे। 'तीसरी कसम' के निर्देशन से पहले बासु ने 'उसकी कहानी' नामक एक लघु फिल्म का निर्देशन किया था। ठीक 1966 में ही 'तीसरी कसम' के निर्देशन से कुछ पहले।

अनुभव के नाम पर बासु भट्टाचार्य के पास ज्यादा कुछ नहीं था सिवाय इसके कि वे बिमल राय के सहायक थे फिल्म 'मधुमती' में। और 'मधुमती' के गीत शैलेन्द्र ने लिखे थे। वर्ष 1958 में बनी 'मधुमती' हिन्दी भाषा की वह फिल्म है, जिसमें अभिनेत्री वैजयंतीमाला ने तीन-तीन रोल किए थे। 'मधुमती' की कहानी ऋत्विक घटक ने लिखी थी और संवाद राजिंदर सिंह बेदी के थे। सलिल चौधरी ने इस फिल्म का संगीत दिया था। इस फिल्म में एक गाना मुबारक बेगम ने भी गाया था। उनका गाया 'हम हाले-दिल सुनाएंगे' आज भी लोग चाव से सुनते हैं। इस फिल्म के अन्य गीत- 'सुहाना सफर और ये मौसम हंसी' या 'दिल तड़प-तड़प'... यादगार गानों में शुमार है।

1958 में ही 'मधुमती' को 9 फिल्मफेयर एवार्ड मिले थे। 'मधुमती' की शूटिंग के दौरान ही शैलेन्द्र और बासु भट्टाचार्य में छनने लगी थी। कहते हैं कि इस दोस्ती के दरम्यान ही शैलेन्द्र ने ठान लिया था कि वे फणीश्वरनाथ 'रेणु' की कहानी 'मारे गए गुल्फाम' पर फिल्म बनाएँगे और इसके निर्देशन का जिम्मा बासु भट्टाचार्य को देंगे।

उसके बाद शैलेन्द्र और राज कपूर ने मिलकर अच्छे लोगों को चुनना शुरू किया। शैलेन्द्र ने सत्यजित राय और उनकी फिल्म 'पथेर पांचाली' की कामयाबी की खबर सुन रखी थी। इस तरह, सुब्रत मित्र का चयन हुआ और वे 'तीसरी कसम' के कैमरामैन बने। सुब्रत मित्र मानते थे कि 'तीसरी कसम' एक लैंडमार्क फिल्म है। उनका यह भी कहना था कि 'तीसरी कसम' के निर्देशक बासु भट्टाचार्य अगर 'आंचलिकता' से अच्छी तरह वाकिफ होते, तो बाक्स आफिस पर यह फिल्म हिट होती। सुब्रत मित्र यह भी कहते थे 'तीसरी कसम' की शूटिंग के वक्त बाबूराम इशारा और राज कपूर खुद चीजों को संभालते थे। मध्यप्रदेश में भोपाल के पास बीना में इसकी ज्यादातर शूटिंग हुई थी। वे बताते थे कि बी आर इशारा इसमें सहायक थे। शूटिंग के दौरान इशारा और बासु में 'बनती' नहीं थी, क्योंकि बासु का तकनीकी-ज्ञान मजबूत नहीं था।

12 अक्तूबर, 1930 में जन्मे सुब्रत मित्र का निधन कोलकाता में ही 70 साल की उम्र में वर्ष 2001 के आखिरी माह में हुआ। वे एक सिद्धहस्त सिनेमाटोग्राफर (छायाकार) थे। उनकी विश्वभर में ख्याति सत्यजित राय की 'पथेर पांचाली' के कैमरामैन के तौर पर तो है ही, राय की ज्यादातर फिल्मों के छायाकार के रूप में लोग सुब्रत मित्र को ही जानते हैं। उन्हें हिन्दी बहुत अच्छी नहीं आती थी, लेकिन हिन्दी के नामी लेखकों के बारे में उन्हें पता था।

सुब्रत मित्र का कहना था कि गीतकार शैलेन्द्र के मुँह से ही 'तीसरी कसम' की कहानी उन्होंने सुनी और रेणु के कथा-संसार के बारे में विस्तार से पूछा था। कहते हैं कि कहानी सुनने के बाद 'तीसरी कसम' को फिल्म फ्रेम में उतारते हुए सुब्रत मित्र कहानी के मर्म और संवेदना को पकड़े पाए थे, लेकिन इसके निर्देशक बासु भट्टाचार्य की तुनुकमिजाजी से वे कभी-कभी परेशान भी हो जाते थे।

सुब्रत दा का कहना था- 'बासु भट्टाचार्य में यदि 'तकनीकी समझदारी' रहती और 'आंचलिकता' के मर्म को जानते-समझते तो शूटिंग के दौरान राज साहेब को हस्तक्षेप नहीं करना पड़ता।' बी आर इशारा भी नाराज रहते थे। शैलेन्द्र की टीम के ज्यादातर सदस्य बासु का रंग-ढंग देखकर परेशान रहते थे।

सुब्रत मित्र ने 'तीसरी कसम' (1966) के ठीक सालभर पहले 1965 में जाने-माने निर्देशक जेम्स आयवेरी की फिल्म 'शेक्सपियर वाला' भी शूट किया था। 1986 में पद्मश्री से नवाजे गए सुब्रत मित्र रमेश शर्मा की 'न्यू दिल्ली टाइम्स' (1985) के भी कैमरामैन थे। इस फिल्म को भी राष्ट्रपति पुरस्कार मिला था और शशि कपूर को इसके लिए सर्वश्रेष्ठ अभिनेता चुना गया था।

सुब्रत मित्र की विश्वभर में पहचान राय मोशाय की 'देवी' (1960), 'महानगर' (1963) और 'चारुलता' (1964) के छायाकार के रूप में भी हैं। राय की ये तीनों फिल्में विश्व के कई फिल्म महोत्सवों में दिखाई गईं और सम्मानित भी हुईं। बड़ी बात है कि सत्यजित राय के साथ सुब्रत मित्र भी ग्लोबली जाने गए, क्योंकि सुब्रत मित्र का कैमरा ही 'फिल्म की आँख' थी। कोलकाता में सिनेमा के जानकार बताते हैं कि सुब्रत मित्र निर्देशक की 'आंख' को तुरंत पकड़ लेते थे। यह (पकड़) उन्हें 'गाड गिफ्टेड' थी।

बासु भट्टाचार्य के बारे में सुब्रत मित्र का कहना था कि वे (बासु) स्वप्नजीवी जरूर थे, लेकिन उम्र और अनुभव कम होने से वे बात-बात पर उखड़ जाते थे। शैलेन्द्र और राज साहेब को यह सब अच्छा नहीं लगता था। कभी-कभी वहीदा जी भी खफा हो जाती थीं। अंततः 'तीसरी कसम' किसी तरह पूरी हुई और वितरक के ना-नुकुर के बाद आनन-फानन में रिलीज भी हुई, लेकिन बाक्स आफिस का मुँह न देख सकी। सुब्रत मित्र के मुताबिक, 'एक अच्छी फिल्म सिर्फ शब्दों में सिमट कर रह गई।'

हालांकि, 'तीसरी कसम' को बाद में राष्ट्रपति पुरस्कार जरूर मिला, लेकिन इसकी कामयाबी को देखने के लिए शैलेन्द्र तरस गए और बेहद कम उम्र में चले भी गए।

# चांदी के पर्दे पर लोक की स्वर्णरेखा

*–प्रदीप जिलवाने*

**चलत मुसाफिर मोह लिया रे,**
**पिंजरे वाली मुनिया**

(फिल्म- तीसरी कसम, 1966)

**चली कौन से देश गुजरिया**
**तू सज धज के!**

(फिल्म- बूट पॉलिश, 1954)

**दैय्या रे दैय्या रे चढ़ गयो पापी बिछुआ**

(फिल्म- मधुमति, 1958)

शैलेन्द्र मूलत: बिहारी पृष्ठभूमि से आते हैं। मगर उनके 'लोक' में सिर्फ बिहार नहीं, बल्कि उनका जन्मस्थान पंजाब (रावलपिंडी जो कि वर्तमान में पाकिस्तान में आता है, और पंजाब प्रांत का हिस्सा है), उनकी किशोरावस्था के दिनों का मथुरा अंचल, बाद में बनी उनकी कर्मभूमि मुम्बई भी शामिल होते हैं। इस तरह शैलेन्द्र के लोक का विस्तार औरों से अधिक समृद्ध और विकसित दिखाई देता है। शैलेन्द्र अपने गीतों में लोक परंपरा, लोक चेतना और लोक जीवन की उत्कृष्ट झाँकियाँ और उनका खरा खरा रंग-ढंग अपने करिश्माई शब्दों में परोसते हैं।

किसी भी रचनाकार के लिए फिर भले ही वह विशुद्ध साहित्यिक लेखन करे या सिनेमाई लेखन करे, जब तक उसके पास 'लोक' की समझ नहीं होती है, उसका लेखन सतही होकर ही रह जाता है। अल्पकाल के लिए भले ही तामझाम से कोई कुछ देर तक चल जाए। लेकिन वह लम्बी रेस का घोड़ा कतई साबित नहीं हो सकता है। शैलेन्द्र के पास अपनी स्थानीकता और स्मृतियों का एक कभी न खत्म होने वाला जखीरा था, जिसमें से उन्होंने समय समय पर नायाब रत्न निकाले और दुनिया को उनका साक्षात्कार कराया। हिन्दी सिनेमा की सार्वकालिक महान फिल्म 'तीसरी कसम' लोक जीवन का अनुपम अप्रतिम उत्कर्ष है। या यूँ भी कहा जा सकता है कि 'तीसरी कमस' सिनेमाई चांदी के पर्दे पर लोक उत्सव की स्वर्णरेखा से लिया गया एक असमाप्त और अविस्मरणीय छंद है।

**सजनवा बैरी हो गए हमार!**
**चिठिया हो तो हर कोई बाँचे**
**भाग ना बाँचे कोय**
**करमवा बैरी हो गए हमार!**
**सजनवा बैरी...**
**जाए बसे परदेस सजनवा सौतन के भरमाए**
**न संदेश न कौनऊ खबरिया रुत आए रुत जाए**
**ना कोई इस पार हमारा, ना कोई उस पार**
**सजनवा बैरी...**
**सूनी सेज गोद मोरी सूनी मरम ना जाने कोय**
**छटपट तड़पे एक बिचारी ममता आँसू रोय**
**डूब गए हम बीच भँवर में, करके सोलह पार**
**सजनवा बैरी...**

(फिल्म- तीसरी कसम, गीत- सजनवा बैरी हो गए...)

शैलेन्द्र के पास जो लोकदृष्टि है, वह सचेत, सुलझी हुई और सुस्पष्ट है, वहाँ कुछ भी अनायास नहीं है, और न ही थोपा हुआ या ठूँसा हुआ है। इस गीत में एक जगह है, जहाँ मैं अक्सर ठहर जाता हूँ, *'चिठिया हो तो हर कोई बाँचे'* और चाहता हूँ कि आप भी अभी इसी पंक्ति पर ठहर जाएँ। क्योंकि बात चिट्ठियों की निकली है, तो वे सैकड़ों खत, उनमें लिखी जज़्बात से भीगी वे हजारों बातें, और वे चेहरे जिन्हें, अरसों-बरसों से नहीं देखा है, सब स्मृतियों की समुद्री सतह पर फिर तैरने लगे हैं। कुछ और भी याद आ रहा है। 'तीसरी कसम' के निर्माण के दौरान की बातों का जिक्र करते हुए रेणु ने अपने संस्मरण में लिखा है, कि शैलेन्द्र ने जब फिल्म 'बंदिनी' के गीत 'अबके बरस भेज...' रेणु को सुनाया था, तो देर तक दोनों मित्र रोते रहे थे। इस गीत में भी चिट्ठियाँ हैं, पातियाँ हैं।

**अबके बरस भेज भैया को बाबुल**
**सावन में लीजो बुलाय रे**
**लौटेंगी जब मेरे बचपन की सखियाँ**
**दीजो संदेशा भिजाय रे**
**अबके बरस भेज...**

**अंबुआ तले फिर से झूले पड़ेंगे**
**रिमझिम पड़ेगी फुहारें**
**लौटेंगी फिर तेरे आँगन में बाबुल**
**सावन की ठंडी बहारें**
**छलके नयन मोरा कसके रे जियरा**
**बचपन की जब याद आय रे!**
**अबके बरस भेज...**
**बैरन जवानी ने छीने खिलौने**
**और मेरी गुड़िया चुराई**
**बाबुल थी मैं तेरे नाजों की पाली**
**फिर क्यों हुई मैं पराई**
**बीते रे जुग कोई चिठिया ना पाती**
**ना कोई नैहर से आय रे।**
**अबके बरस भेज...**

(फिल्म- बंदिनी, गीत- अब के बरस भेज...)

अब इन पंक्तियों पर थोड़ा गहराई से विचार करें तो हम पाएंगे कि शैलेन्द्र के निर्माण में उनके 'लोकेल' की क्या भूमिका रही होगी? शैलेन्द्र की रचना परंपरा की जड़ें आखिर कहाँ हैं? प्रगतिशील चेतना के इस सार्वकालिक महान सिनेमाई गीतकार की नाल आखिर कहाँ गड़ी हुई है?

**अजब तेरी दुनिया हो मोरे रामा**
**कदम कदम देखी भूल भूलैया**
**गजब तोरी दुनिया हो मोरे रामा**
**अजब तोरी...**
**कोई कहे जग झूठा सपना पानी की बुलबुलिया**
**हर किताब में अलग अलग है इस दुनिया का हुलिया**
**सच मानो या इसको झूठी मानो**
**बेढब तोरी दुनिया हो मोरे रामा**
**अजब तोरी...**

(फिल्म- दो बीघा जमीन, गीत- अजब तोरी दुनिया)

या

**दैय्या रे दैय्या रे**
**चढ़ गयो पापी बिछुआ**
**ओ हाय हाय रे मर गई, कोई उतारो बिछुआ**
**कैसो रे पापी बिछुआ!!**

(फिल्म- मधुमति 1958, गीत- दैय्या रे दैय्या रे...)

फिर एक दूसरी चीज होती है, लोक से लोक के निर्माण में प्रवेश और विकास। गीतकार शैलेन्द्र के पास यही अनोखा हुनर है कि वे लोक से चीजों को उठाकर उसे लोक को ही वापस भी लौटाते हैं, साथ ही इस क्रम में वे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से लोक को समृद्ध करने में भी बड़ी भूमिका निभाते हैं और एक तरह से खुद भी अपने लोक में लौटने या उसमें प्रवेश करने या शायद उसे पुनः पुनः जीने का यत्न करते हैं। शैलेन्द्र के गीतों में लोक इतनी सहजता और विश्वसनीयता से दाखिल होता है कि पाठक या श्रोता के जहन में स्थानीकता का रस स्वत: ही घुलने लगता है।

**पान खाये सैंया हमारो**
**साँवली सुरतिया होंठ लाल लाल**
**हाय हाय मलमल का कुर्ता**
**मलमल के कुर्ते पे छींट लाल लाल**
**पान खाए...**

(फिल्म- तीसरी कसम 1966, गीत- पान खाये सैंया...)

या

**रमैय्या वस्तावैय्या रमैय्या वस्तावैय्या**
**मैंने दिल तुझको दिया-2**
...
**नैनों में थी प्यार की रोशनी**
**तेरी आँखों में ये दुनियादारी ना थी**
**तू और था, तेरा दिल और था**
**तेरे मन में ये मीठी कटारी ना थी**

**मैं जो दु:ख पाऊँ तो क्या**
**आज पछताऊँ तो क्या**
**मैंने दिल तुझको दिया...**

(फिल्म- श्री 420, गीत- रमैय्या वस्तावैय्या....)

अपने लोक के प्रति इतना अधिक समर्पित और लोकचेतना संपन्न, शैलेन्द्र के अतिरिक्त कोई दूसरा गीतकार कहीं दूर तक नजर नहीं आता है।

बात शैलेन्द्र के सिनेमाई गीतों के अविस्मरणीय लोकगीत से जुड़ी है,

**चली कौन से देश गुजरिया तू सज धज के**
**जाऊ पिया के देश ओ रसिया मैं सज धज के**
**चली कौन से देश...**
**छलके मात-पिता की अँखियाँ**
**रोवे तेरे बचपन की सखियाँ**
**भैया करे पुकार ना जा घर-आँगन तज के**
**चली कौन से देश...**
**दूर देश मेरे पी की नगरिया**
**वो उनकी मैं उनकी संवरिया**
**बाँधी लगन की डोर मैंने सब सोच समझ के**
**चली कौन से देश...**

(फिल्म- बूट पॉलिश, गीत- चली कौन से देश...)

देशज लोकगीत परंपरा के अनुकरण पर रचे इस गीत में हम और आप शैलेन्द्र को अभिनय करते हुए भी देख सकते हैं।

दूसरी बात यह कि रचनाधर्मिता में लोक की उपस्थिति सिर्फ स्थानीय भाषा, बोली के शब्दों को रचना में जगह देकर ही संभव है, यह कतई अनिवार्य नहीं है। सिनेमा ही नहीं, साहित्य में भी मुझे बहुतेरे उदाहरण याद आ रहे हैं, लेकिन चूँकि यहाँ बात शैलेन्द्र की है, उनके गीतों में लोक की है तो एक बेहद मधुर गीत कानों में बजता हुआ सा सुनाई दे रहा है, लो मैं सुनता हूँ और आप भी सुनिये-

**ओ पंछी प्यारे साँझ सकारे**
**बोले तू कौन सी बोली... बता रे**

**पंछी प्यारे...**
**मैं तो पंछी, पिंजरे की मैना**
**पंख मेरे बेकार**
**बीच हमारे सात रे सागर**
**कैसे चलूँ उस पार**
**ओ पंछी प्यारे...**
**फागुन महीना फूली बगिया**
**आम झरे अमराई**
**मैं खिड़की से चुप चुप देखूँ**
**रितु वसंत की आई**
**ओ पंछी प्यारे...**

(फिल्म- बंदिनी, गीत-ओ पंछी प्यारे...)

सचिनदेव बर्मन का संगीत, आशा भोंसले की कोकिल सी सुमधुर आवाज और शैलेन्द्र के शब्दों का जादू, निःसंदेह इस गीत की पहली विशेषताएँ हैं, लेकिन साथ ही इस गीत का प्रभावपूर्ण दृश्यांकन भी इस अप्रतिम गीत को अपनी तरह का अनोखा गीत बनाता है। गीत में धान कूटे जाने की धम्म धम्म भी है तो सुपड़ियों में अनाज को फटकारने की लयपूर्ण खड़खड़ भी है। वस्तुतः इस गीत में तात्कालीन सामान्य भारतीय ग्राम्य जीवन की एक अत्यंत मनोरम झाँकी नजर आती है, जिसमें पत्थर की परंपरागत आटा चक्की पर अनाज पीसती महिलाएँ हैं, दाल आदि को साफ-सूफ करती महिलाएँ हैं, अनाज बीनने चुनने और कपड़े धोने तथा सिलाई कढ़ाई जैसे नितांत घरेलू काम करती महिलाएँ हैं, और काम करने के साथ-साथ ये गीत गा रही हैं, गुनगुना रही हैं, और यह सब इस गीत में महज दृश्य बनकर ही दाखिल नहीं होता है, बल्कि दृश्य के भीतर से अधिक, दृश्य बाहर यह गीत अपनी एक विलग और समानांतर सृष्टि का निर्माण करता है, जो हमारे लोक का प्रतिबिंब रचती है और प्रतिनिधित्व करती है, जिसमें इन सब क्रियाकलापों एवं कार्य व्यवहारों का स्वर गीत खत्म होने के बाद भी हमारे साथ बना रहता है। अब जब मैंने यह आपको याद दिला दिया है, तो कितना अच्छा होगा अगर इस गीत को आप अभी यूट्यूब पर एक बार फिर सुन ले, देख लें।

# याद आ गया कोई...

*–वेद विलास उनियाल*

शैलेन्द्र के गीत जनमानस को अपने ही गीत लगते हे। कुछ इस तरह जैसे शैलेन्द्र के गीतों में उनकी अपनी ही अनुभूतियाँ हों। जीवन के हर पक्ष पर गीत लिखना एक कला और व्यापक सोच का दायरा हो सकता है। और जीवन के अलग-अलग पहलुओं पर लिखा भी गया। फिर ऐसा क्या अलग माने कि शैलेन्द्र अपने समय के गीतकारों में कुछ अलग नजर आए। शैलेन्द्र के गीतों में जीवन के संघर्षों से जूझते इंसान के दुख दर्द, आशा निराश के बीच अपने को खड़े रहने की ताकत और सबल बनाने का सपना दिखता रहा। उनके गीत लोकजीवन से शब्द तलाशते रहे वहीं प्यार की अनुभूतियों का संपादन भी महसूस कराते रहे। लेकिन कहना होगा कि इन सबके बावजूद शैलेन्द्र के गीतों में अगर सबसे अलग अनूठा कोई पक्ष रहा तो वे उनके दर्शन का था। वास्तव में शैलेन्द्र के गीतों में छिपा दर्शन ही उन्हें अनंत ऊँचाई देते हैं। इससे भी खास बात यह रही कि गीतों में दार्शनिकता का भाव लाने के लिए वह किसी दुरूह किस्म की भाषा के फेर में नहीं पड़े बल्कि इसके ठीक विपरीत उन्होंने गीतों में अभिव्यक्ति के लिए ऐसे शब्द चुने जिसे हर कोई साथ-साथ गुनगुना सका। शैलेन्द्र के गीत फिजां में इस तरह गूँजे कि जो उन गीतों के मर्म को समझ पाया उसने उसे उस भाव में लिया और जो बहुत दूर तक नहीं गया उसके लिए दिल का हाल सुने दिल वाला गाने का मौजू अंदाज हो गया। पर यह बात दिखती है कि शैलेन्द्र के हर गीत के पीछे का भाव मन को झकझोरता है। दूर आकाश तक निगाह जाती है। उनके जिस किसी गीत को बहुत सहजता से लोग सुन लेते हैं उसके पीछे का आशय मर्म बहुत गहरा होता है। दशकों बाद भी शैलेन्द्र के गीत फिंजां में गूँज रहे हैं। और स्पष्टता के साथ अपना प्रभाव लिए हुए।

शैलेन्द्र के गीतों की खासियत यह थी कि बहुत सरल शब्दों में वह बड़ी बात कह जाते थे। आप कह सकते है कि मेरा जूता है जापानी ये पतलून इंग्लिशतानी गीत को इस इस मिजाज का कह सकते हैं लेकिन इसी गीत के गूढ़ भाव में जाएँगे तो यह एक बड़ा फ़लसफ़ा नजर आता है। जिसमें अपने अहसास को अपने अस्तित्व को समझने और उसे अहमियत देने का भाव नजर आता है।

शैलेन्द्र के कुछ गीतों को लें, **छोटी सी ये जिंदगानी रे, बहुत दिया देने वाले ने तुझको, आजा रे परदेशी, जिंदगी ख्वाब है, सजन रे झूठ मत बोलो।** ये सारे गीत जिंदगी को समझने की ही तो कोशिश है।

शैलेन्द्र के गीत समाज के शब्द चित्र हैं। वह आसपास की दुनिया है। जीवन का संघर्ष विवशता और ललक का भाव उनके गीतों में झलकता रहा। आम आदमी के लिए उन्होंने शब्द चुने एक श्रमिक की आवाज उनके गीतों में मुखरित हुई। धारा और विचारों की छीना झपटी से परे शैलेन्द्र को उस ऊँचाई पर देखना होगा जहाँ वह जिंदगी के गीत लिखते थे। उनकी पक्षधरता केवल आम इंसान के लिए थी। नन्हें मुन्हें बच्चे तेरी मुट्ठी में क्या है मुट्ठी में है तकदीर हमारी वाला दृष्टिकोण भी है। आवारा हूँ का दर्शन दूर मुल्क के गोरे लोगों ने भी पहचाना। ...जख्मों से भरा सीना है मेरा गाता हूँ खुशी के गीत मगर जैसे पंक्तियों को शैलेन्द्र ही लिख सकते थे। शैलेन्द्र ने आजाद होते देश को भी देखा और बंटवारे का देश भी देखा। सच यही है कि शैलेन्द्र ने जीवन के मूल्यों को सबसे ज्यादा महत्त्व दिया।

किसी भी गीत को किसी भी तरह व्याख्या करके देखा जा सकता है लेकिन उनकी राजनीतिक जागरूकता किसी हवा में बह जाने वाली नहीं थी। एक तरह से जनमानस के लिए वह बुरे दृश्यों और बुरे ख्वाबों से लड़ रहे थे। इसलिए वह लिख गए, एक दिन दुनिया बदल कर रास्ते पर आएगी आज ठुकराती है हमको कल मगर शरमाएगी। वह जिस कल्पना को साकार करना होता देखना चाहते थे उसमें यही भाव था, किसी की मुस्कराहटों पे हो निसार किसी का दर्द मिल सके तो ले उधार। शायद किसी भी नक्षत्र की प्रखरता को सीमित कर देते हैं जब उसे किसी धारा या खेमे से ही जोड़ कर देखते हैं। एक तरह की संतुष्टि का भाव जरूर होता है लेकिन उस व्यक्तित्व का पूरा फलक नहीं देख पाते। शैलेन्द्र जैसे गीतकारों के साथ भी यही हो जाता है। शैलेन्द्र के गीतों को आत्मसात किया जाए तो वह ऐसी दीवारों कोठरियों को तोड़ते हुए उन्मुक्त होकर बहने लगते हैं। सीधा जनता से संवाद करते हैं। उन गीतों में केवल सच्चाई होती है। होठों पे सच्चाई होती है। कुछ लोग जो ज्यादा जानते हैं इंसान को कम पहचानते हैं ये पूरब है पूरब वाले हर जान की कीमत जानते हैं।

पूरब के दर्शन को और जीवन को जिस सहजता से वह समझा गाए वह अद्‌भुत है। वह इंसान के लिए संतोष पाने जैसी अवस्था के लिए जूझते दिखे। उनके शब्दों में वह छटपटाहट दिखी। साथ ही जो है जितना पा सके उसमें भी संतोष आश्वस्ती का भाव, अपने कष्टों में भी अधीर न होने का संयम उनकी गायकी में आता रहा। अपने मन के दर्द को छिपाता उनका गीतकार गाता रहा। शैलेन्द्र के गीतों में यह गीत जिंदगी में एक तरफ अति लालसाओं पर विराम लगाता है दूसरी ओर मन से न हारने के लिए प्रेरित करता है। "बहुत दिया देने वाले ने तुझको आंचल ही न समाए तो क्या कीजे, बीत गए जैसे ये दिन रैना बाकी भी कट जाए दुआ कीजिए। देंगे दुख कब तक भरम के ये चोर, ढलेगी ये रात प्यारे फिर होगी भोर, वहाँ देर भले है अंधेर नहीं घबरा के यूं गिला मत कीजिए।"

शैलेन्द्र के गीत जीवन रहस्य को समझने की कोशिश करते रहे, मैं दिए की ऐसी बाती जल न सकी बुझ भी न पाती, आ मिल मेरे जीवन साथी, मैं नदिया फिर भी मैं प्यासी भेद ये गहरा बात जरा सी, वास्तव में इस अलौकिक संसार के रहस्य को किसने जाना। ऐसे गई गीत हैं जिनमें इस जीवन की थाह लेने वह विचरते हुए दिखे। ढूँढ़ते ढूँढ़ते चार पाँच जिन पंक्तियों को लिख गए वही अमनोल हो गई। यही विचरना किसी सिद्ध पुरुष से लिखवा देता है, लाख लुभाएँ महल पराए अपना घर फिर अपना घर है। शैलेन्द्र दुनिया को बदलना चाहते थे। लेकिन वह जानते थे कि दुनिया यूँ ही एकाएक नहीं बदलती। वह करुणा उदारता मानवीयता के पूरे दर्शन में होले होले अपनी बात समझाते थे। इसलिए शैलेन्द्र के गीतों में कोई जिद्द/अहम नहीं था बल्कि जमाने को सच को सलीके से कहने का भाव था। उनके गीत स्पष्ट थे। उनके गीतों में गहराई दिखी। उनके गीत जीवन की सच्चाई उसके दर्शन को अभिव्यक्त करते रहे। गाइड का गीत सुना जाता है मुसाफिर जाएगा कहाँ। जिंदगी की आपाधापी, एक दौड़। पल भर की छइयां। कुछ तेरा न मेरा मुसाफिर जाएगा कहाँ। बन्दिनी फिल्म के लिए वह एक छोर या उस छोर की कशमकश को पन्नों पर उतार लाए। आखिर जीवन के यर्थाथ को साकार करते दिए मैं बन्दिनी पिया की संगिनी हूँ साजन की। और गाइड में काँटों से खींच के ये आँचल गीत लिखते हुए विवशता में जकड़े मन को उड़ान भरने की हामी देते दिखे। शैलेन्द्र के गीतों का

दर्शन यही है। जहाँ किसी हारे मन की फिर जीने की तमन्ना होती है। ये करुणा उदारता और सच्चाई के शब्द हैं।

शैलेन्द्र ने जीवन में दुख दर्द देखा। जिस कवि गीतकार ने इतने सुंदर गीत लिखे उसकी स्वयं की कविता तीसरी कसम उसे रुला गई। यह अजब रीत है। लेकिन अपनी जिद पर कायम रखने का एक अंदाज भी। शैलेन्द्र से ही यह हो सकता था। फिल्म में उनके लिखे कालजयी गीत हैं। गीत कविता का शायद ही कोई पक्ष छूटा हो। रोमेंटिज्म पर भी जीवन दर्शन छाया रहा। ये कौन हँसता है फूलों में छिपकर बहार बेचैन है किसकी धुन पर। जैसे अल्हड़ चले पी से मिलकर। उनका पहला गीत ही प्रेम गीत था बरसात में भीगा हुआ। बरसात में हमसे मिले तुम सजन तुमसे मिले हम। शैलेन्द्र ने प्रेम की पराकाष्ठा की ऊँचाई तक समझा है, इस पंक्ति पर गौर कीजिए, देख तूने ही कहा था प्यार में संसार है, हम जो हारे दिल की बाजी ये तेरी ही हार है। कहीं न कहीं आज के समय में नेहा कक्कड़ शायद इन्हीं पंक्तियों को नई सजावट से सजाती है, इसमें तेरा घाटा मेरा कुछ नहीं जाता। ज्यादा प्यार हो जाता दिल सह नहीं पाता। शैलेन्द्र गीतों के राजकुमार यूँ ही नहीं कहे जाते। प्रेम भावुकता के गहरे गीत लिखे।

सजनवा बैरी हो गए हमार, हाय रे ओ दिन क्यों ना आए, ये मेरा दिवानापन है, झूमती चली हवा जैसे गीत जीवन को गहरे आत्मसात करने के बाद निकलते हैं। ये गीत आँसुओं से तरबतर करते हैं। पिया तोसे नैना लागे जैसा गीत तो उपवन के फूलों सी महक बिखेरता है। तो जोगी जबसे तू आया मेरे द्वारे की अलग सी लहक है। जुल्मी संग आँख लड़ी गीत में अल्हड़ सा समर्पित प्रेम है तो बोल री कठपुतली प्रेम में दर्शन का एकाकार है।

शैलेन्द्र के गीतों में जीवन के हर पक्ष के रंग बखूबी उभरे थे। भारतीय फिल्म संगीत में शैलेन्द्र का बड़ा स्थान है। उनके लिखे गीतों को जमाने ने गुनगुनाया उसका मर्म महसूस किया। आंचलिकता कस्बा और गाँव के परिवेश पर बुनी कहानियों को शैलेन्द्र ने ओंस में भीगे मोती जैसे शब्द दिए। चलत मुसाफिर मोह लियो रे, अबके बरस भेज, कैसे मनाऊ पियुवा जैसे गीत इसकी बानगी है। ये कालजयी गीत है इसमें जीवन दर्शन हैं। उनके गीतों में भारतीय जीवन मूल्यों के

प्रति गहरा राग दिखा। हम उस देश के वासी हैं, धरती कहे पुकार के, न जाने कैसे कैसे तराने लिख गए शैलेन्द्र।

उत्तराखंड के प्रसिद्ध लोकगायक और संस्कृतकर्मी केशव अनुरागी ने कभी बहुत मधुर कंठ में राजा गोपीचंद के गीत को लोकभाषा में गाया था, सदा ये धरती नी रैंदी, बजर पड़े टूट जाई। इस गीत का भाव यही है कि हाथी घोड़े चौबारे सब यहीं रह जाएँगे। शैलेन्द्र यही तो कह कर गए, तुम्हारे महल चौबारे यहीं रह जाएंगे। सजन रे झूठ मत बोलो खुदा के पास जाना है। चीजें एक दूसरे की पूरक होती हैं।

जीवन को देखने के दो रास्ते हैं। एक तरफ कहा जाता है जीना यहाँ मरना यहाँ इसके सिवा जाना कहाँ, तो वहीं एक दर्दीला स्वर उभरता है दे दे के ये आवाज कोई हर घड़ी बुलाए, फिर जाए तो उस पार कभी लौट के न आए। शायद जीवन के इसी असमंजस में पड़े शैलेन्द्र यह लिख गए कि 'मुसाफिर तू जाएगा कहाँ।'

सूफी दर्शन में चार कहार मोरी डोलियां उठावें मोरा अपना बेगाना छूटो जाए रे, शैलेन्द्र ने इसी दर्शन पर लिखा, चंद दिन था बसेरा हमारा यहाँ हम भी मेहमां थे घर तो उस पार था। हमसफर इक दिन बिछुड़ना ही था।

# शैलेन्द्र के गीतों में प्रगतिशील मूल्य

*– नलिन विकास*

प्रगतिशील शब्द का प्रयोग 1930 के दशक में हिंदी में ही नहीं पूरे भारतीय साहित्य में मिलने लगता है। उन्नत तथा विकसित मान्यताओं की स्थापना करने के साथ-साथ यह व्यक्ति को यथार्थ सत्य की ओर आकृष्ट करती है। प्रगतिशील साहित्य राष्ट्र की भावना और उसकी भौगोलिक सीमा का अतिक्रमण करते हुए शोषित एवं उत्पीड़ित जीवन जीने के लिए विवश करने वाले विचारों का विरोध करता है। अपने इसी उद्देश्य के कारण प्रगतिशील साहित्य हिंदी ही नहीं बल्कि समस्त भारतीय भाषाओं के साहित्य में अत्यंत लोकप्रिय रहा है।

प्रगतिशील लेखक संघ के कोलकाता अधिवेशन (1938) का घोषणा-पत्र में प्रगतिशीलता की अवधारणा को स्पष्ट करता है– ''हमारा विश्वास है कि भारत का नया साहित्य तभी सफल और सार्थक होगा जब वह हमारी आज की समस्याओं का हल ढूढ़ेगा। जो भी हमें परमुखापेक्षी, निष्क्रिय और तर्कहीन बनाता है वह सभी हमारे लिए प्रतिक्रियात्मक है और जो भी हममें आलोचनात्मक प्रवृत्ति जगाता है जो बुद्धि और तर्क के प्रकाश में संस्थाओं और परंपराओं की समीक्षा करता है जो भी हमें सक्रिय बनाता परस्पर संगठित करता है हमें बदलकर समुन्नत करता है उस सबको हम प्रगतिशील मानते हैं।''[1]

शैलेन्द्र ने जब लिखना शुरू किया वह साहित्य में प्रगतिवाद की बुलंदियों का दौर था। वे प्रोगेसिव रायटर्स एसोशियन के सदस्य थे। सन 1942 में रेलवे इंजीनियरिंग की पढ़ाई करने वे बंबई आए और वहीं रेलवे की नौकरी करते हुए ट्रेड यूनियन से जुड़ गए। अगस्त आंदोलन के दौरान वे जेल भी गए। वे 'इप्टा' के संस्थापक सदस्यों में से एक थे और बंबई की इप्टा इकाई की गान मंडली के साथ सक्रिय रूप से जुड़े हुए थे। इप्टा की सोहबत में उनकी जनवादी सोच को और धार मिली।

उन्होंने फिल्म 'बरसात' का टाइटल गीत ''बरसात में तुमसे मिले हम सजन बरसात में'' लिखा जिसे हिंदी सिनेमा के इतिहास में पहला टाइटल गीत होने का दर्जा प्राप्त है। उन दिनों विभाजन पर लिखी उनकी कविता 'जलता है पंजाब'

काफी सुर्खियों में थी। अगस्त 1947 में इप्टा के एक कवि सम्मेलन में शैलेन्द्र को सुनकर राजकपूर उनसे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने शैलेन्द्र से अपनी फिल्म 'आग' के लिए गीत लिखने का अनुरोध किया लेकिन तब शैलेन्द्र तैयार नहीं हुए। बाद में 'बरसात' के लिए उन्होंने दो खूबसूरत गाने भी लिखे।

यह वह दौर था जब एक विद्रोही कवि का एक फिल्मी गीतकार के रूप में संक्रमण हो रहा था। यह शैलेन्द्र की शख्सियत थी कि उन्होंने कभी अपने कवि कर्म से समझौता नहीं किया। फिल्म विधा की तमाम बंदिशों में रहकर भी उन्होंने भाषा के नए-नए प्रयोग किए और अभिव्यक्ति के नए मुहावरे गढ़कर अपने हुनर का लोहा मनवाया।

नागार्जुन की तरह शैलेन्द्र ने राजनीति को कविता का विषय बनाया। नेताओं की कथनी और करनी में जमीन-आसमान का अंतर शैलेन्द्र को मर्माहत करता है। शासकों से सवाल करते हुए वे लिखते हैं–

**''लीडरो, न गाओ गीत राम राज का,**
**इस स्वराज का।**
**क्या हुआ किसान कामगार राज का?''**

शैलेन्द्र ने सदैव साधारण जन के लिए कविता लिखी। पीड़ित-वंचित वर्गों के जीवन की कहानी कहने की कला में वे माहिर थे। अपनी कविता में उन्होंने सर्वहारा के संघर्ष को चित्रित किया है, मजदूर वर्ग की आवाज को बुलंद किया है। 1948 में लिखी अपनी चर्चित कविता ''नेताओं को न्यौता'' में सामजिक असमानता, शोषण और उत्पीड़न पर वे तीखा व्यंग्य करते हैं। नेताजी को मजदूरों की बस्ती में पधारने का न्यौता देते हुए वे कहते हैं–

**''लीडर जी, परणाम तुम्हें हम मजदूरों का**
**हो न्योता स्वीकार तुम्हें हम मजदूरों का**
**एक बार इन गंदी गलियों में भी आओ**
**घूमे दिल्ली-शिमला, घूम यहां भी जाओ।''**

नेताओं के ऐशो आराम और दोगलेपन का पर्दाफाश करने वाली इस कविता को प्रगतिशील शायर कैफ़ी आज़मी ने 'प्रोग्रेसिव लिट्रेचर का खास दस्तावेज़''

माना है। असमानता और गैर बराबरी की पीड़ा शैलेन्द्र को किस कदर परेशान करती थी, इसकी सशक्त अभिव्यक्ति इन पंक्तियों में हुई है—

**''तब सवाल पैदा होगा, क्या तुम्हें खिलाएं**
**ज्वार बाजरे की रोटी या भात बनाएं**
**तुम तो गेहूं ही गेंहू खाते आये हो**
**बड़े बाप के बेटे, सब पाते आए हो**
**तुम भाकरी ज्वार की कैसे खा पाओगे**
**डर लगता है तुम्हें न बदहजमी हो जाए**
**राजनीति का किरियाकरम शिथिल पड़ न जाए''**

शैलेन्द्र का बचपन अभावों में बीता। शोषित दलित समुदाय से ताल्लुक रखने वाले शैलेन्द्र को आर्थिक तंगी ने जनता का कवि बना दिया। 'भूत' शीर्षक कविता में बचपन की पीड़ादायी स्मृतियों की अत्यंत सहज अभिव्यक्ति हुई है—

**''जीवन के शत संघर्षों में रत रहकर भी,**
**कभी-कभी याद आ ही जाती है बिसरी दुख भरी कहानी!**

..............................

किंतु, दूसरे क्षण सुन पड़ती—
**कोटि-कोटि कंठों की व्याकुल विकल पुकारें,**
**अम्बर की छाती विदारने वाली नवयुग की की ललकारें,**
**खून-पसीने से लथपथ पीड़ित शोषित मानवता की दुर्दम हुंकारें!**

प्रगतिशील लेखक भीष्म साहनी ने उन्हें 'अन्याय और उत्पीड़न की ताकतों को चुनौती देने वाला कवि' कहा है। सिनेमा की व्यावसायिक और किंचित बनावटी दुनिया में रहकर भी उन्होंने कभी अपने कवि-कर्म से समझौता नहीं किया। उनके दिल का दर्द फिल्मी गीतों में भी जहां-तहां दर्ज होता रहा। श्री 420 फिल्म के इस गाने में कवि का आत्म संघर्ष अपने पूरे विचारधारात्मक आवेग के साथ व्यक्त हुआ है—

**''छोटे से घर में गरीब का बेटा**
**मैं हूं मां के नसीब का बेटा**
**रंजोगम बचपन के साथी**

**आंसुओं से जली जीवन बाती**
**भूख ने बड़े प्यार से पाला!''**

शैलेन्द्र आम आदमी के गीतकार थे। कबीर की तरह उन्होंने आम आदमी की बोली में अपने दिल की बात सामने रख दी। सहज और सरल होने के कारण उनके गीत सीधे दिल में उतर जाते हैं। ..... के इस गीत में उनका अंदाजे बयां देखते बनता है–

**''दिल का हाल सुने दिलवाला**
**सीधी सी बात न मिर्च मसाला**
**कहके रहेगा कहने वाला!''**

दार्शनिक और गंभीर बातों को साधारण शब्दों में कहने की कला में उन्हें महारथ हासिल थी। माधुरी के पूर्व संपादक और कोशकार अरविंद कुमार ने उनकी तुलना कबीर से करते हुए लिखा है: ''हमारे पास मजरूह और साहिर जैसे प्रगतिशील गीतकार भी थे, जो रोजी रोटी की बात के साथ-साथ रोमांस की बात पूरी कारीगरी और कलाकारी के साथ कहते थे। लेकिन भारत में बौद्धिक मार्क्सवाद को हार्दिक सूफ़ीवादी जामा पहनाने का काम शैलेन्द्र ने किया। एक हद तक शैलेन्द्र को हम आधुनिक कबीर कह सकते हैं।''[2]

भूख से बिलबिला रहे बच्चों की आकांक्षाओं को जिस सरलता से शैलेन्द्र बयान करते हैं, वह अपने आप में मिसाल है–

**''क्यों न हम रोटियों का पेड़ इक लगा लें,**
**आम तोड़ें, रोटी तोड़े आम रोटी खा लें।''**

शैलेन्द्र जिंदगी की जीत के गायक थे। लोग मरने के बाद स्वर्ग की कामना करते हैं, लेकिन वे पृथ्वी पर ही स्वर्ग उतार लाने की बात करते हैं:

**''तू जिंदा है तो जिंदगी की जीत में यकीन कर**
**अगर कहीं है स्वर्ग तो उतार ला जमीन पर''**

शैलेन्द्र की महानता इस बात में थी कि वे धुन की बंदिश, कलाकार के व्यक्तित्व, चरित्र/किरदार की अनुरूपता और कहानी की मांग को दिमाग में रखते हुए लिखते जो सटीक होते और वह आम आदमी की भावनाओं का गीत बन जाता। वे जीवन भर सच्चाई और ईमानदारी के हिमायती रहे। ''सजन रे झूठ मत बोलो

खुदा के पास जाना है'' जैसी बेहद लोकप्रिय पंक्तियां लिखने वाले शैलेन्द्र फिल्म ''जिस देश में गंगा बहती है'' में कहते हैं—

**''होठों पे सच्चाई रहती है**
**यहां दिल में सफाई रहती है**
**हम उस देश के वासी हैं**
**जिस देश में गंगा बहती है''**

किसान, मजदूर, सर्वहारा के प्रति हमदर्दी का स्वर उनकी कविताओं और गीतों में बार-बार सुनाई देता है। 'इतिहास' शीर्षक कविता में शैलेन्द्र कहते हैं:

**''ये अन्न अनाज उगाते**
**ये ऊंचे महल उठाते**
**कोले, लोहे, सोने से**
**धरती पर स्वर्ग बनाते**
**वे पेट सभी का भरते**
**पर खुद भूखों मरते हैं''**

शैलेन्द्र ने गरीबी और भुखमरी मुक्त भारत का सपना देखा था। ''उनके दिल में हमेशा एक आग धधकती रही, जो इस क्रूर, अन्यायी समाज-व्यवस्था को फूंक देना चाहती थी।'' बूटपालिश फिल्म के इस गीत में कवि की समतावादी दृष्टि स्पष्ट दिखाई देती है—

**''आने वाली दुनिया में सबके सिर पे ताज होगा**
**न भूखों की भीड़ होगी न दुखों का राज होगा''**

उनके समकालीन शायर साहिर लुधियानवी के प्रसिद्ध गीत ''वो सुबह कभी तो आएगी'' में भी कुछ ऐसे ही भाव व्यक्त हुए हैं। शैलेन्द्र भी आशावादी कवि हैं। सुनहरे भविष्य का सपना फिल्म ''अब दिल्ली दूर नहीं'' मैं उनकी समतावादी दृष्टि और विस्तार पाती है—

**''हो देख लो कोई गम न रहे**
**ओ रोशनी कहीं कम न रहे''**

शैलेन्द्र जब लिख रहे थे, भारतीय साहित्य में दूर-दूर तक कहीं स्त्री विमर्श का नामोनिशान न था। पर उनके यहां अनेक स्थलों पर स्त्री चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति मिलती है। फिल्म गाइड में बेमेल विवाह की समस्या उठाई गई है।

फिल्म की स्त्री पात्र रोज़ी (वहीदा) को न घर का सुख मिलता है न पति का। आखिर वह अपने पति को छोड़ने का फैसला लेती है। स्त्री मुक्ति की कामना का स्वर इस गीत में स्पष्ट सुनाई देता है–

**''कांटों से खींच कर के ये आंचल**
**कोई न रोको दिल की उड़ान को**
**दिल वो चला**
**आज फिर जीने की तमन्ना है,**
**आज फिर मरने का इरादा है''**

शैलेन्द्र अपने गीतों में हर प्रकार के जुल्मोसितम का विरोध करते हैं। फिल्म श्री 420 में विरोध का स्वर काफी तीखा है–

**''होंगे राजे-राजकुंवर**
**हम बिगड़े दिल शहजादे**
**हम सिंहासन पर जा बैठे**
**जब-जब करें इरादें''**

आजादी के बाद का दौर लेखकों-कलाकारों के लिए मोहभंग का भी दौर रहा है। शैलेन्द्र के मन में भी भ्रष्ट व्यवस्था के प्रति गहरा आक्रोश है। भगत सिंह के माध्यम से वे आज की संवेदनहीन सामाजिक-राजनैतिक व्यवस्था पर करारी चोट करते हैं–

**''भगत सिंह इस वार न लेना काया भारतवासी की**
**देशभक्ति के लिए आज भी सजा मिलेगी फांसी की**
**यदि जनता की बात करोगे**
**तुम गद्दार कहलाओगे.........''**

शैलेन्द्र की प्रतिबद्धता मेहनतकश आम आदमी के प्रति है। रोटी की समस्या सदियों से गरीब समाज के सामने चुनौती पेश करती रही है। रोटी की तलाश में भटक रहे आम आदमी को रोटी दिलाने का सपना फिल्म ''उजाला'' में कुछ यूं व्यक्त हुआ है–

**''सूरज ज़रा आ पास आ**
**आज सपनों की रोटी पकाएंगे हम**

**ओ आसमां, तू बड़ा मेहरबान**
**आज तुझको भी दावत खिलाएंगे हम''**

.............................

**''चूल्हा है ठंडा पड़ा और पेट में आग है**
**गरमा गरम रोटियां कितना हंसी ख्वाब है''**

ट्रेड यूनियन सहित देश के तमाम आंदोलनों में लगाया जाने वाला यह बहुचर्चित नारा ''हर ज़ोर जुल्म की टक्कर में हड़ताल हमारा नारा है'' शैलेन्द्र ने ही लिखा है। इस क्रांतिकारी गीत में हमें शैलेन्द्र की प्रगतिशील दृष्टि की बेहतरीन मिसाल देखने को मिलती है–

**''हर ज़ोर जुल्म की टक्कर में हड़ताल हमारा नारा है**
**तुमने मांगे ठुकराई हैं, तुमने तोड़ा है हर वादा**
**छीना हमसे सस्ता अनाज**
**तुम छटनी पर हो अमादा**
**तो अपनी भी तैयारी है, तो तुमने भी ललकारा है''**

श्रमजीवी जनता के साथ शैलेन्द्र की यह पक्षधरता उनके साहित्यिक और फिल्मी दोनों ही प्रकार के गीतों में दिखाई देती है। साहित्य और सिनेमा के संबंध पर निरंतर लेखन करने वाले डॉ० प्रहलाद अग्रवाल ने लिखा हैः

''शैलेन्द्र की चेतना श्रमजीवी मानवीय समाज के साथ ही अपनी संगति बैठा सकती थी। वे विद्रोही स्वर के साथ आस्थावान कवि हैं। मनुष्य की संघर्ष चेतना और जिजीविषा में उनका गहन विश्वास है। इसलिए एक ओर उनके भीतर मेहनतकश आवाम के लिए गहरी संवेदना का भाव है, वहीं दूसरी ओर देश के पहरुओं के लिए चेतावनी और चुनौती का स्वर है।''[3]

शैलेन्द्र के गीतों में आक्रोश है, पर कहीं मायूसी नहीं, विद्रोह है, मगर निराशा नहीं। एक आशावादी स्वर हमेशा उनके साथ रहता है। वे सही मायने में जिंदगी की जीत में यकीन करने वाले गीतकार थे।

**''ये गम के और चार दिन**
**सितम के और चार दिन**

**ये दिन भी जाएंगे गुज़र**
**गुज़र गए हज़ार दिन''**

''शैलेन्द्र के प्रति'' कविता में शैलेन्द्र को श्रद्धांजलि देते हुए प्रगतिशील कवि नागार्जुन ने सही ही लिखा है–

**''गीतों के जादूगर का मैं छंदों से तर्पण करता हूं।**

.........................................

**जन मन जव हुलसित होता था, वह थिरकन भी पढ़ते थे तुम,**
**साथी थे, मजदूर पुत्र थे, झंडा लेकर बढ़ते थे तुम।**
**युग ही अनुगुंजित पीड़ा ही घोर घन घटा सी गहराई,**
**प्रिय भाई शैलेन्द्र, तुम्हारी पंक्ति-पंक्ति नभ में लहराई।''**

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शैलेन्द्र हिंदी की लोकोन्मुखी काव्य परंपरा के सशक्त वाहक हैं जिन्होंने अपनी कविताओं और गीतों में आम आदमी की भावनाओं को बेजोड़ अभिव्यक्ति दी है।

**संदर्भ:**

1. प्रगतिशील आंदोलन की धरोहर, सं० राजेन्द्र शर्मा, सहमत, नई दिल्ली, 2012, पृ० 135

2. जनकवि शैलेन्द्र, सं० इन्द्रजीत सिंह, अमृत पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2002, पृ० 23

3. कवि शैलेन्द्रः ज़िंदगी की जीत में यकीन, डॉ० प्रहलाद अग्रवाल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० 87

4. वहीः पृ० 9

# विलक्षण प्रतिभा के गीतकार : शैलेन्द्र

*–रत्नेश कुमार*

भारतीय सिने जगत गीत-संगीत प्रधान है। इसमें एक गीतकार आता है, गीत लिखता है और चला जाता है। गिनती के गीतकार हैं, जिनके लिखे गीत रह जाते हैं, रहते-बहते धरा-गगन में रस-बस जाते हैं। गीतों को गुनगुनाने– गानेवाले गुनगुनाते-गाते रहते-रहते दूसरी दुनिया में चले जाते हैं। उन्हीं कालजयी गीतकारों में से हैं शैलेन्द्र, डॉ. भूपेन हजारिका इत्यादि जिनके गीत जन-मन के साथ-साथ धरा-गगन भी गाते हैं। इनके गीतों की विशिष्टता यह है कि वे बाहर से अधिक आदमी के अंदर रहते हैं और आदमी की आदमीयत को आक्सीजन देते रहते हैं। इनको जीवन-जगत से निकाल दिया जाए तो जीवन जीने लायक न रह जाए। इनके गीतों पर बात करना अपने आप की बात करना है। दोनों के गीतों पर बात करना मुझे लेखकीय दायित्व से अधिक सामाजिक जिम्मेदारी लगती है। यहाँ अमर गीतकारों के जीवन-जाति-समाज की सच्ची-मुच्ची बातेंः

शैलेन्द्र (30 अगस्त, 1923-14 दिसंबर, 1966) हिंदी सिनेमा से लगभग दस साल छोटे और असमिया सिनेमा से प्रायः बारह साल बड़े हैं। वे अपने गीतों में आज भी जिंदा हैं और जो जनता तक पहुँचकर उसके अंदर-बाहर की आवाज बन चुके हैं। जनता की आवाज मरती नहीं। साम्राज्यवादी– सामंती शक्तियाँ या अधिनायकवादी ताकतें जनता की आवाज मारने की कोशिश करती रहती हैं। किंतु अंततः हारती रहती है।

शैलेन्द्र के गीतों में बिहार– बुदबुदाता– बोलता– सिसकता है, गुनगुनाता– गाता है कि बिहार सांस्कृतिक पुनर्जागरण की धूप-छाया से बहुत दूर, सांस्कृतिक आंदोलन की ज़मीन-ज़बान से अनजान है। बिहार की सामाजिक -सांस्कृतिक दशा-दिशा असम के विपरीत है।

जन-मन-मिजाज के असाधारण कवि– अनमोल गीतकार शैलेन्द्र को पढ़ते-सुनते-जानते-गुनते-सोचते-समझते असम के महान गीतकार डॉ. भूपेन हजारिका (8 सितंबर, 1926–5 नवंबर, 2011) सामने आते हैं जिनके गीतों ने शैलेन्द्र के गीतों की तरह लाखों ह्रदयों को छुआ। शैलेन्द्र से लगभग तीन साल छोटे **भारतरत्न** से सम्मानित डॉ. भूपेन हजारिका में अनेक समानताएं हैं। शैलेन्द्र और

डॉ. भूपेन हजारिका दोनों भारतीय जननाटय संघ (इप्टा) से जुड़े हुए थे। शैलेन्द्र 1945 से और डॉ. भूपेन हजारिका 1948 से (जन्म की तरह यहां भी तीन साल आगे-पीछे) 1948 में शैलेन्द्र को हिंदी फिल्म में गीत लिखने का 'आग' के निर्माता-निर्देशक राजकपूर का आफर और डॉ. भूपेन हजारिका का गीतकार के रूप में असमिया फिल्म 'सिराज' (1948) से प्रवेश। शैलेन्द्र का लिखा हिंदी सिनेमा में पहला गीत ' हमसे मिले तुम सजन तुमसे मिले हम... (बरसात) और डॉ. भूपेन हजारिका का लिखा असमिया सिनेमा में पहला गीत 'अग्नियुग की चिंगारी हम...' (सिराज)।

अत्यंत दुखद और लज्जाजनक यह है कि बिहार ने अपने रक्त को पहचानने के बाद भी हमारा लाल नहीं कहा, जब कि असम ने अपने भूपेन हजारिका को आसमान पर ही नहीं बैठाया, बल्कि असम बोलता-मानता है कि अयोध्या के राम, मथुरा के कृष्ण की तरह असम के भूपेन (हजारिका) दा। असम और असमवासियों के सांस्कृतिक– राजनीतिक दबाव के कारण भारत सरकार डॉ. भूपेन हजारिका को मरणोपरांत 'भारतरत्न' सम्मान देने को विवश हुई। बिहार– बिहारवासी यह तर्क-कुतर्क दे सकता है कि जब शैलेन्द्र के पूर्वज बिहार से चले गए, उनके पिता रावलपिंडी (पाकिस्तान) फौज से रिटायर्ड होकर मथुरा (उत्तर प्रदेश) जा बसे तो बिहार उनके लिए क्यों सोचे, उत्तर प्रदेश क्यों नहीं? जाति से जाने-पहचाने वाले जातिवादी बिहार– बिहारवासी से यह आशा करना कि वह प्रतिभा– काम से प्रतिष्ठा-पद देगा, फजूल है। राजनीति के विभूति बाबू जगजीवन राम उर्फ बाबूजी (5 अप्रैल, 1908–6 जुलाई, 1986) बिहार में शैलेन्द्र के पूर्वज के पड़ोसी गांव चांदवा के थे। वे भारत के पहले दलित उप प्रधानमंत्री बने, किंतु अपनी माटी के अमर कवि– गीतकार शैलेन्द्र की विलक्षण प्रतिभा– काम की ओर उनका ध्यान नहीं गया, न ही उनकी सुपुत्री पूर्व लोक सभाध्यक्ष मीरा कुमार का ही, जबकि पिता– पुत्री दोनों का संसदीय निर्वाचन क्षेत्र शैलेन्द्र के पूर्वज के गांव के निकट के है। ऐसा नहीं माना जा सकता कि शैलेन्द्र को जगजीवन राम और मीरा कुमार न जानते हों, दोनों में से कोई शैलेन्द्र के लिए भारत– बिहार में कुछ कर सकता था, किंतु नहीं किया क्योंकि शैलेन्द्र विचार से कम्यूनिस्ट थे, कांग्रेसी नहीं। यह आरोप नहीं, अत्यंत दुखद यथार्थ है, जिनका इतिहास उल्लेख करना शायद भूले।

यदि शैलेन्द्र के पूर्वज-परिवार बिहार के नहीं, असम के होते तो असम उन्हें हृदय से लगाता, माथे पर बैठाता और उनके काम-नाम को घर-घर पहुँचाने के लिए बिछ जाता, असम को शैलेन्द्र शैलेन्द्र कर देता। असम और असमजीवियों को श्रीमंत शंकरदेव-महापुरुष माधवदेव इत्यादि ने गुरु नानक– गुरु गोविंद सिंह की तरह मनु स्मृति और उनके घनघोर अमानवीय भाव-भाषा-लगाव-प्रभाव से मुक्त कर दिया है, साथ ही मानव– मानवता युक्त– प्रयुक्त किया है, जिसके सबसे बड़े उदाहरण असम के डॉ. भूपेन हजारिका हैं।

इंसानी प्रेम-पीड़ा के रचनाकार शैलेन्द्र को अपने पूर्वज के राज्य बिहार और पूर्वज की भाषा भोजपुरी से आत्मीय लगाव था, जिसका सबसे बड़ा प्रमाण है उनकी डायरी, जिसमें उनके पूर्वज के नाम– पता थे, जिसे लेकर उनकी बेटी आदरणीया अमला शैलेन्द्र मजुमदार (बेटी हो तो ऐसी! भगवान ऐसी बेटी सबको दे!) बिहार के अख्तियारपुर पहुंची थीं। हाय रे बिहार! अपनी पोती के हाथ में अपना नाम-पता देखकर भी पसीजा नहीं। इतना निर्मम! बिहार, तू इतना तो बोल ही सकता था– तू मेरी पोती है रहे! दुबई से आई तेरी पोती अमला का अरमान पूरा हो जाता। शैलेन्द्र की जीवन भर सिसकती आत्मा और दिल-दिमाग की सबसे बड़ी दौलत बनी डॉल (दुलहन) की तरह रही डायरी डार्विन का डॉक्यूमेंट कहलाती, जो बिहार के भोजपुर जिले के अख्तियारपुर में घर-घर घूमती रही और जन-मन से पूछती रही कि मेरे पिता के पूर्वज– परिवार को गांव से बेगांव क्यों किया? उनका कसूर क्या था? अख्तियारपुर का तो अपने आप पर इतना भी अख्तियार न रहा कि वह आगे बढ़कर अपनी पोती को गले लगा ले, जो दुबई से अपने पिता डायरी लेकर आई थी जिसमें उनका नाम– पता था। राज्य जैसा, गांव वैसा। बिहार का अख्तियारपुर नहीं, असम का कोई गांव होता तो उसमें दादा (पितामह) की संवेदना आ जाती और वह बेअख्तियार बोल पड़ता, 'हमार पोती! तू हमार पोती बारऽ (हमारी पोती! तू हमारी पोती है!)! और लिपट जाता तथा उसका करेजबा (दिल) जुड़ा जाता। वह लोगों को सुनाता-बताता, देखऽ हमार पोतिया बा, हमारा केसरिया (केसरी-शैलेन्द्र के फौजी पिताजी-बिहार-बिहारियों के गांव-मुहल्ले-घर-परिवार में केसरी केसरिया कहलाता है, पोती पोतिया हो जाती है) के पोतिया! केसरिया के पोतिया हमारा पोतिया.. (देखो हमरी पोती आई। दादा गए थे, पोती आई है, ऐ पटना के बाबू, ऐ

बिहार के बाबू लोग, हमारी पोती है रे, हमरी पोती! हमरे केसरी की पोती! केसरी की पोती हमरी पोती....!) शैलेन्द्र के पुत्र दिनेश शैलेन्द्र भी अख्तियारपुर गये।

आदमी का स्वभाव होता है, खासकर गांव के आदमी का, वह अपनी जड़, अपना गांव कभी हमेशा के लिए नहीं छोड़ता, जो जिस कारण से भी जाता है, वह लौटकर कभी न कभी अवश्य आता है। शैलन्द्र जी के पिताजी केसरीलाल दास का मन कुहूकता अवश्य होगा, फौज में रहने के कारण फौजी मन शाहाबाद (उस समय जिले का नाम यही था) लौटने को तैयार न हुआ होगा, किंतु पड़ोसी राज्य उत्तर प्रदेश स्थित मथुरा में बसने के बावजूद आंख-मन-मस्तिष्क में अख्तियारपुर अवश्य होगा जो उन्हें और उनके परिवार को मथता होगा (पता नहीं, उजड़े या उजाड़े गए। सामंती व्यवस्था थी)। उनके घर-परिवार की भाषा निःसंदेह भोजपुरी होगी। असम में पांच-छह पीढ़ियों से रह रहे भोजपुरी भाषियों के घर-परिवार में भोजपुरी ही बोली जाती है। शैलेन्द्र के पिता के घर में भोजपुरी बोली जाती होगी– यह उनके लिखे गीतों की गहराई बोलती– बतलाती है। उनके गीतों में भोजपुरी घर की तरह है, बाजार की तरह नहीं। उनकी इकलौती फिल्म 'तीसरी कसम' हिंदी फिल्म है और उसकी कहानी का परिवेश और भाव-भूमि अंगिका (बिहार के पूर्णिया जिला आदि की एक सशक्त बोली– भाषा) है, भोजपुरी नहीं। यह सर्वस्वीकार्य तथ्य है कि 'तीसरी कसम' के गीत फिल्म को जीवन देते हैं, उनके प्राण हैं, जो फिल्म में सांस की तरह है और सांस सा आते-जाते हैं। शैलेन्द्र के मां-पिता भोजपुरी भाषी थे, ऐसा उनकी रचनाओं को पढ़ते-सुनते-सोचते-समझते हुए लगता है और यह भी लगता है कि उनमें बिहार मां के दूध-सा था, जो जन्म से आता है और मृत्यु के बाद जाता है, वरना वे अपनी पहली फिल्म के लिए फणीश्वरनाथ रेणु की कहानी नहीं चाहते– चुनते। हिंदी में एक से एक कहानी है। वैसे 'तीसरी कसम उर्फ मारे गए गुलफाम' भी एक श्रेष्ठ कहानी है। शैलेन्द्र जी के रक्त में बिहार बह रहा था, वरना वे अपनी अगली फिल्म नागार्जुन के उपन्यास पर बनाने के लिए न सोच रहे होते और अपने दूसरे कविता संग्रह के प्रकाशन, संपादन और भूमिका लिखने की जिम्मेदारी नागार्जुन को न सौंपते। समझदार करता सदा भूल-सुधार। यदि सुधारने का जज़्बा हो। बिहार सरकार शैलेन्द्र जी को सम्मानित करेगी तो इससे बिहार का भी सम्मान बढ़ेगा।

# छवि गढ़ने वाला गीतकार : शैलेन्द्र

*– मुरली कृष्ण कस्तूरी*

गीतकार शैलेन्द्र न केवल लोकप्रिय, मधुर और कलात्मक गीत लिखते थे बल्कि अभिनेताओं विशेष रूप से अपने मित्र और बेहतरीन अभिनेता राज कपूर की छवि को भी गढ़ते थे, निखारते थे। गीतकार शैलेन्द्र ऐसे शब्दों का गीत में प्रयोग करते थे जो राज कपूर की छवि को और अधिक यथार्थवादी कलात्मक दिल को छू लेने वाली बन जाती है।

**'आवारा' फिल्म का टाइटल सांग- 'आवारा हूँ, आवारा हूँ, गर्दिश में हूँ आसमान का तारा हूँ...../आबाद नहीं, बरवाद सही/गाता हूँ खुशी के गीत मगर,/जख्मों से भरा सीना है मेरा/हँसती है मगर ये मस्त नजर।'**

इसी गीत में शैलेन्द्र ने, हालात का शिकार व्यक्ति जो आवारा बन जाता है उसकी मन:स्थिति को अपने शब्दों से जीवंत बना दिया है। गर्दिश में, बुरे दौर में भी वह आसमान का तारा बनकर चमकता है। जख्मों से भरा सीना होने के बावजूद मुस्कराने का हुनर उसके पास है। यह गीत चुनौतियों से डटकर मुकाबला करने और विजय प्राप्त करने की प्रेरणा देता है। इस गीत के जरिए शैलेन्द्र ने राज कपूर की छवि को चार्ली चैपलिन के नजदीक लाने की कोशिश की है। चार्ली चैपलिन की खूबी यह है कि आँसू और मुस्कान साथ-साथ लेकर चलते हैं। इस गीत ने राज कपूर को न केवल भारत बल्कि रूस में भी लोकप्रिय अभिनेता बना दिया। यह गीत भारत के साथ-साथ रूस में भी बहुत लोकप्रिय हुआ। राज कपूर की ग्लोबल इमेज को बनाने में संवारने में, सजाने में शैलेन्द्र के गीतों का बहुत बड़ा हाथ है।

भारत में अनेक धर्मो के, अनके भाषाओं के, अनेक संस्कृतियों के लोग एक साथ रहते हैं। विविधता में एकता हमारी संस्कृति है, हमारी ताकत है। हमने पश्चिम के तौर-तरीकों को अपनाया लेकिन हिन्दुस्तानी तहजीब से दूर नहीं हुए। जूता भले ही जापान का पहने या इंगैलंड की पैंट पहनकर फ़ख्र महसूस करें लेकिन हिन्दुस्तानी दिल से हम बेदिली नहीं करते। फिल्म श्री 420 में शैलेन्द्र ने सरल शब्दों में गहरी बात लिखकर हम भारतीयों को देशप्रेम का संदेश दिया है। यह गीत आज भी सुनकर मन भारतीय होने पर गर्व करता है-

**'मेरा जूता है जापानी,**

**ये पतलून इंगलिशतानी**
**सर पे लाल टोपी रूसी**
**फिर भी दिल है हिन्दुस्तानी'**

इस गीत में राज कपूर को एक ऐसे व्यक्ति की छवि प्रदान की जो विदेशी चीजों को भी अपनाता है लेकिन दिल हिन्दुस्तानी ही रखना चाहता है। इस गीत ने राष्ट्रीयता की भावना को खूब बढ़ाया। इस गीत ने भी राज कपूर को स्टारडम की नई ऊँचाइयाँ दीं। इसी फिल्म का गीत- 'दिल का हाल सुने दिलवाला' में शैलेन्द्र के शब्द आम-आदमी की छवि को, किरदार को नई ऊँचाई देते हैं। राज कपूर ने आम हिन्दुस्तानी के नुमाइंदे के रूप में गजब ढाया है। अपने अभिनय से वह सभी दर्शकों का दिल लूट लेते हैं। दर्शकों की आँखों का तारा बन जाते हैं। राज कपूर की मन मोह लेने वाली छवि/इमेज को अपने शब्दों से गढ़ते हैं लोकप्रिय गीतकार शैलेन्द्र। 'तीसरी कसम' हो या 'दीवाना, 'आशिक', हो या 'जागते रहो' राज कपूर अपने को बेहतरीन अभिनेता सिद्ध करते हैं।

इस भोले-भाले, देश और देशवासियों से प्यार करने वाले इंसान राज कपूर की छवि को सुंदर बनाने में शैलेन्द्र का बहुत बड़ा हाथ है।

यह भी संयोग ही है कि शैलेन्द्र ने जिस फिल्म निर्माण कम्पनी का गठन किया उसका नाम भी 'इमेज मेकर्स' था। आज शैलेन्द्र नहीं हैं लेकिन अपने गीतों के जरिये आज भी दसों दिशाओं में मौजूद हैं।

# रचनाकार-परिचय

- **विश्वनाथ त्रिपाठी**: प्रख्यात साहित्यकार, नंगातलाई का गाँव, जैसा कह सका, व्योमकेश दरवेश आदि प्रसिद्ध पुस्तकों के रचनाकार। मूर्ति देवी सम्मान, व्यास सम्मान, सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार से अलंकृत।
  **संपर्क**: बी-5, एफ-2 दिलशाद गार्डन, दिल्ली- 110045
  मो॰ 9871479790
- **ऋतुराज**: प्रसिद्ध कवि, मैं आंगरिस, कितना थोड़ा वक्त, पुल और पानी, सुरत-निरत, लीला मुखार बिंद, आशा नाम नदी आदि चर्चित कविता संग्रह। पहल सम्मान, बिहारी सम्मान से विभूषित।
  ई मेल- rituraj1940@gmail.com मो॰ 9829008188
- **लीलाधर मंडलोई**: चर्चित कवि, आलोचक एवं संपादक। ज्ञानपीठ के पूर्व निदेशक, नया ज्ञानोदय के पूर्व संपादक। 'घर-घर घूमा' रात-बिरात, मगर एक आवाज, देखा अनदेखा आदि चर्चित पुस्तकें।
  ई मेल- leeladharmandloi@gmail.com, मो॰ 98182-91188
- **रविभूषण**: चर्चित आलोचक। प्रभात खबर में पिछले दो दशक से नियमित स्तम्भ लेखन, 'राम विलास शर्मा का महत्व', 'वैकल्पिक भारत की तलाश आदि चर्चित पुस्तकें।
  ई मेल- ravibhushan1408@gmail.com, मो॰ 9431103960
- **लाल बहादुर वर्मा**: जाने माने इतिहासकार एवं लेखक। इतिहास, साहित्य, राजनीति पर विपुल लेखन। विक्टर ह्युगो, हावर्ड फास्ट के उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद। उत्तर पूर्व और मई अड़सठ, पेरिस और जिंदगी ने एक दिन कहा चर्चित उपन्यास।
  ई मेल- muhimverma@gmail.com, मो॰ 9454069645
- **पंडित किरण मिश्र**: प्रसिद्ध गीतकार, महभारत, अजनबी, विक्रम बेताल आदि धारावाहिकों के लिए गीत लेखन। 31 से अधिक फिल्मों व धारावाहिकों में गीत लिखे। 6 पुस्तकें अब तक प्रकाशित हो चुकी। अनेक राष्ट्रीय सम्मानों से अलंकृत।
  ई मेल- ptkiranmishra@gmail.com, मो॰ 9820245489
- **मनमोहन चड्ढा**: भारतीय फिल्म एवं टेलीविजन संस्थान, पूना के पूर्व प्राध्यापक। 'हिन्दी सिनेमा का इतिहास' पुस्तक एवं फिल्म समीक्षक के रूप में दो बार राष्ट्रीय पिल्म पुरस्कार से सम्मानित। 'हम लोग', 'अजूबे' धारावाहिक में सहायक निर्देशक के रूप में कार्य।
  ई मेल- manmohan71chadha@gmail.com,
  मो॰ 9820245489

- **कमलेश पांडेय:** फिल्म जगत के चर्चित कथा-पटकथा लेखक। अनकही, तेजाब, बेटा, रंग दे बसंती आदि फिल्मों का लेखन।
  ई मेल- kamleshrpandey@gmail.com, मो॰ 022-26702848
- **ईशमधु तलवार:** पत्रकार, कथाकार, नाटकार और व्यंग्यकार के रूप में सुपरिचित नाम। 'वो तेरे प्यार का गम', 'रिनाला खुर्द' चर्चित पुस्तकें। राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत।
  सम्पर्कः ई मेल- ishmadhu14@gmail.com., sunilmishrbpl @gmail.com. मो॰ 94133-27070
- **सदानंद सुमन:** जाने माने साहित्यकार। समाचार पत्र-पत्रिकाओं के लिए विपुल लेखन।
  सम्पर्कः पुरानीहाट, रानीगंज, डाकघर-मेरीगंज-854334
  जिलाः अररिया (बिहार) मो॰ 7488495573
- **किशन शर्मा:** विविध भारती के अत्यंत लोकप्रिय उद्घोषक के रूप में लंबे समय तक कार्य। पांच बार भारत के महामहिम राष्ट्रपतियों द्वारा सम्मानित। ''फिल्म जगत के अंतरंग संस्मरण'' आदि चर्चित पुस्तकों के लेखक।
  सम्पर्कः ई मेल- kishansharmacompere@yahoo.co.in
  मो॰ 9821687661
- **पुनीत बिसारिया:** बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, झांसी में हिंदी विभागाध्यक्ष चर्चित साहित्यकार। 100 से अधिक शोध पत्रों एवं 30 से अधिक साहित्य सहित विभिन्न विषयों पर पुस्तकें प्रकाशित। साहित्य और सिनेमा पर नियमित लेखन। 'वेद बुक से फेस बुक', 'कलाम को सलाम' आदि प्रसिद्ध पुस्तकें।
  सम्पर्कः ई मेल- puneetbisaria8@gmail.com.
  मो॰ 9450037871
- **रमेश चौबे:** शैलेन्द्र जी के साथी। साहित्यकार एवं सम्पादक। झांसी में निवास।
  सम्पर्कः मो॰ 9451122443
- **ब्रज भूषण तिवारी:** मारवाड़ी महाविद्यालय भागलपुर विश्वविद्यालय में हिंदी के प्रोफेसर। शैलेन्द्र के साहित्य पर शोध कार्य। ''गीतों का जादूगरः शैलेन्द्र शोध आधारित उत्कृष्ट पुस्तक। नियमित साहित्य लेखन
  सम्पर्कः ई मेल- brajtiwari@gmail.com.
  मो॰ 9431874336
- **बल्ली सिंह चीमा:** जनकवि के रूप में प्रसिद्ध। 'खामोशी के खिलाफ' 'जमीन से उठती आवाज', 'तय करो किस ओर हो' आदि चर्चित कविता संग्रह।

सम्पर्कः ई मेल- ballijankavi@gmail.com.
मो॰ 74529-70255

- **प्रसून जोशी:** फिल्म जगत के चर्चित गीतकार। 'धूप के सिक्के'— 'एक काव्यमय यात्रा' प्रसिद्ध पुस्तक। पद्मश्री से सम्मानित। सर्वश्रेष्ठ गीतकार का दो बार राष्ट्रीय पुरस्कार। सेंसर बोर्ड के चेयरमैन।
सम्पर्कः ई मेल- prasoonjoshi@gmail.com.
- **स्वानंद किरकिरे:** प्रसिद्ध गीतकार, अभिनेता, सहायक निर्देशक। दो बार सर्वश्रेष्ठ गीतकार का राष्ट्रीय पुरस्कार। लगे रहे मुन्ना भाई, परिणीता, बर्फी, थ्री इडियट्स तथा पीके आदि फिल्मों के गीतकार 'आप कमाई' चर्चित कविता संग्रह।
सम्पर्कः ई मेल- swanandkirkire@gmail.com.
मो॰ 9425024579
- **यतीन्द्र मिश्र:** प्रसिद्ध हिन्दी कवि, सम्पादक, संगीत और सिनेमा अध्येता। यदा कदा, अयोध्या नया अन्य कविताएँ, ड्यौढी पर आलाप और विभास प्रसिद्ध कविता संग्रह। गुलज़ार साहब की रचनाओं पर आधारित— ''यार जुलाहे'', मीलों से दिन'' का सम्पादन ''लता सुर-गाथा'' पुस्तक पर राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार।
सम्पर्कः ई मेल- yatindrakidak@gmail.com.
मो॰ 9568881555
- **सुनील मिश्र:** फिल्म विश्लेषक, सभी पत्र-पत्रिकाओं में नियमित लेखन। फिल्म समीक्षक के रूप में राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार से अलंकृत।
सम्पर्कः ई मेल- smculturemp@gmail.com.
मो॰ 9425024579
- **डॉ. संदीप भगत:** पेशे से डॉक्टर गीतकार शैलेन्द्र के भतीजे, मराठी-हिंदी फिल्मों में अभिनय एवं गीत लेखन की शुरुवात।
सम्पर्कः ई मेल- drsandeepbhagat1963@gmail.com.
मो॰ 9826063212
- **राजीव श्रीवास्तव:** कवि-गीतकार, सिने इतिहासवेत्ता, फिल्मकार, गायक मुकेश पर पीएच.डी की उपाधि। मुकेश, कल्यान जी आनंद जी पर दो पुस्तके प्रकाशित। वर्तमान में साहित्य तथा सम्प्रेषण विषय पर पुस्तक लेखन में सलंग्न।
**सम्पर्क:** ई मेल- rajeevrsvp@yahoo.com.
- **किशोर कुमार कौशल:** कवि, लेखक, सिनेमा के गहन अध्येता। साहित्य-सिनेमा पर नियमित लेखन। राजभाषा प्रबंध के रूप में सेवा निवृत।

सम्पर्कः ई मेल- kishor.kaushal62@gmail.com.
मो॰ 9899831002

- **दीप भट्टः** चर्चित पत्रकार, लेखक। '' हिन्दी सिनेमा के शिखर'' चर्चित पुस्तक। सिनेमा पर नियमित लेखन।
सम्पर्कः ई मेल- deepbhatt.reporter@gmail.com.
मो॰ 8077306406
- **जाहिद खानः** पत्रकार, लेखक। 'तरक्की पसंद तहरीक के हमसफर' चर्चित पुस्तक पर 'वागीश्वरी पुरस्कार' से सम्मानित। साहित्य सिनेमा एवं राजनीति पर विपुल लेखन। पत्रकारिता के क्षेत्र में अनेक अवार्ड।
सम्पर्कः ई मेल- jahidk.khan@gmail.com. मो॰ 939911-8348
- **प्रदीप जिलवानेः** चर्चित कवि—लेखक। साहित्य-सिनेमा पर नियमित लेखन। ''सिनेमाई कबीरः शैलेन्द्र'' चर्चित पुस्तक।
सम्पर्कः ई मेल-jilwane.pradeep@gmail.com.
मो॰ 97559-80001
- **जयनारायण प्रसादः** चर्चित वरिष्ठ पत्रकार। सिनेमा एवं राजनीति पर विपुल लेखन।
सम्पर्कः ई मेल-jnpkol मो॰ 9830880810
- **वेद विलास उनियालः** पत्रकार एवं लेखक। सिनेमा पर सक्रिय रूप से लेखन।
सम्पर्कः ई मेल- vedvilas@gmail.com.
मो॰ 9997170321
- **नलिन विकासः** इफको में राजभाषा प्रबंध के रूप में कार्यरत। साहित्य और सिनेमा पर लेखन। ''शैलेन्द्र एवं नरेन्द्र शर्मा की कविताओं का तुलनात्मक अध्ययन'' विषय पर शोधकार्य में संलग्न।
सम्पर्कः ई मेल- nalinvikas@gmail.com.
मो॰ 97173-67329
- **रत्नेश कुमारः** चर्चित पत्रकार, सिनेमा, साहित्य एवं राजनीति पर नियमित लेखन।
सम्पर्कः ई मेल- kedarnathdas@gmail.com.
मो॰ 70047-60966
- **मुरलीकृष्ण कस्तूरीः** कवि, लेखक और सम्पादक। तेलगू और अंग्रेजी भाषा में सिनेमा-साहित्य पर नियमित लेखन। फिक्शन लेखन में ज्यादा रूचि।
सम्पर्कः ई मेल- kmkp2025@gmail.com.
मो॰ 98496-17392

## गीतकार शैलेन्द्र

वास्तविक नाम : शंकर दास राव
जन्म : 30 अगस्त, 1923, रावलपिंडी
पहला गीत : बरसात में हमसे मिले तुम सजन (बरसात, 1949)
अंतिम गीत : तुम प्यार से देखो (सपनों का सौदागर)
लोकप्रिय फिल्में : • आवारा • दो बीघा जमीन • श्री 420 • जिस देश में गंगा बहती है • संगम • आह • सीमा • मधुमती • जागते रहो • गाइड • काला बाजार • जंगली • बूट पालिश • यहूदी • अनाड़ी • पतिता • दाग • मेरी सूरत तेरी आँखें • बंदिनी • गुमनाम • तीसरी कसम
अभिनय : • नया घर • बूट पालिश • श्री 420 • मुसाफिर
संवाद लेखन : परख
गीत लेखन : 171 हिंदी फिल्मों में तथा 6 भोजपुरी फिल्मों में लगभग 800 गीत लिखे
प्रकाशित काव्य संग्रह : • न्यौता और चुनौती (1955)
फिल्म निर्माण : तीसरी कसम (1966, राष्ट्रपति के स्वर्ण पदक से सम्मानित)
फिल्म फेयर पुरस्कार : • ये मेरा दीवानापन है (यहूदी– 1958)
(गीत लेखन के लिए) : • सब कुछ सीखा हमने (अनाड़ी– 1959) • मैं गाऊँ तुम सो जाओ (ब्रह्मचारी– 1968)
निधन : 14 दिसंबर, 1966

## रचनाकारों के नाम

• विश्वनाथ त्रिपाठी • ऋतुराज • मुकेश • लीलाधर मंडलोई • रविभूषण • विट्ठल भाई पटेल • स्वयं प्रकाश • लाल बहादुर वर्मा • पंडित किरण मिश्र • मनमोहन चड्ढा • बी०आर० इशारा • कमलेश पांडेय • ईशमधु तलवार • प्रसून जोशी • स्वानंद किरकिरे • यतीन्द्र मिश्र • बल्ली सिंह चीमा • डॉ० संदीप भगत • सदानंद सुमन • पुनीत बिसारिया • सुनील मिश्र • रमेश चौबे • ब्रज भूषण तिवारी • किशन शर्मा • राजीव श्रीवास्तव • किशोर कुमार कौशल • दीप भट्ट • जाहिद खान • जयनारायण प्रसाद • प्रदीप जिलवाने • वेद विलास उनियाल • नलिन विकास • रत्नेश कुमार • मुरली कृष्ण कस्तूरी


## इन्द्रजीत सिंह

जन्म – 3 जून 1959, कर्नलगंज (गोंडा)
शिक्षा – एम०ए० (अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, हिन्दी) गोल्डमेडलिस्ट पीएच०डी (अर्थशास्त्र)
प्रकाशन – 'जनकवि शैलेन्द्र', 'धरती कहे पुकार के' (सं.) अधिकांश पत्र पत्रिकाओं में साहित्यिक लेख प्रकाशित।
पुरस्कार – वाणी सम्मान, आरंभ सम्मान, केंद्रीय विद्यालय संगठन का राष्ट्रीय प्रोत्साहन पुरस्कार
संस्थापक – शैलेन्द्र सम्मान
विशेष – उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग द्वारा क्षेत्र विकास अधिकारी पद पर चयनित।
– उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग, इलाहाबाद द्वारा समाजशास्त्र स०प्राध्यापक पद पर चयनित।
– तीन वर्ष मॉस्को (रुस) में अध्यापन।
– केंद्रीय विद्यालय– 1 हाथीबड़कला, देहरादून से जून 2019 में प्राचार्य पद से सेवानिवृत
सम्पर्क – 92, साई लोक कालोनी फेस-2, जी एम एस रोड देहरादून– 248001
ईमेल – indrajeetrita@gmail.com, Mobile: 9536445544


ISBN 938997512-3
Price: ₹ 200/-